॥ विश्वं ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ॥

MANGALAYATAN
UNIVERSITY

Learn Today to Lead Tomorrow

Indian Constitution

PSO-1201

Edited By

Dr. Tarique Anwer

DIRECTORATE OF DISTANCE AND ONLINE EDUCATION

MANGALAYATAN
UNIVERSITY

विषय सूची

इकाई–1

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना 1–22

उद्देश्य 1

प्रस्तावना 2

1.1 भारतीय संविधान की प्रस्तावना 2

1.2 प्रस्तावना की मुख्य विशेषताएँ 2

1.3 प्रस्तावना का महत्त्व 7

1.4 भारत का संविधान : प्रमुख विशेषताएँ 8

1.5 भारतीय संविधान के विशाल आकार के कारण 19

1.6 सारांश 21

1.7 शब्दकोश 21

1.8 अभ्यास-प्रश्न 21

1.9 सन्दर्भ पुस्तकें 22

इकाई–2

2. मौलिक अधिकार 23–33

उद्देश्य 23

प्रस्तावना 23

2.1 मौलिक अधिकारों की विशेषताएँ) 24

2.2 मौलिक अधिकार 27

2.3 सारांश 32

2.4 शब्दकोश 33

2.5 अभ्यास-प्रश्न 33

2.6 सन्दर्भ पुस्तकें 33

3. मौलिक कर्त्तव्य 34–37

उद्देश्य 34

प्रस्तावना 34

3.1 भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक कर्त्तव्य 35

3.2 सारांश 37

3.3 शब्दकोश 37

3.4 अभ्यास-प्रश्न 37

3.5 संदर्भ पुस्तकें 37

4. राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत 38-51

उद्देश्य 38

प्रस्तावना 39

4.1 निर्देशक सिद्धांतों की प्रकृति 39

4.2 निर्देशक सिद्धांतों का महत्त्व 40

4.3 निर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण 40

4.4 नीति-निर्देशक तत्त्वों की आलोचना 42

4.5 राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों की उपयोगिता 44

4.6 निर्देशक तत्त्वों का क्रियान्वयन और उपलब्धियाँ 46

4.7 निर्देशक सिद्धांत और मौलिक अधिकारों में अन्तर 48

4.8 सारांश 50

4.9 शब्दकोश 51

4.10 अभ्यास-प्रश्न 51

4.11 संदर्भ पुस्तकें 51

इकाई–3

5. भारतीय संविधान का निर्माण एवं संशोधन प्रक्रिया 52-60

उद्देश्य 52

प्रस्तावना 52

5.1 भारतीय संविधान का निर्माण 53

5.2 भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया 54

5.3 संशोधन शक्ति की सीमाएँ 57

5.4 संशोधन प्रक्रिया के दोष 57

5.5 कुछ संवैधानिक संशोधनों के विषय में सर्वसम्मति 59

5.6 अभ्यास-प्रश्न 60

5.7 संदर्भ पुस्तकें 60

इकाई–4

6. संघ-राज्य संबंध–वैधानिक, प्रशासकीय और वित्तीय राजनीति 61–98

उद्देश्य 61

प्रस्तावना 62

6.1 संघ और राज्यों में वैधानिक संबंध 62

6.1.1 संघ सूची-97 विषय 63

6.1.2 राज्य सूची-66 विषय 63

6.1.3 समवर्ती सूची-47 विषय 63

6.1.4 अवशेष शक्तियाँ 63

6.2 संघ और राज्यों में प्रशासकीय संबंध 67
6.3 संघ और राज्यों में वित्तीय संबंध 70
6.4 भारतीय संघीय प्रणाली के तनाव क्षेत्र 73
6.5 संघ-राज्य संबंधों की पुनर्रचना के लिए प्रस्ताव 81
6.6 सरकारिया आयोग (1983-88) की सिफारिशें 88
6.7 सारांश 92
6.8 शब्दकोश 93
6.9 अभ्यास-प्रश्न 93
6.10 सन्दर्भ पुस्तकें 93

7. स्थानीय शासन 94–129

उद्देश्य 94
प्रस्तावना 95
7.1 स्थानीय स्वशासन का अर्थ 95
7.2 भारत में स्थानीय शासन का विकास 96
7.3 स्थानीय स्वशासन का महत्त्व 97
7.4 नगर निगम 98
7.5 पटना नगर निगम 99
7.6 चेन्नई नगर निगम 101
7.7 दिल्ली नगर निगम 102
7.8 नगरपालिका 103
7.9 पंचायती राज 106
7.10 बिहार में पंचायती राज योजना 107
7.11 पंचायत समिति के अधिकार एवं कार्य 116
7.12 पंचायत समिति का वित्तीय आधार 117
7.13 ग्राम पंचायत का संगठन 118
7.14 ग्राम पंचायत का कार्य 121
7.15 ग्राम पंचायत के आर्थिक साधन 122
7.16 ग्राम पंचायतों पर राज्य सरकार का नियंत्रण 124
7.17 अभ्यास-प्रश्न 125
7.18 संदर्भ पुस्तकें 127

इकाई–1

नोट

पाठ 1: भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble of Indian Constitution)

संरचना (Structure)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
1.1 भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble of Indian Constitution)
1.2 प्रस्तावना की मुख्य विशेषताएँ (Main Features of the Preamble)
1.3 प्रस्तावना का महत्त्व (Importance of the Preamble)
1.4 भारत का संविधान : प्रमुख विशेषताएँ (Constitution of India: Salient Features)
1.5 भारतीय संविधान के विशाल आकार के कारण (Causes for Indian Constitution's Extensive Appearance)
1.6 सारांश (Summary)
1.7 शब्दकोश (Keywords)
1.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
1.9 सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- भारतीय संविधान की प्रस्तावना का वर्णन हेतु।
- प्रस्तावना का महत्त्व जानने हेतु।
- संविधान को अंगीकृत करने की तिथि को जानने हेतु।
- संविधान की प्रकृति की व्याख्या करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना को संविधान की आत्मा कहा जाता है।

42वें संविधान संशोधन के पश्चात् अब संविधान की प्रस्तावना है:

"हम भारत के लोग, भारत को एक प्रभुसत्ता सम्पन्न, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतन्त्रीय गणराज्य के रूप में स्थापित करने का निश्चय कर और इसके सभी नागरिकों के लिए यह प्राप्त करने का निश्चय करते हैं;

न्याय, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक; सोचने, बोलने, अपने विचार को प्रकट करने और पाठ-पूजा करने की स्वतन्त्रता;

समान अवसर और स्तर की और सभी में भ्रातृत्व को बढ़ावा देने, जिससे व्यक्ति के सम्मान और राष्ट्र की एकता *अखण्डता* की प्राप्ति हो;

हम अपनी संविधान निर्माण सभा में 26 नवम्बर, 1949 के दिन अपने इस संविधान का निर्माण करते हैं, इसको पास करते हैं और इसे अपने आप को सौंपते हैं।"

शब्द 'समाजवाद', 'धर्म-निरपेक्षता', 'अखुण्डता' पहले प्रस्तावना में शामिल नहीं थे और ये संविधान के 42वें संशोधन (1976) के द्वारा संविधान में शामिल किए गए।

1.1 भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble of Indian Constitution)

संविधान की प्रस्तावना इसकी भावना और अर्थ को खोलने की एक कुंजी होती है। यह बात भारत के संविधान की प्रस्तावना के बारे में भी सत्य है। *के. एम. मुंशी* ने इसको संविधान की राजनीतिक जन्मपत्री करार दिया, जिसने संविधान की मौलिक विशेषताओं, दर्शन और भारतीय राज्य की प्रकृति को प्रकट किया गया है। प्रस्तावना भारत के संविधान के मौलिक दर्शन को दर्शाती है और संविधान की धाराओं की व्याख्या करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। *पंडित ठाकुर भार्गव* ने कहा है, "प्रस्तावना संविधान का बहुत ही बहुमूल्य भाग है, यह संविधान की आत्मा है, यह संविधान की कुंजी है। यह संविधान निर्माताओं का मन खोलने वाली एक कुंजी है। यह संविधान में जड़ा हुआ एक हीरा है। यह एक सुंदर गद्यांश वाली कविता है, बल्कि यह अपने आप में सम्पूर्ण है। यह एक उचित मापदण्ड है जिससे संविधान का मूल्य परखा जा सकता है।"

क्या आप जानते हैं भारतीय संविधान की प्रस्तावना भारतीय संविधान की आत्मा है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks):

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना को भारतीय संविधान की ········ कहा जाता है।
2. शब्द समाजवाद, धर्म-निरपेक्षता, अखण्डता को संविधान की प्रस्तावना में वर्ष ········ में शामिल किया गया था।
3. संविधान का निर्माण ········ को हुआ था।

1.2 प्रस्तावना की मुख्य विशेषताएँ (Main Features of the Preamble)

प्रस्तावना से भारतीय राज्य की प्रकृति और उन उद्देश्यों का ज्ञान मिलता है जोकि भावी सरकारों द्वारा प्राप्त किए जाने हैं। यह जनता की प्रभुसत्ता को प्रकट करती है और उस तिथि को दर्ज करती है जिस दिन संविधान को संविधान

निर्माण सभा के द्वारा अंतिम रूप में अपनाया गया था। प्रस्तावना की विशेषताओं का विश्लेषण निम्नलिखित चार शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है:

(I) सत्ता का स्रोत-लोकप्रिय प्रभुसत्ता (The Source of Authority–Popular Sovereignty)

सबसे पहले प्रस्तावना स्पष्ट रूप में जनता की प्रभुसत्ता के सिद्धान्त को स्वीकार करती है। यह इन शब्दों से आरम्भ होती है: "हम भारत के लोग..." इससे इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि समस्त सत्ता का अंतिम स्रोत जनता ही है। सरकार अपनी शक्ति जनता से प्राप्त करती है। संविधान का आधार और प्रभुसत्ता लोगों में है और ये अपनी प्रभुसत्ता लोगों से प्राप्त करती है। "प्रस्तावना यह भी स्पष्ट करती है कि सदन के सभी सदस्यों की इच्छा है कि, इस संविधान की जड़ें, इसकी सत्ता, इसकी प्रभुसत्ता लोगों से प्राप्त की जाए।" *डॉ. अंबेडकर के अनुसार*, "इस स्वरूप में भारत के संविधान की प्रस्तावना अमरीकी संविधान की प्रस्तावना और संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रस्तावना से मिलती है।"

संविधान निर्माण सभा में दो सदस्यों ने "हम भारत के लोग" शब्दों के प्रयोग का विरोध किया था। *एच. वी. कामथ* चाहते थे कि प्रस्तावना इन शब्दों से आरम्भ होनी चाहिए कि, "परमात्मा के नाम पर" और इस विचार का कुछ अन्य सदस्यों ने भी उनका समर्थन किया था। परन्तु जब विचार-विमर्श के पश्चात् इस प्रस्ताव पर मत डाले गए तो यह प्रस्ताव 41 पक्ष में और 68 विरुद्ध मत होने के कारण रद्द हो गया। एक अन्य सदस्य *मौलाना हज़रत मोहानी* ने इन शब्दों का इस आधार पर विरोध किया कि संविधान निर्माण सभा केवल थोड़े-से मतदाताओं के द्वारा निर्वाचित की गई थी और वह भी साम्प्रदायिक आधार पर डाले गए मतों द्वारा, इसलिए यह पूर्णतया प्रतिनिधि सभा नहीं है। इसलिए यह सभा इन शब्दों का प्रयोग करने के योग्य नहीं है। परन्तु संविधान निर्माण सभा ने इस विचार को भी रद्द कर दिया और इस प्रकार इसके द्वारा स्वीकृत की गई प्रस्तावना का आरम्भ इन शब्दों से होता है कि "हम भारत के लोग" और इन से भारत के लोगों की प्रभुसत्ता के गुण का पता लगता है। 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटिश प्रभुसत्ता की समाप्ति और भारत के एक प्रभुसत्ता सम्पन्न लोकतन्त्रीय गणराज्य के रूप में उभरने के पश्चात् ऐसी घोषणा आवश्यक हो गई थी।

(II) राज्य की प्रकृति (Nature of State)

प्रस्तावना एक राज्य (देश) के रूप में भारत की पांच प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करती है। यह भारत को एक प्रभुसत्ता सम्पन्न, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतन्त्रीय, गणराज्य घोषित करती है। आरम्भ में प्रस्तावना में "समाजवादी" और "धर्म-निरपेक्ष" शब्द शामिल नहीं थे। ये इसमें 42वें संशोधन के द्वारा शामिल किए गए। इन पांच विशेषताओं में से प्रत्येक को स्पष्ट करना आवश्यक है:

(1) भारत एक प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य है (India is a Sovereign State): प्रस्तावना घोषित करती है कि भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न देश है। ऐसी घोषणा भारत पर ब्रिटिश राज्य की समाप्ति पर मोहर लगाने के लिए बहुत आवश्यक थी। यह इस तथ्य की पुष्टि भी करती है कि भारत अब ब्रिटिश क्राउन पर निर्भर प्रदेश या उसकी बस्ती नहीं रहा था। इससे 15 अगस्त 1947 को ब्रिटिश शासन समाप्त होने के पश्चात् भारत को तकनीकी रूप में दिए गए औपनिवेशिक स्तर को समाप्त करने की भी पुष्टि की गई। संविधान निर्माण सभा के द्वारा इसको स्वीकार किए जाने के पश्चात् औपनिवेशक स्तर समाप्त हो गया और भारत पूर्णतया एक प्रभुसत्ता देश के रूप में उभरा। इसने स्वतन्त्रता के संघर्ष के परिणाम की घोषणा की और बल देकर कहा कि भारत स्वयं निर्णय करने के लिए और इनको अपने लोगों और क्षेत्रों पर लागू करने के लिए आंतरिक और बाहरी रूप में स्वतन्त्र है।

परन्तु कुछ आलोचक यह प्रश्न उठाते हैं कि 'राष्ट्रमण्डल' की सदस्यता स्वीकार करने से भारत का प्रभुसत्ता सम्पन्न देश के रूप में स्तर सीमित हुआ है क्योंकि इस सदस्यता से ब्रिटिश महाराजा/महारानी को राष्ट्रमण्डल का मुखिया स्वीकार किया गया है। परन्तु यह विचार ठीक नहीं है। राष्ट्रमण्डल अब ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल नहीं रहा। यह 1949 के पश्चात् अब एक ही जैसे प्रभुसत्ता सम्पन्न मित्र देशों की संस्था बन गया है क्योंकि जिनके बीच ऐतिहासिक सम्बन्ध उनके राष्ट्रीय हितों को साझे प्रयत्नों के द्वारा प्रोत्साहित करने के लिए राष्ट्रमण्डल में इकट्ठा होने को प्राथमिकता देते हैं। भारत का राष्ट्रमण्डल में शामिल होना उसकी स्वेच्छा पर निर्भर है और एक सद्भावना वाली

नोट

कार्यवाही है। ब्रिटिश महाराजा/महारानी का राष्ट्रमण्डल का मुखिया होने का भारतीय संविधान में कोई स्थान नहीं है। भारत का उससे कोई लेना-देना नहीं है। "राष्ट्रमण्डल स्वतन्त्र देशों की संस्था है और ब्रिटिश राजा राष्ट्रमण्डल का सांकेतिक (नाममात्र का) मुखिया है" (नेहरू)। *प्रोफेसर रामास्वामी* उचित कहते हैं कि "भारत का राष्ट्रमण्डल का सदस्य होना एक सद्भावना वाली व्यवस्था है जिसका कि कोई संवैधानिक महत्त्व नहीं है।"

इस प्रकार संविधान की प्रस्तावना भारत के प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतन्त्र देश होने की घोषणा करती है। शब्द प्रभुसत्ता का अर्थ आंतरिक और बाहरी प्रभुसत्ता दोनों को प्रकट करता है। इसका अर्थ यह भी है कि भारत की सरकार आंतरिक और विदेशी मामलों में स्वतन्त्र है और यह अब किसी भी विदेशी शक्ति के नियन्त्रण अधीन नहीं है।

(2) भारत एक समाजवादी राज्य है (India is a Socialist State): यद्यपि भारतीय संविधान में आरम्भ से ही समाजवाद की भावना पाई जाती थी, पर प्रस्तावना में 'समाजवाद' का शब्द शामिल करने के लिए 1976 में संशोधन किया गया। समाजवाद अब भारतीय राज्य की एक प्रमुख विशेषता है। इससे इस तथ्य की झलक मिलती है कि भारत सभी प्रकार का शोषण समाप्त करने के लिए आय, स्त्रोतों और सम्पत्ति के न्यायपूर्ण विभाजन की प्राप्ति अपने समस्त लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लिए वचनबद्ध है। परन्तु समाजवाद मार्क्सवादी/क्रान्तिकारी ढंगों से प्राप्त नहीं किया जाना है अपितु शान्तिपूर्वक, संवैधानिक और लोकतन्त्रीय ढंगों से द्वारा प्राप्त किया जाना है। 'भारत एक समाजवादी राज्य है' के शब्द का वास्तविक अर्थ यह है कि भारत एक लोकतन्त्रीय समाजवादी राज्य है। इससे इसकी सामाजिक-आर्थिक न्याय के प्रति वचनबद्धता का पता लगता है जिसको देश ने लोकतन्त्रीय ढंग के द्वारा प्राप्त किया जाना है। भारत सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता, सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता, सार्वजनिक भलाई और विकास के समाजवादी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प है। परन्तु इस उद्देश्य के लिए वह तानाशाही ढंगों को अपनाने के लिए तैयार नहीं है। भारत समाजवादी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राजनीतिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों में लोकतन्त्रीय उदारीकरण के पक्ष में है। किन्तु 1991 के पश्चात् उदारीकरण के आर्थिक सिद्धान्त को अपनाये जाने ने समाजवाद के भविष्य पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

(3) भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है (India is a Secular State): 42वें संशोधन के द्वारा 'धर्म-निरपेक्षता' को भारतीय राज्य की एक प्रमुख विशेषता के रूप में प्रस्तावना में स्थान दिया गया। इसको शामिल करने से भारतीय संविधान की धर्म-निरपेक्ष प्रकृति को और स्पष्ट किया गया। एक राज्य के रूप में भारत किसी भी धर्म को विशेष स्तर नहीं देता। भारत में सरकारी धर्म जैसी कोई बात नहीं है। यह पाकिस्तान के इस्लामी गणराज्य और अन्य मुस्लिम देशों जैसी धार्मिक सिद्धान्त की राजनीति से अपने आप को अलग करता है। अधिक श्रेष्ठ बात यह है कि भारत ने सभी धर्मों को एक समान अधिकार देकर धर्म-निरपेक्षता को अपनाया है। अनुच्छेदों 25 से 28 तक संविधान सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार देता है। यह सभी नागरिकों को बिना पक्षपात बराबर के अधिकार भी देता है और अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा की व्यवस्था करता है। राज्य नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता में कोई हस्तक्षेप नहीं करता और संविधान धार्मिक उद्देश्यों के लिए कर लगाने की मनाही करता है। *अलैग्जेन्ड्रोविक्स (Alexandrowicks)* लिखते हैं, "भारत एक धर्म-निरपेक्ष देश है जो सभी व्यक्तियों के लिए संवैधानिक रूप में धर्म की स्वतन्त्रता की व्यवस्था करता है और किसी भी धर्म को कोई विशेष दर्जा नहीं देता।" धर्म-निरपेक्षता भारतीय संविधान की मौलिक संरचना का एक भाग है और प्रस्तावना इस तथ्य का स्पष्ट रूप में वर्णन करती है।

(4) भारत एक लोकतान्त्रिक राज्य है (India is Democratic State): प्रस्तावना भारत को एक लोकतन्त्रीय देश घोषित करती है, भारत के संविधान में एक लोकतन्त्रीय प्रणाली की व्यवस्था करता है। सरकार की सत्ता लोगों की प्रभुसत्ता पर निर्भर है। लोगों को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं। सार्वजनिक वयस्क मताधिकार, चुनाव लड़ने का अधिकार, सरकारी पद प्राप्त करने का अधिकार, संगठन स्थापित करने का अधिकार और सरकार की नीतियों की आलोचना और विरोध करने का अधिकार, अपने विचार प्रकट करने और बोलने की स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता और शान्तिपूर्वक सभाएँ करने की स्वतन्त्रता प्रत्येक नागरिक को दी गई है। इन राजनीतिक अधिकारों के आधार पर लोग राजनीति में भाग लेते हैं। वे अपनी सरकार निर्वाचित करते हैं। अपनी सभी कार्यवाहियों के लिए

सरकार लोगों के सामने उत्तरदायी होती है। लोग चुनावों के द्वारा सरकार को परिवर्तित कर सकते हैं। सरकार को सीमित शक्तियाँ प्राप्त हैं। यह संविधान के दायरे में रह कर ही कार्य कर सकती है, लोगों के पास ही प्रभुसत्ता है और उनको मौलिक अधिकार प्राप्त हैं। भारत का सर्वोच्च न्यायालय संविधान द्वारा दिए गए मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। चुनाव निर्धारित अन्तराल के पश्चात् होते हैं और यह स्वतंत्र, नियमित और निष्पक्ष होते हैं। मानव अधिकारों की अधिकतर अच्छे ढंग से रक्षा करने के लिए संसद ने मानव अधिकार एक्ट, 1993 पास किया और इस उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय आयोग स्थापित किया गया। राष्ट्रीय मानव अधिकार को अधिक समावेशी और कुशल बनाने हेतु मानव अधिकार संरक्षण (संशोधन) विधेयक, 2019 को जुलाई 2019 में पारित किया था।

मानव अधिकार संरक्षण विधेयक, मानव अधिकार एक्ट, 1993 के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग, राज्य मानवधिकार आयोग और मानवधिकार न्यायालयों के गठन की व्यवस्था करता है।

संविधान ने संसदीय लोकतन्त्र की व्यवस्था की है। यह ब्रिटिश मॉडल पर आधारित है। इसमें अधीन विधानपालिका (संसद) और कार्यपालिका (मन्त्रिमण्डल) के बीच गहरा सम्बन्ध होता है और कार्यपालिका अपने सभी कार्यों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होती है। विधानपालिका अविश्वास प्रस्ताव पास करके कार्यपालिका को हटा सकती है। प्रधानमन्त्री एच. डी. देवगौड़ा की सरकार को अप्रैल, 1997 में तब त्याग-पत्र देना पड़ा था जब वह लोकसभा में विश्वास का मत प्राप्त करने में असफल रही थी। इसके पश्चात् प्रधानमन्त्री श्री आई. के. गुजराल के नेतृत्व वाली साझे मोर्चे की सरकार लोकसभा में विश्वास का मत प्राप्त करने में सफल रही और यह लोकसभा के मार्च, 1998 में हुए चुनाव तक बनी रही। बारहवीं लोकसभा के चुनावों के पश्चात् केन्द्र में बी.जे.पी. के नेतृत्व में एक साझी सरकार बनी जो अप्रैल, 1999 में बहुमत खो बैठी पर 2004 में चुनाव के बाद यू.पी.ए. की सरकार बनी। 2009 के चुनावों में सफल होने के बाद यह दूसरी बार सत्ता में आई। 2014 के चुनाव के बाद बी.जे.पी. की सरकार बनी। 2019 को चुनाव के बाद यह दूसरी बार सत्ता में आई और अभी तक चल रही है। और 18वीं लोकसभा को चुनावों तक अन्तरिम सरकार की तरह कार्य करती रहेगी।

इससे स्पष्ट है कि हमारा देश भारत एक ऐसा गतिशील लोकतन्त्र है जहाँ सरकार परिवर्तन की प्रक्रिया शान्ति और व्यवस्थित ढंग से पूर्ण की जाती है।

(5) भारत एक गणराज्य है (India is a Republic): प्रस्तावना भारत को एक गणराज्य घोषित करती है। भारत का शासन किसी राजा या मनोनीत मुखिया के द्वारा नहीं चलाया जाता। राज्य का अध्यक्ष एक निर्वाचित मुखिया होता है जोकि एक निर्धारित कार्यकाल के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है। गणराज्य की परिभाषा देते समय *मैडीसन कहते हैं,* "यह एक ऐसी सरकार होती है जो अपने अधिकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से लोगों की महान् संस्था से प्राप्त करती है और ऐसे लोगों के द्वारा चलाई जाती है, जो लोगों की इच्छा के अनुसार ही अपने पदों पर सीमित समय के लिए या अच्छे व्यवहार तक बने रह सकते हैं।" भारत उन शर्तों को पूर्ण करता है और इसलिए यह एक गणराज्य है। प्रस्तावना में दिये शब्द गणराज्य का अर्थ, जिसको स्पष्ट करते हुए, *डी. डी. बासु* कहते हैं कि "न केवल हमारे पास देश का पैतृक राजा होने के स्थान पर एक निर्वाचित राष्ट्रपति होगा बल्कि देश में ऐसी कोई विशेष शासक श्रेणी भी नहीं होगी और सभी पद छोटे-से लेकर (राष्ट्रपति के पद सहित) बड़े से बड़े पद सभी नागरिकों के लिए बिना किसी जाति-पाति, नस्ल, धर्म य लिंग के पक्षपात के खुले होंगे।"

भारत के गणराज्य की स्थिति इसकी राष्ट्र-मण्डल की सदस्यता से टकराव नहीं करती। आस्ट्रेलिया के एक भूतपूर्व प्रधानमन्त्री *सर रॉबर्ट मेंजिज* के द्वारा उठाए इस प्रश्न में अधिक दम नहीं है कि, "एक ऐसा गणराज्य कैसा हो सकता है जोकि राष्ट्रमण्डल का सदस्य हो और ब्रिटिश राजा/महारानी को अपना मुखिया स्वीकार करता हो।" भारत वास्तव में एक प्रभुसत्ता सम्पन्न गणराज्य है। राष्ट्रमण्डल की सदस्यता इसकी स्वेच्छक कार्यवाही है। राष्ट्रमण्डल संयुक्त राष्ट्र के समान एक मैत्रीपूर्ण संस्था है और ब्रिटिश राजा/महारानी की प्रधानता को एक चिह्नात्मक महत्ता ही है।

नोट

(III) राज्य के उद्देश्य (Objectives of the State)

संविधान की प्रस्तावना चार प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन करती है जोकि "इसके सभी नागरिकों के लिए प्राप्त किए जाने हैं।"

(1) न्याय (Justice): भारत का संविधान सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के उद्देश्य को स्वीकार करता है। स्वतन्त्रता की राष्ट्रीय लहर का एक प्रमुख आदर्श सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था प्राप्त करना था। सामाजिक पहलू से न्याय का अर्थ यह है कि समाज में कोई भी विशेष अधिकारों वाली श्रेणी न हो और किसी भी नागरिक से जाति-पाति, नस्ल, रंग, धर्म, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर कोई भी भेदभाव न किया जाए। भारत ने सामाजिक न्याय को एक लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया है। इस उद्देश्य के लिए संविधान सभी नागरिको को समान का अधिकार देता है, छुआ-छूत को एक दण्डनीय अपराध करार देता है, समाज के कमज़ोर वर्गों के लोगों को शेष नागरिकों के लिए विशेष सुरक्षाएँ प्रदान करता है।

आर्थिक न्याय का अर्थ यह है कि आय, धन और आर्थिक स्तर के आधार पर मनुष्यों के साथ कोई भेदभाव नहीं होगा। इसमें धन के न्यायोचित विभाजन या आर्थिक समानता, उत्पादन के साधनों पर एकाधिकारपूर्ण नियन्त्रण को समाप्ति करके, आर्थिक स्त्रोतों का विकेन्द्रीकरण और सभी को जीवन निर्वाह के लिए उचित अवसर प्रदान करने और एक कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का संकल्प शामिल हैं। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों का उद्देश्य भारत में सामाजिक-आर्थिक न्याय और कल्याणकारी राज्य स्थापित करना है। समाजवाद के प्रति वचनबद्धता का उद्देश्य भी सामाजिक-आर्थिक न्याय प्राप्त करने हैं।

राजनीतिक न्याय का अर्थ लोगों को राजनीतिक प्रक्रिया में एक समान, अवसर देना है। जाति-पाति, रंग, नस्ल, धर्म, लिंग या जन्म स्थान के भेदभाव के बिना सभी लोगों को एक ही जैसे राजनीतिक अवसर प्रदान करने की व्यवस्था करना है। भारत का संविधान सभी लोगों को अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करने और सरकारी पद प्राप्त करने का अधिकार देता है परन्तु साथ ही सरकारी पद प्राप्त करने का अधिकार है। राजनीतिक अधिकार प्रदान करना।

इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय संविधान का एक मुख्य उद्देश्य है। जबकि राजनीतिक न्याय उदारवादी लोकतन्त्रीय प्रणाली अपना कर स्थापित कर लिया गया है। सामाजिक और आर्थिक न्याय अभी पूर्ण रूप से प्राप्त किया जाना बाकी है।

(2) स्वतन्त्रता (Liberty): प्रस्तावना स्वतन्त्रता को दूसरा मुख्य उद्देश्य घोषित करती है राज्य का कर्तव्य है कि यह लोगों की स्वतन्त्रता को सुरक्षित करे, विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता प्रदान करें, धार्मिक विश्वास और पूजा पाठ की स्वतन्त्रता को विश्वसनीय बनाए। मौलिक अधिकार प्रदान करने का उद्देश्य इसी उद्देश्य भी यही है व्यक्ति के व्यक्तित्व के पूर्ण रूप से विकसित होने के लिए स्वतन्त्रता एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है। यह अच्छा जीवन जीने के लिए भी आवश्यक शर्त होती है।

(3) समानता (Equality): समानता को प्रस्तावना तीसरा मुख्य उद्देश्य घोषित करती हैं। इसे दो भागों में प्रस्तुत किया गया है: (*i*) स्तर की समानता कानून की दृष्टि में सभी भारतीय एक समान हैं। (*ii*) अवसर की समानता धर्म, नस्ल, लिंग, रंग, जाति-पाति या निवास आदि के भेदभाव के बिना समान अवसरों की उपलब्धि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 समानता का अधिकार प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 16 के अधीन सभी को एक ही जैसे अवसर प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। परन्तु इसके साथ ही संविधान समाज के कमज़ोर वर्ग होने के नाते औरतों और बच्चों को विशेष सुरक्षा भी प्रदान करता है।

(4) भ्रातृभाव (Fraternity): प्रस्तावना स्पष्ट रूप में घोषित करती है कि लोगों के परस्पर भाईचारे और प्रेम को बढ़ावा देना राज्य का लक्ष्य है-ताकि लोगों में भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक एकता की भावना पैदा हो। इसमें मनुष्य का सम्मान बनाए रखने और राष्ट्र की एकता और अखण्डता स्थापित करने और बनाए रखने का लक्ष्य भी शामिल किया गया है। मानवीय सम्मान को हमारी स्वतन्त्रता की लहर में बहुत ही उच्च स्थान दिया गया

था। स्वतन्त्रता संघर्ष इस बात से प्रेरित था कि ब्रिटिश शासकों के द्वारा भारतीय लोगों से किए जा रहे दूसरे दर्जे के व्यवहार को समाप्त किया जाए। इसीलिए प्रस्तावना में यह विशेष रूप में कहा गया है मानवीय आदर और राष्ट्र की एकता और अखण्डता को विश्वसनीय बनाते हुए आपसी भाईचारे को बढ़ावा दिया जाए। यह लक्ष्य मानव अधिकारों की घोषणा से भी मेल खाता है।

इस प्रकार भ्रातृभाव भारतीय संविधान का एक प्रमुख उद्देश्य है।

(IV) संविधान को अपनाने और पारित करने की तिथि

(Date of Adoption and Enactment of the Constitution)

प्रस्तावना के अन्तिम भाग में यह ऐतिहासिक तथ्य दर्ज किया गया है कि संविधान 26 नवम्बर, 1949 को स्वीकार किया गया। इसी दिन ही संविधान पर संविधान निर्माण सभा के प्रधान ने हस्ताक्षर किए और इसको लागू किया जाना घोषित किया।

(V) स्व-निर्मित संविधान (Self-made Constitution)

भारत का संविधान स्व-निर्मित संविधान है। इसे भारत के लोगों के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि संस्था के रूप में संविधान निर्माण सभा ने तैयार, स्वीकार और पास किया है। कुछ आलोचक यह तर्क देते हैं कि यह एक स्वीकृत संविधान नहीं है क्योंकि इस पर कभी भी जनमत-संग्रह नहीं करवाया गया। परन्तु आलोचकों का यह तर्क अधिकतर संवैधानिक विशेषज्ञ इस आधार पर रद्द कर देते हैं कि संविधान निर्माण सभा भारत की जनता और जनमत का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करती थी और इसके द्वारा संविधान को तैयार, स्वीकार और पास करने का अर्थ इसे सभी लोगों के द्वारा स्वीकार और पास किया जाना था। अमरीका के संविधान को भी जनमत-संग्रह के लिए लोगों के सामने प्रस्तुत नहीं किया गया था। इस प्रकार भारत का संविधान भारत के लोगों के द्वारा स्व-निर्मित, स्वीकृत और पारित किया गया और अपनाया गया संविधान है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. भारतीय संविधान की प्रस्तावना में निम्नलिखित में से कौन-सा शब्द शामिल नहीं है—
   (*a*) जातिवाद (*b*) समाजवाद
   (*c*) अखण्डता (*d*) धर्म-निरपेक्षता
5. शब्द 'समाजवाद' को संविधान की प्रस्तावना में शामिल करने के लिए किस सन् में संशोधन किया था?
   (*a*) 1975 (*b*) 1976
   (*c*) 1977 (*d*) 1978
6. सभी नागरिकों को 'धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार' का वर्णन किस अनुच्छेद में किया गया है?
   (*a*) अनुच्छेद 25 से 28 (*b*) अनुच्छेद 25 से 29
   (*c*) अनुच्छेद 28 से 35 (*d*) अनुच्छेद 25 से 30

1.3 प्रस्तावना का महत्त्व (Importance of the Preamble)

प्रस्तावना की विशेषताओं का वर्णन करने के पश्चात् इसके महत्त्व का अनुमान लगाना सरल हो जाता है। यह संविधान के दार्शनिक आधारों को पेश करती है और इसके उद्देश्य स्पष्ट करती है। मुख्य न्यायाधीश *सुब्बाराव* ने बिलकुल उचित कहा था, "संविधान के रूप में जो उद्देश्य प्राप्त करने का लक्ष्य आंका गया है वह इसकी प्रस्तावना से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। यह शुद्ध रूप में इसके आदर्शों और आशाओं को दर्शाता है।" इसी प्रकार मुख्य

नोट

न्यायाधीश *हिदायतउल्ला* ने भी कहा, "प्रस्तावना संयुक्त राज्य अमरीका की स्वतन्त्रता की घोषणा के अनुरूप है, परन्तु यह निश्चित ही घोषणा से कुछ अधिक है। यह हमारे संविधान की आत्मा है और हमारे राजनीतिक समाज के ढंगों को निर्धारित करती है जिसको कि यह एक प्रभुसत्ता सम्पन्न, लोकतन्त्रीय गणराज्य घोषित कर देती है। इसमें एक ऐसा दृढ़ निश्चय शामिल है जो क्रान्ति के बिना कोई भी बदल नहीं सकता।"

वास्तव मे प्रस्तावना संविधान की व्याख्या की कुंजी है। यह संविधान के सिद्धान्तों, आदर्शों और उद्देश्यों की बात करती है। यह संविधान के मौलिक संरचना के ढांचे का एक अंग है। इसी प्रस्तावना के आधार पर ही भारत का संविधान अपने आप को एक सामाजिक क्रान्ति के प्रति वचनबद्ध करता है। प्रस्तावना उन विचारों एवं मूल्यों को दर्शाती है जिनको प्राप्त करने के लिए संविधान वचनबद्ध है।

क्या प्रस्तावना संविधान का एक अंग है? (Is the Preamble a Part of the Constitution?)

बेरूबारी यूनियन और कुछ क्षेत्रों (Enclaves) के हस्तांतरण से सम्बन्धित राष्ट्रपति द्वारा मांगे गए परामर्श के बारे में अपना परामर्श देते हुए *सर्वोच्च न्यायलय* ने कहा था कि "प्रस्तावना इसके निर्माताओं की सोच को प्रकट करने वाली एक कुंजी है... परन्तु प्रस्तावना संविधान का भाग नहीं है।" परन्तु बाद में केशवानंद भारतीय मुकद्दमे के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने अपना निर्णय बदल दिया और कहा कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है। चाहे कि यह लागू करने योग्य नहीं है, तो भी यह संविधान का एक भाग है वास्तव में प्रस्तावना भारतीय संविधान के मौलिक संरचना का एक विशेष और महत्त्वपूर्ण भाग है। भारतीय संसद ने इस तथ्य को स्वीकार किया है और इसीलिए संविधान के द्वारा किए गए संशोधन प्रक्रिया के अनुसार ही 42वां संशोधन पास करके संविधान की प्रस्तावना में कुछ अन्य शब्द जोड़े गए हैं। इस प्रकार प्रस्तावना को अब संविधान का एक भाग, एक पवित्र भाग माना जाता है। "प्रस्तावना भारतीय संविधान की आत्मा है क्योंकि इसमें मौलिक सिद्धान्त शामिल हैं और यह संविधान की मौलिक संरचना पर प्रकाश डालते हैं।" यह भारत के संविधान की मौलिक संरचना की परिभाषा देती है और इसलिए यह अपने-आप में भी मौलिक संरचना का एक भाग है।

टास्क भारतीय संविधान की प्रस्तावना के महत्व पर अपने विचार व्यक्त करें।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

7. संविधान की प्रस्तावना में कुछ अन्य शब्द जोड़े गए थे संविधान के .... संशोधन में
   (*a*) 38वें (*b*) 42वें (*c*) 36वें (*d*) 44वें

1.4 भारत का संविधान : प्रमुख विशेषताएँ (Constitution of India: Salient Features)

भारत का संविधान अपने व्यापक आकार, एकात्मक-संघवाद, लचक और कठोरता के मिश्रण तथा विभिन्न संकटकालीन स्थिति का समाधान करने के लिए विशेष प्रावधानों सहित एक अनुपम संविधान है जोकि 1950 से लेकर आज तक सफलता से कार्य कर रहा है। संविधान के निर्माताओं का यह प्रयास था कि राष्ट्र को एक नया व्यवहार-कुशल संविधान प्रदान किया जाए जोकि राष्ट्र की एकता और अखण्डता तथा विकास प्राप्त करने में समर्थ हो और राष्ट्र-निर्माण और सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण को सुनिश्चित करने के लिए आधार दे सके। इसीलिए उन्होंने अन्य संविधानों की उन विशेषताएँ जोकि भारतीय दृष्टिकोण तथा राष्ट्रीय आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त और आवश्यक थीं, भारतीय संविधान में शामिल करने का प्रयास किया और वे काफ़ी सीमा तक अपने इस उद्देश्य में सफल भी रहे। संविधान निर्माण सभा में बोलते हुए डा. *अम्बेडकर* ने कहा था कि "मैं समझता हूँ कि यह

नोट

(संविधान) व्यवहार-कुशल है, यह लचकीला है और यह अमन और युद्ध दोनों समय पर देश को एकजुट रखने के लिए काफ़ी शक्तिशाली है। सत्य ही मैं यह कह सकता हूं, यदि संविधान के अधीन परिस्थितियां दूषित हो जाती हैं तो इसका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान कमजोर है, बल्कि हमें यह कहना पड़ेगा कि इसका कारण मानवीय त्रुटि है।"

भारत के संविधान की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है:

1. लिखित और विस्तृत संविधान (Written and Detailed Constitution): भारत का संविधान एक लिखित और विस्तृत दस्तावेज़ है। इसमें 448 अनुच्छेद हैं जो 25 भागों में विभाजित हैं इसमें 12 अनुसूचियां शामिल हैं और इसमें 104 संवैधानिक संशोधन भी शामिल किए जा चुके हैं। *जैनिंग्ज़(Jennings)* इसको "विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान" घोषित करते हैं। यह अमरीकी संविधान, जिसके 7 अनुच्छेद और 27 संशोधन हैं, जापानी संविधान, जिसके 103 अनुच्छेद हैं और फ्रांसीसी संविधान, जिसके 92 अनुच्छेद हैं और 24 संशोधन हैं, से कहीं बड़ा है।

संविधान के निर्माता किसी भी विषय के प्रति उपेक्षा का अवसर नहीं देना चाहते थे क्योंकि वे स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में विद्यमान सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक समस्याओं के प्रति पूर्णतया सचेत थे। अनेकों अनुपम विशेषताएँ शामिल करने जैसे राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्त, संकटकाल स्थिति की व्यवस्थाएँ, भाषायी व्यवस्थाएँ, अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़ी श्रेणियों से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ, निर्वाचन आयोग, संघीय लोक सेवा आयोग (UPSC) और राज्य लोक सेवा आयोगों आदि जैसी संवैधानिक संस्थाओं की व्यवस्थाओं ने संविधान को काफ़ी लम्बा कर दिया। केन्द्र और राज्यों के लिए साझा संविधान बनाने के निर्णय ने भी इसकी लम्बाई बढ़ाई। इसके साथ ही मौलिक अधिकारों, संघ राज्य सम्बन्धों, संविधान की अनुसूचियों आदि जैसी व्यवस्थाओं को विस्तार में लिखने के कारण भी इसका विस्तार हुआ। इन्हीं कारणों से संविधान लगभग 400 पृष्ठों की एक पुस्तक बन गया। फिर समय-समय पर पास हुए संवैधानिक संशोधनों ने इसके आकार को और अधिक विस्तृत कर दिया।

संविधान के व्यापक आकार के कारण ही इसकी "वकीलों का स्वर्ग" कह कर आलोचना की गई और अधिक शब्दों के प्रयोग ने इसको अधिक जटिल और कठोर बना दिया। परन्तु, जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है, संविधान के विशाल आकार का कारण था जहां तक संभव हो सके प्रत्येक विषय को स्पष्ट रूप में लिखने और समाधान करने का निर्णय। 1950 से संविधान के लागू होने पर इसके कार्य-व्यवहार से पता लगता है कि इसके बहुत बड़े आकार ने बाधा नहीं डाली। कुछ व्यवस्थाएँ जैसे कि धारा 31 के अधीन सम्पत्ति का अधिकार (जिसको अब भाग III में से निकाल दिया गया है) को छोड़ कर संविधान के बड़े ने इसकी व्याख्या करने में कोई विशेष समस्या खड़ी नहीं की। बल्कि शान्ति और युद्ध दोनों अवसरों पर देश को उत्तम व्यवस्था और आवश्यक स्थायित्व प्रदान करने का कार्य किया है।

2. स्वनिर्मित और पारित हुआ संविधान (Self-made and Enacted Constitution): भारत का संविधान एक ऐसा संविधान है जो भारत के लोगों की अपनी निर्वाचित प्रभुसत्तापूर्ण प्रतिनिधि संस्था संविधान निर्माण सभा के द्वारा तैयार किया गया है। यह सभा दिसम्बर, 1946 में कैबिनेट मिशन योजना के अधीन गठित की गई थी। इसने अपना प्रथम अधिवेशन 9 दिसम्बर, 1946 को किया और 22 जनवरी 1947 को अपना उद्देश्य प्रस्ताव पास किया था। इसके पश्चात् इसने संविधान निर्माण का कार्य ठीक दिशा में तीव्रता से आरम्भ किया और यह अन्ततः 26 नवम्बर, 1949 को संविधान पारित करने और अपनाने की स्थिति में पहुंची। इस प्रकार भारतीय संविधान स्वनिर्मित है और इसे उचित रूप में पारित किया गया है। कुछ आलोचक इस आधार पर इस विचार को स्वीकार नहीं करते कि संविधान निर्माण सभा बहुत थोड़े-से मतदाताओं ने ही निर्वाचित की थी जोकि जनसंख्या के 20 प्रतिशत भाग से भी कम थे और यह भी साम्प्रदायिक चुनाव मण्डलों के आधार पर निर्वाचित की गई थी। परन्तु बहुत बड़ी संख्या में विद्वान् इस आलोचना को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि संविधान निर्माण सभा पूर्णतया प्रतिनिधि संस्था थी और इसको लोगों के द्वारा दिए प्रभुसत्ता सम्पन्न अधिकारों का प्रयोग करते हुए इसने संविधान का निर्माण किया था।

नोट

3. संविधान की प्रस्तावना (Preamble to the Constitution): भारत के संविधान की प्रस्तावना एक अच्छी तरह तैयार किया दस्तावेज है जोकि संविधान के दर्शन और उद्देश्यों का वर्णन करती है। यह घोषणा करती है कि भारत एक ऐसा प्रभुसत्ता सम्पन्न, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतन्त्रीय-गणराज्य जिसमें लोगों को न्याय, स्वतन्त्रता और समानता प्रदान करने और भाईचारिक सांझ, व्यक्तिगत आदर, राष्ट्र की एकता और अखंण्डता को उत्साहित करने और स्थापित रखने का वचन दिया गया है। प्रस्तावना के आरम्भ में प्रस्तावना को भारतीय संविधान का भाग नहीं माना गया था परन्तु सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा केशवानंद भारती केस में दिए गए निर्णय के पश्चात् इसको संविधान का एक भाग मान लिया गया है। इसमें 42वां संशोधन (1976) के द्वारा संशोधन किया गया और शब्द 'समाजवाद', 'धर्म-निरपेक्ष' और 'अखण्डता' इसमें शामिल किए गए।

4. भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतन्त्रीय, गणराज्य है (India is a Sovereign, Socialist, Secular, Democratic, Republic): जैसे कि प्रस्तावना में घोषणा की गई है, भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतन्त्रीय गणराज्य है। ये विशेषताएँ भारतीय राज्य के पांच प्रमुख लक्षणों को प्रकट करती हैं:

***(i)* भारत एक प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्य है (India is a Sovereign State):** प्रस्तावना घोषित करती है कि भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य है। यह इसलिए आवश्यक था कि भारत पर ब्रिटिश शासन समाप्त हो चुका था और भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन नहीं रहा था। इसने 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटिश शासन की समाप्ति के पश्चात् भारत को तकनीकी रूप में मिले औपनिवेशिक स्तर के समाप्त होने की भी पुष्टि भी इसमें की गई। संविधान निर्माण सभा के द्वारा संविधान को अपनाने से यह औपनिवेशिक स्थिति समाप्त हो गई और भारत पूर्णतया स्वतन्त्र देश के रूप में विश्व मानचित्र पर उभर कर सामने आया। इसने स्वतन्त्रता के संघर्ष के परिणाम की घोषणा की और इस बात की पुष्टि की कि भारत आंतरिक और बाह्य रूप में अपने निर्णय स्वयं लेने और इनको अपने लोगों और क्षेत्रों के लिए लागू करने के लिए स्वतन्त्र है।

***(ii)* भारत एक समाजवादी राज्य है (India is a Socialist State):** चाहे कि आरम्भ से ही भारतीय संविधान में समाजवाद की भावना शामिल थी, परन्तु इसे स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना में समाजवाद का शब्द शामिल करने के लिए इसमें 1976 में संशोधन किया गया। इससे इस तथ्य का पता लगता है कि भारत सभी प्रकार के शोषण की समाप्ति करके और आय, स्रोतों की सम्पत्ति की उचित बांट करके अपने लोगों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है। परन्तु यह मार्क्स/क्रान्तिकारी ढंगों से नहीं बल्कि शान्तिपूर्वक, संवैधानिक और लोकतन्त्रीय ढंगों के द्वारा प्राप्त किए जाने के प्रति वचनबद्ध है। यह शब्द, कि भारत एक समाजवादी देश है, का वास्तव में अर्थ यह है कि भारत एक लोकतन्त्रीय समाजवादी देश है। इससे सामाजिक आर्थिक न्याय के प्रति वचनबद्धता का पता लगता है जोकि देश के द्वारा लोकतन्त्रीय व्यवहार और संगठित नियोजन के द्वारा प्राप्त की जानी है। किन्तु 1991 में उदारीकरण, निजीकरण और विश्विकरण की नई आर्थिक नीति अपनाए जाने के बाद इस पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है।

***(iii)* भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है (India is a Secular State):** 42वें संशोधन के द्वारा भारत राज्य की अन्य विशेषताओं के साथ-साथ शब्द "धर्म-निरपेक्षता" भी प्रस्तावना में शामिल किया गया। इसके शामिल करने का सामान्य तौर पर अर्थ यह है कि यह भारतीय संविधान के धर्म-निरपेक्ष स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करता है एक राज्य (देश) होने के नाते भारत किसी भी धर्म को कोई विशेष दर्जा नहीं देता। भारत का कोई सरकारी धर्म नहीं है। इससे यह मौलिकवादी या धर्म आधारित राज्यों, जैसा कि पाकिस्तान और अन्य मुस्लिम देशों के राज्यों से अलग बन जाता है। हाँ, सकारात्मक पहलू यह है कि भारत में सभी धर्मों को एक-समान अधिकार और स्वतन्त्रता देकर धर्म-निरपेक्षता की नीति अपनाई गई है। अनुच्छेदों 25 से 28 तक संविधान अपने सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार देता है। यह बिना किसी पक्षपात के अपने सभी नागरिकों को समान अधिकार देता है, अल्प-संख्यकों को विशेष रूप में सुरक्षा देने का प्रयास करता है। राज्य नागरिकों की धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप नहीं करता और धार्मिक उद्देश्यों के लिए किसी भी प्रकार का कोई कर नहीं लगा सकता।

(*iv*) **भारत एक लोकतन्त्रीय राज्य है (India is a Democratic State):** संविधान की प्रस्तावना भारत को एक लोकतन्त्रीय राज्य घोषित करती है। भारत का संविधान एक लोकतन्त्रीय प्रणाली स्थापित करता है- सरकार की सत्ता लोगों की प्रभुसत्ता पर निर्भर है। लोगों को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त है। जैसे कि सार्वजनिक वयस्क मताधिकार, चुनाव लड़ने का अधिकार, सरकारी पद प्राप्त करने का अधिकार, संगठन स्थापित करने का अधिकार और सरकार की नीतियों की आलोचना और उनका विरोध करने का अधिकार। इन अधिकारों के आधार पर ही लोग राजनीति की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। वे अपनी सरकार का निर्वाचन स्वयं करते हैं। चुनाव निर्धारित अन्तराल के बाद या फिर जब भी इनकी आवश्यकता हो, तब करवाए जाते हैं। यह चुनाव स्वतन्त्र, उचित और निष्पक्ष होते हैं सरकार अपनी सभी कार्यवाहियों के लिए लोगों के प्रति उत्तरदायी होती है। लोग चुनावों के द्वारा सरकार बदल सकते हैं। कोई भी वह सरकार सत्ता में नहीं रह सकती जिसमें लोगों के प्रतिनिधियों का विश्वास न हो। अप्रैल, 1997 में प्रधानमन्त्री एच. डी. देवगौड़ा की सरकार को त्याग-पत्र देना पड़ा था क्योंकि यह लोकसभा में विश्वास का प्रस्ताव प्राप्त करने में असफल रही थी। अप्रैल, 1998 में श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बी.जे.पी. गठबंधन सरकार ने शासन-भार संभाला परन्तु यह सरकार भी अप्रैल, 1999 में एक वोट की कमी के कारण लोकसभा से अपना विश्वास मत प्राप्त न कर सकी। इसने अपना त्याग-पत्र दे दिया और 12वीं लोकसभा भंग कर दी गई तथा एक बार फिर लोगों को अपनी सरकार चुनने का अवसर दिया गया। सितम्बर-अक्तूबर 1999 के चुनावों में लोगों ने राष्ट्रीय लोकतन्त्रीय गठबंधन को बहुमत दिया और 13 अक्तूबर 1999 को इस गठबंधन ने भारत में एक नई लोकतन्त्रीय सरकार का गठन किया जोकि अप्रैल 2004 तक सत्तारूढ़ रही। फिर 14वीं लोकसभा के चुनाव परिणामों के आधार पर कांग्रेस के नेतृत्व में यू.पी.ए. सरकार का गठन मई 2004 में हुआ। 2009 के चुनाव में यह दोबारा सत्ता में आई। 2014 के चुनाव के बाद बी.जे.पी. की सरकार बनी। 2019 के चुनाव में यह दूसरी बार सत्ता में आई और यह आज तक सत्तारूढ़ है। इस प्रकार में एक गतिमान लोकतन्त्रीय प्रणाली है। इसमें सरकार बदलने का कार्य शान्तिपूर्ण एवं व्यवस्थित ढंग से किया जाता है। सरकार जनता और जनमत का प्रतिनिधत्व करती है और अपने प्रत्येक कार्य के लिए जनता के समक्ष उत्तरदायी होती है। भारतीय लोकतन्त्र को विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र होने का सम्मान प्राप्त है इसके पीछे भारतीय संविधान का अभूतपूर्व योगदान है।

(*v*) **भारत एक गणराज्य है (India is a Republic):** संविधान की प्रस्तावना भारत को एक गणराज्य घोषित करती है। भारत पर किसी राजा यह उसके द्वारा मनोनीत मुखिया के द्वारा शासन नहीं चलाया जाता। भारत के राष्ट्रपति को संसद के तथा राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों से बने निर्वाचन मण्डल के द्वारा चुना जाता है और वह पाँच साल के कार्यकाल के लिए कार्य करता है। भारत के एक गणराज्य होने की स्थिति का राष्ट्रमण्डल की भारतीय सदस्यता का किसी भी ढंग से कोई टकराव नहीं है।

5. भारत राज्यों का एक संघ है (India is a Union of States): संविधान का अनुच्छेद 1 घोषित करता है: भारत राज्यों का एक मिलन है। यह भारत को न तो एक संघात्मक राज्य और न ही एक एकात्मक राज्य घोषित करता है। इस विचार से दो महत्त्वपूर्ण पक्ष सामने आते हैं। "पहला यह कि भारत एक ऐसा संघ नहीं जो प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों के द्वारा परस्पर सहमति के परिणाम के रूप में अस्तित्व में आया हो, जैसे कि संयुक्त राज्य अमरीका और दूसरी बात यह है कि भारत की भागीदार इकाइयों (प्रदेशों) को इससे अलग होने का कोई अधिकार नहीं है।" संविधान के द्वारा भारत को 29 भाग ए, भाग बी, भाग सी और भाग डी में बांटा गया था। 1956 में पुनर्गठन के पश्चात् भारत का 16 राज्यों और 3 केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में पुनर्गठन किया गया। धीरे-धीरे कई परिवर्तनों के द्वारा और सिक्कम के भारतीय संघ में शामिल हो जाने पर राज्यों की संख्या बदलती रही है। भारत में अब 28 राज्य और 8 केन्द्र प्रशासित क्षेत्र हैं।

6. संघीय ढांचा और एकात्मक भावना (Federal Structure and a Unitary Spirit): भारत का संविधान एकात्मक भावना वाली संघीय संरचना ही स्थापित करता है। विद्वान् भारत को एक "अर्ध-फैडरेशन" (Quasi-Federation) (के. सी. ह्वीयर) या एकात्मक आधार वाली फैडरेशन या एकीकृत संघात्मक कह देते हैं। एक संघात्मक राज्य के समान भारत का संविधान ये व्यवस्थाएँ स्थापित करता है: (*i*) केन्द्र और राज्यों में शक्तियों का विभाजन, (*ii*) एक लिखित और कठोर संविधान, (*iii*) संविधान की सर्वोच्चता, (*iv*) स्वतन्त्र

न्यायपालिका जिसको कि शक्तियों के विभाजन के बारे में केन्द्र-राज्य झगड़ों के निर्णय का भी अधिकार है, और (v) दो-सदनीय संसद। परन्तु बहुत ही शक्तिशाली केन्द्र, साझा संविधान, एकल नागरिकता, संकटकाल स्थिति की व्यवस्था, साझा चुनाव कमीशन, साझी अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था करके संविधान स्पष्ट रूप में एकात्मक भावना को प्रकट करता है। संघवाद और एकात्मकवाद का मिश्रण भारतीय समाज के बहुलवादी स्वरूप और क्षेत्रीय विभिन्नताओं को ध्यान में रख कर और राष्ट्र की एकता और अखण्डता की आवश्यकता के कारण किया गया है। प्रथम ने संघवाद के पक्ष में निर्णय लेने के लिए विवश किया और दूसरी ने एकात्मकता की भावना को अपनाना आवश्यक बना दिया। इस प्रकार भारत का संविधान न तो पूर्णतयासंघीय है और न हीं एकात्मक बल्कि यह दोनों का मिश्रण है। यह आंशिक रूप में संघीय और आंशिक रूप में एकात्मक राज्य है। (डी. एन. बैनर्जी)

7. कठोरता और लचकशीलता का मिश्रण (Mixture of Rigidity and Flexibility): भारत का संविधान कई विषयों पर संशोधन के लिए एक कठोर संविधान है। इसकी कुछ व्यवस्थाएँ बहुत कठिन ढंग से संशोधित की जा सकती हैं जबकि दूसरे कुछ प्रावधानों में बड़ी आसानी से संशोधन किया जा सकता है। कुछ मामलों में संसद संविधान के कुछ भाग को केवल एक कानून पारित करके ही संशोधित कर सकती है। उदाहरण के रूप में नए राज्य बनाने, किसी राज्य के क्षेत्र बढ़ाये या घटाने, नागरिकता से सम्बन्धित नियम, किसी राज्य की विधान परिषद् को स्थापित करने या समाप्त करने से सम्बन्धित संशोधन आसानी से पारित किए जा सकते हैं। यहाँ अनुच्छेद 249 के अधीन यह किसी राज्य विषय को राज्य सभा दो-तिहाई बहुमत से एक राष्ट्रीय महत्त्व का विषय घोषित कर सकती है और उसे एक वर्ष के लिए केन्द्रीय संसद के कानून निर्माण के अधिकार क्षेत्र में ला सकती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 312 के अधीन इसी ढंग के द्वारा वह कोई भी अखिल भारतीय सेवा संगठित कर सकती है या समाप्त कर सकती है। यह विशेषता संविधान की लचकशीलता को दर्शाती है।

परन्तु अनुच्छेद 368 के अधीन संविधान में संशोधन के लिए निम्न व्यवस्था की गई है:

(1) अधिकतर संवैधानिक व्यवस्थाओं में संशोधन संसद के द्वारा कुल सदस्यों की बहुसंख्या से और विद्यमान सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से दोनों सदनों द्वारा एक संशोधन बिल पास कर के किया जा सकता है।

(2) कुछ विशेष संवैधानिक व्यवस्थाओं में संशोधन के लिए एक अत्यंत कठोर व्यवस्था की गई है। पहले कुछ विषयों के सम्बन्ध में एक संशोधन प्रस्ताव संसद के कुल सदस्यता के बहुमत और उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से और दोनों सदनों में अलग-अलग प्रस्तावों का पास होना आवश्यक है और उसके पश्चात् इसकी पुष्टि के कम-से-कम आर्ध राज्यों की राज्य विधान सभाओं से होना आवश्यक है। इस ढंग के द्वारा संशोधन निम्न विषयों पर किया जाता है: (*i*) राष्ट्रपति के चुनाव का ढंग, (*ii*) संघीय की कार्यपालिका की शक्तियों की क्षेत्र सीमा, (*iii*) राज्य कार्यपालिकाओं की शक्ति की क्षेत्र-सीमा, (*iv*) संघीय न्यायपालिका से सम्बन्धित प्रावधान, (*v*) राज्यों के उच्च न्यायालयों से सम्बन्धित प्रावधान, (*vi*) वैधानिक शक्तियों का विभाजन, (*vii*) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व; (*viii*) संविधान में संशोधन का ढंग और (*ix*) संविधान की सातवीं अनुसूची।

परन्तु वास्तव में संविधान लचकीला सिद्ध हुआ है। इस बात का प्रमाण यह है कि 1950 से जनवरी 2020 तक संविधान में 104 संशोधन किए गए। कांग्रेस की प्रभावी स्थिति (1950-77), (1980-89) के कारण संविधान में वातावरण के अनुसार परिवर्तन किए गए और कई संकटकाल स्थितियों जैसा कि पंजाब और जम्मू और कश्मीर में केन्द्रीय शासन की अवधि बढ़ाने के लिए भी कुछ संशोधन किए गए। यहाँ तक कि 1989 में बनी साझे मोर्चे की सरकार, को भी अपने शासन के एक वर्ष में 4 संशोधन करने पड़े। अब तक संविधान में 104 संशोधन पास हो चुके हैं।

8. मौलिक अधिकार (Fundamental Rights): भाग III में अनुच्छेद 12-35 के अधीन भारत का संविधान अपने नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है। आरम्भ में 7 मौलिक अधिकार दिए गए थे परन्तु बाद में मौलिक अधिकारों की श्रेणी में से (42वीं संवैधानिक संशोधन 1976 द्वारा) सम्पत्ति का अधिकार समाप्त कर दिया गया और इस प्रकार मौलिक अधिकारों की संख्या घट कर 6 रह गई है। परन्तु प्रत्येक मौलिक अधिकार में बहुत-से अधिकार और स्वतन्त्रताएँ शामिल हैं। नागरिकों के 6 मौलिक अधिकार निम्नलिखित हैं:

(*i*) समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18) [Right to Equality (Article 14-18)]: इसके अनुसार, कानून के सामने सभी नागरिक समान हैं, इसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव न किए जाने की

नोट

व्यवस्था की गई है। सभी को समान अवसर प्रदान करने, छूत-छात की कुप्रथा समाप्त करने और उपाधियां समाप्त करने की व्यवस्था भी की गई है।

(ii) स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22) [Right to Freedom (Article 19-22)]: अनुच्छेद 19 में 6 मौलिक स्वतन्त्रताएँ शामिल हैं-भाषण देने और अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता, संगठन/संस्थाएँ स्थापित करने की स्वतन्त्रता, बिना शस्त्र लिए शान्तिपूर्वक सभाएँ करने की स्वतन्त्रता, भारत में सभी स्थानों पर घूमने की स्वतन्त्रता, किसी भी क्षेत्र में जाकर बसने की स्वतन्त्रता और कोई भी व्यवसाय, व्यापार या रोज़गार अपनाने की स्वतन्त्रता। अनुच्छेद 20 व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अभियुक्तों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करता है। अनुच्छेद 21 व्यवस्था करता है कि कानून के अनुसार की जाने वाली किसी कार्यवाही के बिना किसी भी व्यक्ति को जीवित रहने और स्वतन्त्रता के अधिकार से विहीन नहीं रखा जा सकता। अब 86वें संवैधानिक संशोधन में 21-A धारा शामिल की गई जिसके द्वारा 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 22 के अधीन राज्य द्वारा किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में प्रावधान दर्ज किए गए हैं ताकि किसी भी नागरिक की स्वतन्त्रता को स्वेच्छाचारी ढंग से पुलिस सीमित न कर सके।

(iii) शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24) [Right against Exploitation (Article 23-24)]: यह मौलिक अधिकार औरतों को खरीद-बेच, वेगार (बंधुआश्रम) और खतरे वाले स्थानों पर बाल मज़दूरी की मनाही करता है।

(iv) धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28) [Right to Freedom of Religion (Article 25-28)]: इस अधिकार में चेतना, धर्म और पाठ-पूजा की स्वतन्त्रता शामिल है। यह सभी धर्मों को अपने-अपने धार्मिक स्थानों का निर्माण करने और इनको चलाने की स्वतन्त्रता देता है। अनुच्छेद 27 में यह व्यवस्था की गई है कि किसी भी व्यक्ति को किसी धर्म के प्रचार के लिए पैसा एकत्रित करने के लिए कोई कर देने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। राज्य किसी भी धर्म के लिए कोई कर नहीं लगा सकता और अनुदान देते समय राज्य धर्म के आधार पर कोई पक्षपात नहीं कर सकता। अनुच्छेद 28 सरकारी और सरकारी सहायता लेने वाले स्कूलों और कॉलजों में धार्मिक शिक्षा देने की मनाही करता है।

(v) सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार (अनुच्छेद 29-30) [Cultural and Educational Rights (Article 29-30)]: इस के अधीन संविधान में अल्पसंख्यकों के अधिकारों, उनकी भाषाओं और संस्कृतियों को सुरक्षित रखने और विकसित करने की व्यवस्था है। यह उनको अपनी शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने, बनाए रखने और चलाने का अधिकार भी देता है।

(vi) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32) [Right to Constitutional Remedies (Art. 32)]: यह मौलिक अधिकार पूर्ण अधिकार पत्र की आत्मा है। यह न्यायालयों के द्वारा मौलिक अधिकारों को लागू करने और उनकी सुरक्षा करने की व्यवस्था करता है। यह सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकार लागू करने के लिए आवश्यक निर्देश और आदेश जारी करने का अधिकार देता है।

भारतीय नागरिकों के अब छः मौलिक अधिकार हैं। सम्पत्ति का अधिकार अब मौलिक अधिकारों की सूची से निकाला हुआ है और यह अब अनुच्छेद 300-ए के अधीन एक कानूनी अधिकार है।

मौलिक अधिकार प्रदान करते और इनकी गारंटी देते हुए, संविधान ने इन पर कई अपवाद भी लागू किए हैं। यह प्रतिबन्ध सार्वजनिक शान्ति और कानून व्यवस्था, नैतिकता, राज्य की सुरक्षा और भारत की प्रभुसत्ता और भू-क्षेत्रीय अखण्डता स्थापित रखने के हित में लागू किए गए हैं। इससे भी अधिक इन अधिकारों में अनुच्छेद 368 के अधीन बताए गए ढंग के अनुसार संशोधन किया जा सकता है और अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रीय संकटकाल स्थिति के समय ये स्थगित भी किए जा सकते हैं।

9. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग और मानव अधिकारों की सुरक्षा (The National Human Rights Commission (NHRC) and Protection of Human Rights): भारत के लोगों के सभी लोकतन्त्रीय और मानव अधिकारों को अधिक अच्छी तरह से सुरक्षा प्रदान करने के लिए केन्द्रीय संसद ने

नोट

1993 में मानव अधिकारों की सुरक्षा के बारे अधिनियम पास किया। इसके अधीन भारत के एक सेवा-मुक्त न्यायाधीश के नेतृत्व में मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग स्थापित किया गया। यह एक स्वतन्त्र आयोग है इसे लोगों के मानव अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए और मानव अधिकारों का उल्लंघन सिद्ध हो जाने पर पीड़ित लोगों के लिए क्षतिपूर्ति करने का आदेश देने के लिए एक नागरिक न्यायालय का दर्जा प्राप्त है। आम लोगों के मानव-अधिकारों और हितों की प्राप्ति और सुरक्षा के लिए सार्वजनिक हित मुकद्दमा व्यवस्था (Public Interest Litigation-PIL) भी महत्त्वपूर्ण साधन बनी हुई है।

10. नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties of the Citizens): संविधान अपने भाग IV-ए अनुच्छेद 51-ए (1976 में 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा शामिल किए गए) के अधीन नागरिकों के निम्नलिखित 10 मौलिक कर्त्तव्य निर्धारित करता है: (1) संविधान, राष्ट्रीय झंडे और राष्ट्र गान का आदर करना, (2) स्वतन्त्रता के संग्राम के उच्च आदर्शों पर चलना, (3) भारत की प्रभुसत्ता, एकता और अखण्डता को बनाए रखना, (4) देश की सुरक्षा करना और जब भी आवश्यकता पड़े राष्ट्र के लिए अपनी सेवा अर्पित करना, (5) भारत के सभी लोगों की साझे भ्रातृत्व को बढ़ावा देने और औरतों के मान सम्मान को चोट पहुँचाने वाली प्रत्येक कार्यवाही की निंदा करना, (6) राष्ट्र की साझी सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा करना, (7) प्राकृतिक वातावरण की सुरक्षा करना और जीव जन्तुओं के प्रति दया रखना, (8) वैज्ञानिक सोच मानववाद और ज्ञान और शोध की भावना को विकसित करना; (9) सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करना और हिंसा से दूर रहना, और (10) सभी व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों में शानदार प्राप्तियों के लिए उत्सुक रहने का प्रयास करना।

संविधान की 86वें संशोधन के द्वारा माता-पिता का यह कर्त्तव्य बनाया गया है कि वे अपने बच्चों को आवश्यक रूप में शिक्षा प्रदान करवाएँ।

परन्तु यह मौलिक कर्त्तव्य न्यायालयों के द्वारा लागू नहीं किए जा सकते। निर्देशक सिद्धान्त के समान ये मौलिक कर्त्तव्य भी संवैधानिक नैतिकता का एक भाग हैं।

11. राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy): संविधान का भाग IV (अनुच्छेद 36-51) राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों का वर्णन करता है। यह भारतीय संविधान की सबसे आदर्शात्मक विशेषताओं में से एक है। संविधान में यह भाग शामिल करते समय संविधान निर्माता आयरलैंड के संविधान और गांधीवाद और फेबियन समाजवाद की विचारधाराओं से प्रभावित हुए।

निर्देशक सिद्धान्त राज्य प्रशासन के लिए यह निर्देश जारी करते हैं कि वह अपनी नीतियों के द्वारा सामाजिक-आर्थिक विकास का उद्देश्य प्राप्त करे। निर्देशक सिद्धान्त राज्य को यह आदेश देते हैं कि यह लोगों के जीवन निर्वाह के लिए उचित साधन प्रदान करे, सम्पत्ति की न्यायपूर्ण बांट सुनिश्चित करे, समान कार्य के लिए समान वेतन, बच्चों, औरतों, श्रमिकों और युवकों के हितों की सुरक्षा करे, बुढ़ापा पैंशन, सामाजिक समानता, स्वशासी संस्थाओं की स्थापना करे, समाज के कमज़ोर वर्गों के हितों की सुरक्षा करे और घरेलू उद्योग, ग्रामीण विकास, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, दूसरे देशों से मित्रता और सहयोग को प्रोत्साहित करे। *जे. एन. जोशी (J. N. Joshi)* के शब्दों में, "निर्देशक सिद्धान्तों में आधुनिक लोकतन्त्रीय राज्य के लिए एक बहुत ही व्यापक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम शामिल किया गया है।"

यदि संविधान के भाग III में शामिल मौलिक अधिकार भारत में राजनीतिक लोकतन्त्र की नींव रखते हैं तो, निर्देशक सिद्धान्त (भाग IV) भारत में सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना का आह्वान करते हैं।

निर्देशक सिद्धान्त "किसी भी न्यायालय के द्वारा कानूनी रूप में लागू नहीं किए जा सकते।" तो भी, संविधान यह घोषणा करता है कि वे देश के प्रशासन के लिए मौलिक सिद्धान्त हैं और यह राज्य का कर्त्तव्य है कि वह कानून निर्माण करते समय इन को लागू करे।

12. द्वि-सदनीय संघीय संसद (Bi-cameral Union Parliament): संविधान संघीय स्तर पर द्वि-सदनीय संसद की व्यवस्था करता है और इसको संघीय संसद का नाम देता है। इसके दो सदन हैं: लोकसभा और राज्यसभा।

लोकसभा संसद का निम्न और लोगों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित सदन है। यह भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। इसके सदस्यों की अधिक-से-अधिक संख्या 545 निर्धारित की गई है। प्रत्येक राज्य के लोग अपनी जनसंख्या के अनुपात में अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करते हैं। यू. पी. की लोकसभा में 80 और पंजाब की 13 सीटें हैं। लोकसभा के लिए चुनाव इन सिद्धान्तों के अनुसार करवाए जाते हैं: (1) प्रत्यक्ष चुनाव, (2) गुप्त मतदान, (3) एक मतदाता एक मत, (4) साधारण बहुमत जीत प्रणाली, (5) सार्वजनिक वयस्क-मताधिकार (पुरुषों और स्त्रियों की मतदाता बनने की कम-से-कम आयु 18 वर्ष की है-पहले यह 21 वर्ष की होती थी)। 25 वर्ष या इससे अधिक आयु के सभी मतदाता, लोकसभा का चुनाव लड़ने के योग्य हैं इसका कार्यकाल 5 वर्ष है परन्तु राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री की सिफ़ारिश पर इसको कार्य काल पूर्ण होने से पूर्व भी भंग कर सकता है।

राज्य सभा संसद का उपरि तथा अप्रत्यक्ष रूप में निर्वाचित सदन है। यह सदस्य संघ के राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी कुल सदस्यता संख्या 250 है। इसमें से 238 सदस्य राज्य विधान सभाओं के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के द्वारा चुने जाते हैं और 12 सदस्य राष्ट्रपति के द्वारा कला, विज्ञान और साहित्य के क्षेत्रों के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से मनोनीत किए जाते हैं। वर्तमान राज्यसभा के 245 सदस्य हैं। राज्यसभा संसद का एक स्थायी सदन है। किन्तु इसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष पश्चात् सेवा निवृत्त हो जाते हैं। प्रत्येक सदस्य के पद का कार्यकाल 6 वर्ष है।

दोनों सदनों में से लोकसभा अधिक शक्तिशाली है। इसके पास ही वास्तविक वित्तीय शक्तियाँ हैं और केवल यही मन्त्रिमण्डल को हटा सकता है। मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप में लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। परन्तु, राज्यसभा उतनी शक्तिहीन भी नहीं जितना कि ब्रिटिश लार्ड सदन है और न ही लोकसभा उतनी शक्तिशाली है जितना कि ब्रिटिश कॉमन सदन।

संघीय संसद एक प्रभुसत्ता सम्पन्न संसद नहीं है। यह संविधान के अधीन गठित की जाती है और यह केवल उन्हीं शक्तियों का प्रयोग कर सकती है जोकि इसको संविधान ने दी हैं।

13. संसदीय प्रणाली (Parliamentary System): भारत का संविधान केन्द्र और राज्यों में संसदीय प्रणाली की व्यवस्था करता है। यह ब्रिटिश संसदीय प्रणाली पर आधारित है। भारत का राष्ट्रपति देश का संवैधानिक मुखिया है जिसके पास नाममात्र की शक्तियाँ हैं। प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल वास्तविक कार्यपालिका है। मन्त्रियों का संसद के सदस्य होना आवश्यक है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य अपने सभी कार्यों के लिए लोकसभा के समक्ष सामूहिक रूप में उत्तरदायी होते हैं। लोकसभा के द्वारा अविश्वास प्रस्ताव पास किए जाने पर मन्त्रिपरिषद् प्रणाली मन्त्रिपरिषद् को यह अधिकार है कि यह राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करने की सिफारिश कर सकती है। त्यागपत्र देना पड़ता है इसी प्रकार प्रत्येक राज्य में इन्हीं नियमों के अनुसार सरकार कार्य करती है। इस प्रकार संसदीय प्रणाली की सभी विशेषताएँ भारतीय संविधान में शामिल हैं। परन्तु आजकल इस विषय पर चर्चा भी चल रही है कि संसदीय प्रणाली के स्थान पर भारत में अध्यक्षात्मक स्वरूप की प्रणाली लायी जानी चाहिए कि नहीं। त्रिशंकु संसदों के अस्तित्व में आने के युग और भारतीय दल प्रणाली की तरलता ने कुछ विद्वानों पर यह प्रभाव डाला है कि वे अध्यक्षात्मक सरकार की वकालत करने लगे हैं जिससे कुछ निश्चित समय के लिए एक स्थिर सरकार अस्तित्व में आ सके। मई-जून, 1996; अप्रैल, 1997 मार्च, 1998; अप्रैल, 1999 तथा मई 2004 में राष्ट्र सरकार बनाने में प्रस्तुत आई कठिनाइयों ने एक बार फिर वर्तमान संसदीय प्रणाली में अध्यक्षता प्रणाली के कम से कम कुछ तत्त्व अपनाने की मांग को दृढ़ किया है। परन्तु इस विचार को राष्ट्रीय स्वीकृति मिलनी अभी शेष है।

14. वयस्क मताधिकार (Adult-Sufferage): भारत का संविधान सभी वयस्कों को वोट का अधिकार प्रदान करना है। *प्रो. श्रीनिवासन* लिखते हैं, "किसी भी योग्यता की शर्त रखे बिना सभी वयस्कों को मत का अधिकार देना संविधान निर्माण सभा के द्वारा उठाए गए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कदमों में से एक है और यह एक विश्वास की कार्यवाही है। भारत सरकार के अधिनियम 1935 के अधीन कुल जनसंख्या के केवल 14 प्रतिशत लोगों को ही मत देने का अधिकार था और स्त्रियों का कुल मतों में भाग नाममात्र का ही था। अब भारतीय संविधान के अधीन स्त्रियों और पुरुष दोनों को मत का एक समान अधिकार है। अब मत के अधिकार के लिए आयु सीमा

21 वर्ष से घटा कर 18 वर्ष की जा चुकी है। 18 वर्ष से ऊपर की आयु के सभी भारतीयों को चुनावों में मतदान करने का अधिकार प्राप्त हैं।

नोट

15. एक अखण्डता राज्य के साथ एकल नागरिकता के साथ एकीकृत राज्य (Single Integrated Polity with Single Citizenship): भारतीय संविधान सभी राज्यों को समान रूप में भारतीय संघ का भाग बनाता है। "हमारा गणतंत्र सल्तनतों का गठबन्धन नहीं हैं बल्कि यह एक वास्तविक संघ है जिसको भारत के लोगों ने भारत के सभी नागरिकों को समान रख कर प्रभुसत्ता के मौलिक संकल्प के आधार पर स्थापित किया है। सभी नागरिकों को एक समान नागरिकता प्रदान की गई है जोकि उनको एक समान अधिकार और स्वतन्त्रताएँ और राज्य प्रशासन की एक जैसी सुरक्षा प्रदान करती है।" अब भारतीय मूल के विदेशी नागरिकों, जोकि 26 जनवरी, 1950 के पश्चात् विदेशों में जाकर बस गए हैं तथा जिन्होंने दूसरे देशों की नागरिकताएँ प्राप्त कर ली हैं, को भी भारत की नागरिकता देने का निर्णय लिया गया है। अब वे दोहरी नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें अपनी वर्तमान नागरिकताओं के साथ-साथ भारतीय नागरिकता भी प्राप्त हो जाएगी। वे दोहरी नागरिकता की प्राप्ति के अधिकारी हो जाएँगे। उन्हें भारत में नागरिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त हो जाएँगे, परन्तु उन्हें राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होंगे।

16. एकल एकीकृत न्यायपालिका (Single Integrate Judiciary): जहाँ अमरीकी संविधान, केवल संघीय न्यायपालिका स्थापित करता है और राज्य न्यायपालिका प्रणाली को प्रत्येक राज्य के संविधान पर छोड़ देता है, वहीं विपरीत भारत का संविधान एक इकहरी न्यायपालिका की व्यवस्था करता है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय शीर्ष स्तर का न्यायालय है, उच्च न्यायालय राज्य स्तरों पर है और शेष न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय देश में न्याय का अन्तिम न्यायालय है। यह भारत में न्यायिक प्रशासन चलाता है और इस पर नियन्त्रण रखता है।

17. न्यायपालिका की स्वतन्त्रता (Independence of the Judiciary): भारतीय संविधान न्यायपालिका को पूर्णतया स्वतन्त्र बनाता है। यह इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है: (क) न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। (ख) उच्च कानूनी योग्यताओं और अनुभव वाले व्यक्तियों को ही न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है। (ग) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को बहुत ही कठिन प्रक्रिया के द्वारा ही उनके पद से हटाया जा सकता है। (घ) न्यायाधीशों और न्यायिक कर्मचारियों का वेतन भारत की संचित निधि में से दिया जाता है और इनके लिए विधानपालिका की वोट आवश्यक नहीं होती। (ङ) सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार है कि वह अपनी स्वतन्त्रता बनाए रखने के लिए अपना न्यायिक प्रशासन स्वयं संचालित करे। (च) सर्वोच्च न्यायालय के सभी अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति मुख्य न्यायाधीश अधिकारण या किसी अन्य न्यायाधीश या अधिकार द्वारा, जिसको कि इसे उद्देश्य बनाया गया है, के द्वारा की जाती है। भारतीय न्यायपालिका ने सदैव ही एक स्वतन्त्र न्यायपालिका की तरह कार्य किया है।

18. न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review): संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। सर्वोच्च न्यायालय, इसकी सुरक्षा और व्याख्या करता है। यह लोगों के मौलिक अधिकारों के प्रहरी के रूप में भी कार्य करता है। इस उद्देश्य के लिए यह न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग करता है। इसके द्वारा सर्वोच्च न्यायालय विधानपालिका और कार्यपालिका के सभी कार्यों के संवैधानिक रूप में उचित होने के बारे में निर्णय करता है। यदि संसद के कानून या कार्यपालिका के कार्यों को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जाए और इसको यह ग़ैर-संवैधानिक पाये तो वह उनको रद्द कर सकता है। पिछले समय से सर्वोच्च न्यायालय इस अधिकार का सक्रिय कुशलता से प्रयोग करता आ रहा है और इसने अलग-अलग संवैधानिक मामलों-गोलक नाथ केस, केशवानंद भारती केस, मिनर्वा मिलज़ केस, गोपालन केस और कई अन्य केसों में ऐतिहासिक निर्णय दिए हैं। राज्यों के उच्च न्यायालयों राज्य कानूनों से सम्बन्धित ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

संविधान अपने किसी भी अनुच्छेद के अधीन न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अधिकार प्रत्यक्ष रूप में नहीं देता। फिर भी, यह संविधान के कई अनुच्छेदों विशेष रूप में अनुच्छेदों 13, 32, और 226 पर आधारित है। संविधान की यह विशेषता अमरीकी संविधान में विशेषता जैसी है।

19. न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism): इस समय भारतीय न्यायपालिका अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति अधिक-से-अधिक सक्रिय हो रही है। सार्वजनिक हित मुकद्दमा प्रणाली (PIL) के द्वारा और इसके साथ ही अपनी शक्तियों और उत्तरदायित्वों के अधिक-से-अधिक प्रयोग के द्वारा अब सार्वजनिक हितों की प्राप्ति के लिए अधिक सक्रिय हो रही है। सार्वजनिक हित मुकद्दमा (PIL) के अन्तर्गत न्यायाधीश सार्वजनिक हितों की प्राप्ति के लिए अपने आप (Suo moto) कार्यवाही कर सकते हैं। मई, 1995 में और फिर जुलाई 2003 में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य को कहा कि वह समूचे भारत के लिए और सभी भारतीयों के लिए एक समान नागरिक संहिता लागू करने का प्रयास करे जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 44 में करने के लिए कहा गया है। न्यायिक सक्रियता भारतीय न्याय प्रणाली की एक उत्तम विशेषता है।

20. संकटकाल स्थिति से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ (Emergency Provisions): वेमर गणराज्य (जर्मनी) के संविधान के समान ही भारतीय संविधान में भी संकटकाल स्थिति से निपटने के लिए व्यवस्थाएँ की गई हैं। यह तीन प्रकार की संकटकाल स्थितियों को पहचानता है और भारत के राष्ट्रपति को इनका सामना करने की शक्ति सौंपता है। इसीलिए इनको राष्ट्रपति को संकटकालीन शक्तियों के रूप में जाना जाता है।

संविधान तीन प्रकार की संकटकालीन स्थितियों का वर्णन करता है:

(1) राष्ट्रीय संकटकालीन स्थिति अनुच्छेद 352 अर्थात् युद्ध या विदेशी आक्रमण या भारत के विरुद्ध विदेशी आक्रमण के खतरे या भारत में या इसके किसी भाग में सशस्त्र विद्रोह के परिणाम के रूप में पैदा हुई संकटकालीन स्थिति।

(2) किसी राज्य में संकटकाल की स्थिति अनुच्छेद 356 अर्थात् किसी भी राज्य में संवैधानिक मशीनरी फेल हो जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न संकटकाल की स्थिति, और

(3) वित्तीय संकटकाल स्थिति (अनुच्छेद 360) अर्थात् भारत की वित्तीय स्थिरता में खतरे की स्थिति स्वरूप उत्पन्न हुई संकटकालीन स्थिति।

भारत के राष्ट्रपति को इन संकटकाल की स्थितियों से निपटने के लिए उचित कदम उठाने के अधिकार हैं। किन्तु वास्तव में राष्ट्रपति के ये अधिकार प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल के अधिकार हैं।

राष्ट्रीय संकटकाल की स्थिति में वास्तविक रूप में समस्त शासन प्रणाली एकात्मक बन जाती है और राष्ट्रपति अनुच्छेद 19 में शामिल मौलिक अधिकारों और संविधानों के अनुच्छेदों 32 और 226 के अधीन उनको लागू करने की व्यवस्था को स्थगित कर सकता है। परन्तु संकटकालीन स्थिति में शक्ति प्रयोग करने के सम्बन्ध में कुछ विशेष निर्धारित नियम और कई सीमाएँ लगाई गई हैं। राष्ट्रपति, केवल प्रधानमन्त्री और मन्त्रिमण्डल की लिखित सिफ़ारिश पर ही संकटकालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है। राष्ट्रीय संकटकाल की स्थिति में, (यह व्यवस्था 44वें संशोधन के द्वारा की गई है।) प्रत्येक संकटकालीन स्थिति के लागू करने की घोषणा को एक निर्धारित समय में संसद से स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है। 1952 से लेकर राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय संकटकालीन शक्तियों (राष्ट्रीय संकटकाल स्थिति और संवैधानिक संकटकाल स्थिति) का प्रयोग कई बार किया जा चुका है।

संकटकालीन शक्तियों का उद्देश्य लोगों और राज्य के हितों की रक्षा करना है और इसलिए इनका विरोध नहीं किया जा सकता। परन्तु यह संभावना बनी रहती है कि केन्द्रीय कार्यपालिका (सरकार) राजनीतिक उद्देश्यों के लिए इनका दुरुपयोग कर सकती है, विशेष रूप में अनुच्छेद 356 का केन्द्र द्वारा दुरुपयोग किया जा सकता है। 1975 में आंतरिक कारणों से संकटकाल स्थिति लागू करना श्रीमती इन्दिरा गांधी के द्वारा की गई एक सत्तावादी कार्यवाही ही थी और इस कार्यवाही के लिए लोगों ने उनको और उनकी कांग्रेस पार्टी को 1977 की चुनावों में बुरी तरह हरा कर दण्ड दिया। इसी प्रकार केन्द्र सरकार के द्वारा संवैधानिक संकटकालीन स्थिति की व्यवस्था का प्रयोग कुछ परिस्थितियों में निश्चय ही स्वेच्छाचारी रूप में किया जाता रहा है। अत: संवैधानिक प्रतिबन्धों के बावजूद संकटकालीन शक्तियों की व्यवस्थाओं का दुरुपयोग किया जा सकता है। परन्तु, संकटकाल से सम्बन्धित व्यवस्था को संविधान में शामिल करने को किसी भी तरह संविधान निर्माण सभा की अनावश्यक और लोकतन्त्र विरोधी कार्यवाही नहीं कहा जा सकता। यह राष्ट्रीय सुरक्षा, शान्ति और स्थिरता के हित में संविधान में शामिल की गई है।

आवश्यकता इनको समाप्त करने की नहीं बल्कि इसका ठीक-ठीक करने की है। उपर्युक्त अमर नंदी ठीक ही कहते हैं "राष्ट्रीय संकटकालीन स्थिति से निपटने के लिए केन्द्रीय कार्यपालिका को दिए गए अधिकार, एक ढंग से सौंपे गई कारतूसों की भरी हुई वह बंदूक है जिसका प्रयोग नागरिकों की स्वतन्त्रता की सुरक्षा और इनकी समाप्ति दोनों के लिए किया जा सकता है। इसलिए, इस बंदूक का प्रयोग बड़ी ही सावधानी से करना चाहिए।" इसके साथ हम यह जोड़ना चाहेंगे कि विशेष रूप में केन्द्र के द्वारा अनुच्छेद 356 का प्रयोग उचित और कभी-कभार और सोच-समझ कर ही किया जाना चाहिए। किसी भी स्थिति में इसका राजनीतिक दुरुपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

21. अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष व्यवस्थाएँ (Special Provisions relating to Scheduled Castes and Scheduled Tribes): अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों से सम्बन्धित लोगों के हितों की सुरक्षा के उद्देश्य से, संविधान अपने भाग XVI में कुछ विशेष व्यवस्थाएँ करता है। अनुच्छेद 330 उनके लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात (जहाँ तक संभव हो सके) में लोकसभा की कुछ स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था करता है। साथ ही यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि एंग्लो-इंडियन समुदाय को सदन में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला तो वह इस समुदाय के दो सदस्य लोकसभा में मनोनीत कर सकता है। (अनुच्छेद 331)

राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और एंग्लो-इंडियन समुदाय के लिए सीटें आरक्षित रखने की व्यवस्था क्रमवार धारा 331 और 332 के अधीन की गई है। 84वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा आरक्षण का कार्यकाल अब 2010 तक बढ़ा दिया गया है। अब आरक्षण का लाभ अन्य पिछड़ी श्रेणियों (OBCs) को भी दे दिया गया है परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि नौकरियों में कुल आरक्षण 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

संसद तथा विधानपालिकाओं में आरक्षण की व्यवस्था के साथ-साथ सरकारी नौकरियों और अलग-अलग विश्वविद्यालयों और व्यावसायिक संस्थाओं में भी अनुसूचित जातियां और अनुसूचित कबीलों के लिए नौकरियाँ आरक्षित रखी जाती हैं। संविधान अनुसूचित जातियों, अनुसूचित कबीलों और पिछड़ी श्रेण्यों की स्थिति का लगातार आकलन करने के लिए एक आयोग स्थापित करने की भी व्यवस्था का प्रावधान करता है। मई, 1990 में एक संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस उद्देश्य के लिए एक आयोग स्थापित किया गया। अब मानव अधिकारों के बारे राष्ट्रीय आयोग भी अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बन्धित लोगों के अधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित शिकायतों की जांच कर सकता है।

22. भाषा से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ (Provisions regarding Language): संविधान केन्द्र (संघ), भाषायी क्षेत्रों, सर्वोच्च न्यायालयों और उच्च न्यायालयों की भाषा परिभाषित करता है। अनुच्छेद 343 में लिखा गया है कि देश की सरकारी भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी होगी। परन्तु इसके साथ ही यह अंग्रेजी भाषा जारी रखने की भी व्यवस्था करता है। हर एक राज्य की विधानसभा अपने राज्य की भाषा को सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार कर सकती है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय की भाषा अभी भी अंग्रेजी बनी हुई है। अनुच्छेद 351 के अधीन संविधान केन्द्र (संघ) को यह आदेश देता है कि वह हिन्दी को विकसित करे और इसका प्रयोग लोकप्रिय बनाए। संविधान की आठवीं अनुसूची में संविधान अब 22 प्रमुख भारतीय भाषाओं को मान्यता देता है--आसामी, बंगाली, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, नेपाली, मणिपुरी, कोंकनी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तेलुगू और उर्दू, डोगरी, सन्थाली, मैथिली आदि।

23. अनेक स्रोतों से तैयार किया गया संविधान (Constitution drawn from Several Sources): भारत का संविधान तैयार करते समय इसके निर्माताओं ने अनेक स्रोतों का प्रयोग किया। स्वतन्त्रता आन्दोलन ने उन पर धर्म-निरपेक्षता, स्वतन्त्रता तथा समानता को अपनाने के लिए प्रभाव डाला। उन्होंने भारत सरकार अधिनियम 1935 की कुछ व्यवस्थाओं का प्रयोग किया और विदेशी संविधान की कई विशेषताएँ को भी उन्होंने अपनाया। संसदीय प्रणाली और द्वि-सदनीय प्रणाली अपनाने के लिए उनको ब्रिटिश संविधान ने प्रभावित किया।

अमरीकी संविधान ने उनको गणराज्यवाद, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता; न्यायिक पुनर्निरीक्षण और अधिकार-पत्र अपनाने के पक्ष में प्रभावित किया। 1917 की समाजवादी क्रान्ति के पश्चात् (भूतपूर्व) सोवियत संघ (Erstwhile USSR) की प्रगति ने उनको अपना लक्ष्य समाजवाद निश्चित करने के लिए प्रभावित किया। इसी प्रकार उनको कैनेडा, आस्ट्रेलिया, वेमर गणराज्य (जर्मनी) और आयरलैंड के संविधानों ने भी प्रभावित किया।

26 जनवरी, 1950 में लागू होने के पश्चात्, भारत का संविधान कई स्त्रोतों से विकसित होता रहा है- संसदीय कानून, न्यायिक निर्णय, परम्पराएँ, वैज्ञानिक व्याख्याएँ और संविधान निर्माण सभा के रिकार्ड भी इसके स्रोत बने हैं। भारतीय संविधान न तो उधारों का थैला है, न कोई आयात किया गया संविधान और न ही यह भारत सरकार अधिनियम 1935 का शृंगारित और विस्तृत स्वरूप है। संविधान निर्माताओं ने विदेशी संविधानों या भारत सरकार अधिनियम 1935 के प्रभाव अधीन संवैधानिक विशेषताएँ और व्यवस्थाएँ अपनाते समय सदैव ही इनको भारतीय आवश्यकताओं और इच्छाओं अनुकूल ढाला।

इन विशेषताओं के कारण ही भारत का संविधान भारतीय वातावरण के लिए सबसे उपयुक्त तथा व्यवहार-कुशल संविधान बना गया है। यहाँ तक कि इसके विशाल आकार ने भारत का अपनी सरकार और प्रशासन को गठित करने और चलाने में शान्ति और युद्ध या संकटकालीन स्थिति में प्रभावशाली ढंग से नेतृत्व किया है। इसकी प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है: प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, निर्देशक सिद्धान्त, धर्म-निरपेक्षता, संघवाद, गणराज्यवाद, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता और निःसन्देह उदार संसदीय लोकतन्त्र।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

8. निम्नलिखित में क्या भारतीय संविधान की विशेषता नहीं है?
   (*a*) संविधान की प्रस्तावना (*b*) लिखित एवं विस्तृत
   (*c*) भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है (*d*) भारत एक राष्ट्रवादी राज्य है
9. निम्नलिखित में कब संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू.पी.ए.) पहली बार सत्ता में आई
   (*a*) वर्ष 2004 (*b*) वर्ष 2006
   (*c*) वर्ष 1999 (*d*) वर्ष 2009
10. शोषण के विरुद्ध अधिकार का वर्णन संविधान के किस अनुच्छेद में किया गया है?
   (*a*) अनुच्छेद 25-26 (*b*) अनुच्छेद 23-24
   (*c*) अनुच्छेद 25-28 (*d*) अनुच्छेद 19-22

1.5 भारतीय संविधान के विशाल आकार के कारण (Causes for Indian Constitution's Extensive Appearance)

448 अनुच्छेदों, 12 अनुसूचियों और 104 संशोधनों के साथ भारत का संविधान विश्व का सबसे विशाल और व्यापक संविधान है। इसके विशाल आकार का पता इस तथ्य से ही लग सकता है कि अमरीकी संविधान में केवल 7 अनुच्छेद, जापानी संविधान में 103 अनुच्छेद और फ्रांस के संविधान में 92 अनुच्छेद ही हैं। एच. वी. *कामथ* ने संविधान निर्माण सभा में इसके विशाल आकार का वर्णन करते हुए कहा था कि, "यह वास्तव में हाथी के आकार वाला संविधान (Elephantine Constitution) है।"

अब प्रश्न यह उठता है, कि संविधान के निर्माताओं ने इसे इतना बड़ा/विशाल क्यों बनाया? क्या वे विश्व में सबसे बड़े आकार का संविधान निर्माण करके एक इतिहास रचना चाहते थे?

इनका ठीक उत्तर यह है कि उन्होंने भारत के बहु-संस्कृति, बहु-भाषायी, बहु-जातीय समाज के लिए स्थायी संविधान का निर्माण करने के उद्देश्य से इसमें अधिक-से-अधिक बातें शामिल करना आवश्यक समझीं और इसी में उन सरकार तथा प्रशासन से सम्बन्धित विषयों के बारे में अधिक-से-अधिक अनुच्छेद लिखने की आवश्यकता को स्वीकार किया।

नोट

निम्नलिखित विशेषताएँ भारतीय संविधान को देखने में बहुत विशाल-आकारी परन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण वाला और वास्तविक व्यवहार में एक कार्य कुशल संविधान दर्शाती है:

(1) भारतीय संविधान संघ और राज्यों दोनों का साझा संविधान है। यह केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों दोनों के संगठन और शक्तियों की विस्तृत व्यवस्था करता है। यह केन्द्र और राज्यों के बीच सम्बन्धों का विस्तार में वर्णन करता है।

(2) एक संघीय संविधान सदैव एकात्मक संविधान से अधिक लम्बा होता है। संघीय ढांचे में एकात्मक भावना से जोड़ने के प्रयास ने भी इसको लम्बा बना दिया।

(3) संविधान में एक विस्तृत अधिकार पत्र और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के अध्याय विद्यमान हैं। अनुच्छेद 51-ए जिसमें कि 10 मौलिक कर्त्तव्य शामिल हैं, इनको शामिल करने से भी इसकी विशालता बढ़ी है।

(4) भारतीय संविधान में कई विशेष मामलों के सम्बन्ध में अलग-अलग प्रावधान किए गए हैं। उदाहरण के रूप में भाग X अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों एवं क्षेत्रों से सम्बन्धित प्रावधान शामिल हैं, भाग XIV केन्द्र और राज्यों के अधीन सेवाओं से, भाग XV ट्रिब्यूनलों से, भाग XVI कुछ विशेष श्रेणियों, जैसा कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, एंग्लो-इंडियन समुदाय आदि से, भाग XVII सरकारी भाषा से, भाग XVIII संकटकालीन स्थितियों से और भाग XIX अस्थाई/कार्यकारी, हस्तांरणयोग्य और विशेष व्यवस्थाओं के मामलों से निपटता है। इन भागों को शामिल करने से संविधान का आकार लम्बा हुआ।

(5) क्योंकि भारत सरकार अधिनियम 1935 उस समय पहलू ही लागू था जब देश का नया संविधान निर्मित किया जा रहा था, इसलिए स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत के संविधान में इसके कई प्रावधान भी शामिल करने पड़े।

(6) भारत का संविधान, भारत सरकार अधिनियम 1935 के अधिनियम की तरह, अकेला संविधान ही नहीं बल्कि यह एक विस्तारित कानूनी संहिता है जोकि भारत की संवैधानिक और प्रशासकीय प्रणाली के सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं को संवैधानिक रूप में निर्धारित करता है।

(7) संविधान लागू होने के पश्चात् आज तक संविधान में 104 संशोधन किए जा चुके हैं और इन्होंने भी संविधान के आकार को एक विशाल रूप दिया है। इनमें 42वें तथा 44वें संशोधन अत्यधिक व्यापक संशोधन थे।

(8) संविधान अनेकों संवैधानिक आयोगों के गठन और कार्य-व्यवहार की विस्तार में चर्चा करता है जैसा कि निर्वाचन आयोग, वित्त आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग, भारत के लेखा नियंता तथा महालेखा परीक्षक, अल्पसंख्यक आयोग आदि।

इन सभी कारणों ने भारतीय संविधान को एक लम्बा और विस्तृत संविधान बना दिया है 1947 में विद्यमान समस्याओं, वाद-विवादों और भारत के लोगों में राजनीतिक सूझ-बूझ के कम विकसित स्तर की विद्यमानता, निश्चित लोकतन्त्रीय परम्पराएँ विद्यमान न होना और नई-नई प्राप्त स्वतन्त्रता बनाए रखने की आवश्यकता के कारण संविधान के निर्माता किसी भी अनहोनी का अवसर न देने के लिए ऐसा करने पर विवश हुए। उन्होंने संविधान को देश की संवैधानिक और प्रशासकीय प्रणाली के किस भी पक्ष की परिभाषा से वंचित न रखने का प्रत्येक प्रयास किया। उन्होंने संविधान को किसी भी पक्ष से कमजोर रखने की अपेक्षा इसको बड़े आकार का बनाने को प्राथमिकता दी।

इस प्रकार अनेकों कारणों से भारतीय संविधान को बहुत बड़े आकार वाला और विस्तारित संविधान बनाया गया।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Multiple Question)

11. जापानी संविधान में कुल कितने अनुच्छेद हैं?

(a) 102 अनुच्छेद (b) 103 अनुच्छेद

(c) 101 अनुच्छेद (d) 105 अनुच्छेद

निम्नलिखित कथनों में सत्य-असत्य बताइए-

12. फ्रांस के संविधान में कुल 92 अनुच्छेद हैं।
13. भारत का संविधान, भारत सरकार अधिनियम 1935 के अधिनियम की तरह अकेला संविधान ही नहीं बल्कि यह एक विस्तारित कानूनी संहिता है।
14. भारतीय संविधान के 42वें तथा 44वें संशोधन कम व्यापक संशोधन हैं।

1.6 सारांश (Summary)

- प्रस्तावना संविधान का बहुत ही बहुमूल्य भाग है, यह संविधान की आत्मा है, यह संविधान की कुंजी है।
- प्रस्तावना घोषित करती है कि भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न देश है। ऐसी घोषणा भारत पर ब्रिटिश राज्य की समाप्ति पर मोहर लगाने के लिए बहुत आवश्यक थी।
- 42वें संशोधन के द्वारा 'धर्म-निरपेक्षता' को भारतीय राज्य की एक प्रमुख विशेषता के रूप में प्रस्तावना में स्थान दिया गया। इसको शामिल करने से भारतीय संविधान की धर्म-निरपेक्ष प्रकृति को और स्पष्ट किया गया।
- प्रस्तावना भारत को एक लोकतन्त्रीय देश घोषित करती है, भारत के संविधान में एक लोकतन्त्रीय प्रणाली की व्यवस्था करती है। सरकार की सत्ता लोगों की प्रभुसत्ता पर निर्भर है।
- भारत का संविधान अपने व्यापक आकार, एकात्मक-संघवाद, लचक और कठोरता के मिश्रण तथा विभिन्न संकटकालीन स्थिति का समाधान करने के लिए विशेष प्रावधानों सहित एक अनुपम संविधान है जोकि 1950 से लेकर आज तक सफलता से कार्य कर रहा है।
- 448 अनुच्छेदों, 12 अनुसूचियों और 104 संशोधनों के साथ भारत का संविधान विश्व का सबसे विशाल और व्यापक संविधान है।

1.7 शब्दकोश (Keywords)

- संघवाद (Federalism): ये मत कि संघ राज्य उत्तम होता है।
- अधिनियम (act): विधान के अंतर्गत बनाया गया नियम, एक्ट।

1.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
2. भारतीय संविधान के प्रस्तावना का महत्त्व समझाइये?
3. भारतीय संविधान को अपनाने और पारित करने की तिथि को बताइये?
4. भारतीय संविधान की विशेषताओं का वर्णन करें?
5. भारतीय संविधान के विशाल आकार के क्या कारण हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

नोट

1. आत्मा	2. 1976
3. 26 नवंबर, 1949	4. (*a*)
5. (*b*)	6. (*a*)
7. (*b*)	8. (*d*)
9. (*a*)	10. (*b*)
11. (*b*)	12. सत्य
13. सत्य	14. असत्य

संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. *भारतीय राजनीतिक प्रणाली* – यू.आर. घई।
2. *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था* -- एन. छाबरा, अभिनव प्रकाशन, रोहतक (हरियाणा)।

नोट

इकाई–2

पाठ 2: मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)

संरचना (Structure)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 मौलिक अधिकारों की विशेषताएँ (Features of Fundamental Rights)

2.2 मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)

2.3 सारांश (Summary)

2.4 शब्दकोश (Keywords)

2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

2.6 सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- भारतीय मौलिक अधिकारों के अर्थ को समझने में।
- मौलिक अधिकारों की विशेषताओं को वर्णन करने हेतु।
- भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों के दिये गये विभिन्न अधिकारों की व्याख्या करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्ति और राज्य के आपसी सम्बन्धों की समस्या सदैव ही जटिल रही है और वर्तमान समय की प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में इस समस्या ने विशेष महत्व प्राप्त कर लिया है। यदि एक ओर शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए नागरिकों के जीवन पर राज्य का नियन्त्रण आवश्यक है तो दूसरी ओर राज्य की शक्ति पर भी कुछ ऐसी सीमाएँ लगा देना आवश्यक है जिससे राज्य मनमाने तरीके से आचरण करते हुए व्यक्तियों की स्वतन्त्रता और अधिकारों के विरुद्ध कार्य न कर सके। मौलिक अधिकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अधिकारों के हित में राज्य की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाने का श्रेष्ठ उपाय हैं।

नोट

फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने विश्व को 'स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व' का सन्देश दिया था। क्रान्ति के उपरान्त फ्रांस की राष्ट्रीय सभा ने 1789 के नवीन संविधान में 'मानवीय अधिकारों की घोषणा' (Declaration of the Rights of Men) को शामिल करके नागरिकों के कुछ अधिकारों को संवैधानिक रूप देने की प्रथा प्रारम्भ की। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान में 1791 में प्रथम दस संशोधनों द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों को संविधान का अंग बनाया गया। ये संशोधन ही सामूहिक रूप से 'अधिकार पत्र' क (Bill of Rights) कहलाये। इसका प्रभाव अन्य यूरोपियन राज्यों के संविधानों पर पड़ा। प्रथम महायुद्ध के बाद अनेक पुराने राज्यों और युद्ध के बाद स्थापित अनेक नवीन राज्यों के संविधानों में मौलिक अधिकारों का समावेश किया गया। इस सम्बन्ध में जर्मनी का वीमर संविधान तथा आयरलैंड का संविधान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। द्वितीय महायुद्ध के बाद मौलिक अधिकार का विचार और भी लोकप्रिय हुआ और युद्ध के बाद भारत, बर्मा, जापान आदि जिन देशों के संविधानों का निर्माण हुआ उन सभी में मौलिक अधिकारों का समावेश किया गया। 1945 में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, 'संयुक्त राष्ट्र संघ' के द्वारा भी 10 दिसम्बर, 1948 ई. को 'मानवीय अधिकारों की सार्वलौकिक घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights) के नाम से अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार पत्र स्वीकार किया गया। भारत में भी वर्ष 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना कर ली गई है। इस प्रकार मौलिक अधिकारों के विचार ने वर्तमान समय में एक सर्वमान्य धारणा का रूप ग्रहण कर लिया है।

टास्क मौलिक अधिकार से आप क्या समझते हैं?

2.1 मौलिक अधिकारों की विशेषताएँ (Features of Fundamental Rights)

भारतीय संविधान में दिए गये मौलिक अधिकारों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

क्या आप जानते हैं भारतीय संविधान मौलिक अधिकार के लिए अमेरिका के संविधान का ऋणी है।

1. **विस्तृत अधिकार-पत्र (A Detailed Bill of Rights)**–भारतीय अधिकार-पत्र की प्रथम विशेषता यह है कि यह एक विस्तृत अधिकार-पत्र है। 23 अनुच्छेदों में, जिनकी आगे जाकर कई धाराएँ हैं, नागरिकों के अधिकारों का विस्तृत वर्णन किया गया है। उदाहरणत: अनुच्छेद 19 द्वारा नागरिकों को स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है तथा इसके 6 भाग ऐसे हैं जिनमें नागरिकों की 6 विभिन्न स्वतन्त्रताओं और उनके अपवादों आदि का विस्तृत वर्णन है। ऐसा ही विस्तृत वर्णन अन्य अनुच्छेदों में किया गया है।

2. **संविधान द्वारा दिये गये अधिकारों के अतिरिक्त नागरिकों का कोई अधिकार नहीं (No Right outside the Rights given by the Constitution)**–अमरीकी संविधान में यह व्यवस्था है कि नागरिकों को न केवल ये अधिकार प्राप्त हैं जोकि संविधान में लिखे गये हैं अपितु उनके अतिरिक्त वे सब अधिकार भी नागरिकों को प्राप्त हैं जोकि नागरिकों के पास प्राचीन समय से हैं। दूसरे शब्दों में, अमरीका के संविधान द्वारा प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त को अप्रत्यक्ष रूप में मान्यता प्रदान की गई है। भारतीय संविधान में ऐसे सिद्धान्त का स्पष्ट रूप में खण्डन किया गया है। यह स्पष्ट कहा गया है कि नागरिकों को केवल वे ही अधिकार प्राप्त हैं जोकि संविधान में लिखे हैं। उनके अतिरिक्त किसी भी अधिकार को मान्यता नहीं दी गई है।

3. **सभी नागरिकों को समान अधिकार (Equal Rights to All)**–मौलिक अधिकार जाति, धर्म, नस्ल, रंग, लिंग आदि के भेदभाव के बिना सभी नागरिकों को प्राप्त हैं। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों में कोई भेद नहीं। यह सभी पर समान रूप से लागू होते हैं और कानूनी दृष्टि से सभी नागरिकों के लिए हैं। सरकार इन पर उचित प्रतिबन्ध लगाते समय नागरिकों में भेद नहीं कर सकती।

4. **अधिकार पूर्ण और असीमित नहीं हैं (Rights are not Absolute and Unlimited)**—कोई भी अधिकार असीमित नहीं हो सकता। उसका प्रयोग दूसरों के हित को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है। अधिकार सापेक्ष होते हैं तथा उनका प्रयोग सामाजिक प्रसंग में ही किया जा सकता है। इसलिए हमारे संविधान में सरकार को राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक नैतिकता तथा लोक-कल्याण की दृष्टि से मौलिक अधिकारों पर समय की आवश्यकता अनुसार उचित प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया गया है।

5. **अधिकतर नकारात्मक अधिकार (Mostly Negative Rights)**—भारतीय अधिकार-पत्र में लिखित अधिकार अधिकतर नकारात्मक अधिकार हैं। दूसरे शब्दों में इन अधिकारों द्वारा राज्य पर प्रतिबन्ध तथा सीमाएँ लगाई गई हैं। उदाहरणत: राज्य पर यह सीमा लगाई गई है कि राज्य जाति, धर्म, रंग, लिंग आदि के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं करेगा तथा न ही सरकारी पद पर नियुक्ति करते समय ऐसा कोई भेद-भाव करेगा। परन्तु इसके साथ ही कुछ अधिकार सकारात्मक रूप में भी लिखे गये हैं। उदाहरणत: स्वतन्त्रता की अधिकार जिस द्वारा नागरिकों को भाषण तथा विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता, समुदाय निर्माण करने की स्वतंन्त्रता, किसी जगह रहने तथा कोई भी पेशा अपनाने की स्वतन्त्रता आदि प्रदान की गई है।

6. **अधिकार संघ, राज्यों तथा अन्य सरकारी संस्थाओं पर समान रूप से लागू हैं (Rights are Binding Equally upon Union, States and other State Authorities)**—मौलिक अधिकारों के भाग में ही संविधान द्वारा राज्य शब्द की व्याख्या की गई है तथा यह कहा गया है कि राज्य शब्द के अर्थ हैं—संघ, प्रान्त एवं स्थानीय संस्थाएँ। इस तरह अधिकार-पत्र द्वारा लगाई गई सीमाएँ संघ, राज्यों एवं स्थानीय संस्थाओं—नगरपालिकाएँ तथा पंचायतों—पर भी लागू हैं। इन सभी संस्थाओं को मौलिक अधिकारों द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्दर कार्य करना होता है। हमारे संविधान में ऐसा स्पष्ट करके भारतीय संविधान-निर्माताओं ने अमरीकी संविधान की कमी को पूरा किया है। वहाँ अब भी कभी-कभी यह वाद-विवाद खड़ा हो जाता है कि क्या संविधान द्वारा दिये गये मौलिक अधिकार संघ के साथ-साथ संघीय इकाइयों पर भी लागू हैं कि नहीं?

7. **भारतीय नागरिकों और विदेशियों में अन्तर (Difference between Citizens and Aliens)**—भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में भारतीय नागरिकों तथा विदेशियों में भेद किया गया है। कुछ मौलिक अधिकार ऐसे हैं, जो भारतीय नागरिकों को तो प्राप्त हैं परन्तु विदेशियों को नहीं, जैसे—भाषण देने और विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता, घूमने-फिरने और देश के किसी भी भाग में रहने की स्वतन्त्रता।

8. **अधिकार निलम्बित किये जा सकते हैं (Rights can be Suspended)**—हमारे संविधान में अधिकारों को संकटकाल में निलम्बित किये जाने की व्यवस्था की गई है।

> *नोट्स* बाहरी आक्रमण अथवा बाहरी आक्रमण की सम्भावना से उत्पन्न होने वाले संकट का सामना करने के लिये राष्ट्रपति सम्पूर्ण भाग अथवा भारत के किसी भाग में संकटकालीन घोषणा कर सकता है तथा ऐसी व्यवस्था में नागरिक के अधिकारों विशेषत: स्वतन्त्रता के अधिकार (Art. 19) तथा संवैधानिक उपचारों के अधिकार को निलम्बित कर सकता है।

संविधान की इस व्यवस्था की कई आलोचकों द्वारा कड़ी निन्दा की गई है परन्तु हमारे विचार में आलोचना बुद्धिसंगत नहीं है। देश का हित सर्वोपरि है। अत: देश के हित में अधिकारों को निलम्बित किया जाना उचित ही है।

9. **मौलिक अधिकार न्यायसंगत हैं (Fundamental Rights are Justiciable)**—मौलिक अधिकार न्यायालयों द्वारा लागू किए जाते हैं। मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए संविधान में विशेष व्यवस्थाएँ की गई हैं। संवैधानिक उपचारों का अधिकार मौलिक अधिकारों में विशेष रूप से शामिल है। इसका अर्थ यह है कि कोई भी नागरिक जिसके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो, हाई कोर्ट अथवा सुप्रीम कोर्ट से अपने अधिकारों की रक्षा के लिए अपील कर सकता है। हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के

नोट

लिए कई प्रकार के लेख (Writs) जारी करते हैं। यदि मौलिक अधिकारों का उल्लंघन सिद्ध हो जाए तो वे किसी व्यक्ति, संस्था अथवा सरकार द्वारा की गई गलत कार्यवाही को अवैध घोषित कर सकते हैं।

10. **संसद अधिकारों को कम कर सकती है (Parliament can curtail the Fundamental Rights)**–संविधान के द्वारा संसद मौलिक अधिकार वाले अध्याय सहित समूचे संविधान में संशोधन कर सकती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संसद साधारण कानूनों द्वारा मौलिक अधिकारों में किसी प्रकार का संशोधन नहीं कर सकती। यदि संसद कोई ऐसा कानून बनाती है तो वह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया जाएगा। अभिप्राय यह है कि वह संवैधानिक संशोधन द्वारा ही मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है। राज्य विधानमण्डलों को मौलिक अधिकारों में कमी करने की शक्ति प्रदान नहीं की गई है। धारा 368 में दी गई कार्यविधि से मौलिक अधिकारों का संशोधन किया जा सकता है। इसके लिए कुल सदस्य-संख्या के बहुमत तथा दोनों सदनों में से प्रत्येक में उपस्थित व मत देने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत का होना अनिवार्य है। 1952 में सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश **शास्त्री** ने कहा था कि "अनुच्छेद 368 संसद को संविधान में बिना किसी छूट के संशोधन करने का अधिकार प्रदान करता है।" लेकिन 1967 में गोलकनाथ मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि संसद का मौलिक अधिकारों को कम या समाप्त करने की शक्ति नहीं है। 24वें संशोधन के द्वारा संसद ने इस शक्ति को मान्यता दे दी तथा 24 अप्रैल, 1973 को केशवानन्द भारती केस में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्देश दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है।

11. **अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकार (Special Rights for Minorities)**–भारतीय अधिकार-पत्र में अल्पसंख्यकों के हितों का विशेष ध्यान रखा गया है। विशेषकर दो अधिकार–धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion) तथा सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अधिकार (Cultural and Educational Rights) तो अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिये ही लिखे गये हैं। एक आदर्श लोकतन्त्र में बहुमत अल्पमत पर शासन कर उन्हें कुचलता नहीं अपितु अल्पमत को पनपने का अवसर दिया जाता है। भारतीय अधिकार-पत्र द्वारा ऐसी व्यवस्था को अल्पसंख्यकों के अधिकारों के रूप में लिखा गया है।

12. **सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों का अभाव (Absence of Social and Economic Rights)**–भारतीय अधिकार-पत्र में सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों, उदाहरणतया काम करने का अधिकार (Right to Work), आराम का अधिकार (Right of Rest and Leisure), सामाजिक सुरक्षा का अधिकार (Right to Social Security), आदि शामिल नहीं किये गये हैं। हाँ, इन अधिकारों को निर्देशक सिद्धान्तों के अधीन लिखा गया है।

13. **शस्त्रधारी सेनाओं के अधिकार सीमित किए जा सकते हैं (Rights of Armed Forces can be Restricted)**–संविधान की धारा 33 के अनुसार संसद सेनाओं में अनुशासन को बनाए रखने के लिए मौलिक अधिकारों में संशोधन कर सकती है। संसद पुलिस, सीमा सुरक्षा आदि के विषय में उचित व्यवस्था कर सकती है।

14. **मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए विशेष संवैधानिक व्यवस्था (Special Constitutional Provision for the Enforcement of Fundamental Rights)**–भारतीय संविधान की धारा 226 के अन्तर्गत हमारे छीने गए अधिकार को लागू करवाने के लिए उचित विधि द्वारा प्रान्त में उच्च न्यायालय की शरण ले सकते हैं तथा धारा 32 के अन्तर्गत उचित विधि द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकते हैं। इस सम्बन्ध में हम उचित याचिका (Writ) कर सकते हैं। जैसे–हैबीयस कारपस (Habeas Carpus), मण्डामस (Mandamus), वर्जन (Prohibition), क्यो-वारंटो (Quo-Warranto) एवं सरट्योरी (Certiorari)।

निष्कर्ष (Conclusion)–उपर्युक्त अध्ययन से सुस्पष्ट विदित होता है कि अधिकारों के बिना मनुष्य जीवन का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। लेकिन जब संविधान को संशोधित करके इनको सीमित किया जा सकता है और संकटकालीन स्थिति में उन्हें संविधान में बिना संशोधन के निलम्बित किया जा सकता है, तो फिर उन्हें मौलिक अधिकार क्यों कहा जाए। इसका जवाब सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में स्पष्ट किया, "अधिकार ही मौलिक हैं, अधिकारों के प्रतिबन्ध मौलिक नहीं हो सकते।"

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks):

1. भारतीय संविधान मौलिक अधिकार के लिए .... के संविधान का ऋणी है।
2. भारतीय अधिकार-पत्र में लिखित अधिकार अधिकतर .... अधिकार हैं।
3. धारा .... में दी गई कार्यविधि से मौलिक अधिकारों का संशोधन किया जा सकता है?

नोट

2.2 मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)

भारतीय संविधान के द्वारा भारत के नागरिकों को 6 प्रकार के मौलिक अधिकार दिए गए है: वे निम्नलिखित है:

1. **समानता का अधिकार (Right to Equality–Article 14 to 18)**–समानता का अधिकार प्रजातन्त्र का आधार स्तम्भ है, अत: भारतीय संविधान द्वारा सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समानता, राज्य के अधीन नौकरियों का समान अवसर और सामाजिक समानता प्रदान की गयी है एवं समानता की स्थापना के लिए उपाधियों का निषेध किया गया है।

(*i*) कानून के समक्ष समानता (अनुच्छेद 14) (Equality before the Law–Article 14)–**अनुच्छेद 14 के अनुसार भारत के राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं रखेगा।** अनुच्छेद के प्रथम भाग के शब्द 'कानून के समक्ष समानता' ब्रिटिश सामान्य विधि की देन है और इसके द्वारा राज्य पर यह बन्धन लगाया गया है कि वह सभी व्यक्तियों के लिए एक-सा कानून बनायेगा तथा उन्हें एक समान लागू करेगा। **सर आइवर जैनिंग्ज** के अनुसार इसका अर्थ यह है कि "समान परिस्थितियों में सभी व्यक्तियों के साथ कानून का व्यवहार एक-सा होना चाहिए।" 'कानून का समान संरक्षण', यह वाक्य अमरीकी संविधान से लिया गया है और इसका तात्पर्य यह है कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से न्यायालय की शरण ले सकता है।

कानून के समक्ष समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि औचित्यपूर्ण आधार पर और कानून द्वारा मान्य किसी भेदभाव की भी व्यवस्था नहीं की जा सकती है। यदि कानून कर लगाने के सम्बन्ध में धनी और गरीब में और सुविधाएँ प्रदान करने में स्त्रियों और पुरुषों में भेद करता है तो इसे कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता।

(*ii*) धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15) (Prohibition of Discrimination on Grounds of Religion, Race, Caste, Sex or Place of Birth–Article 15)–कानून के समक्ष समानता के साथ-साथ अनुच्छेद 15 में कहा गया है कि "राज्य के द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान आदि के आधार पर नागरिकों के प्रति जीवन के किसी क्षेत्र में भेद-भाव नहीं किया जायेगा।" कानून के द्वारा निश्चित किया गया है कि सब नागरिकों के साथ दुकानों, होटलों तथा सार्वजनिक स्थानों--जैसे कुओं, तालाबों, स्नानगृहों, सड़कों आदि पर किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जायेगा।

(*iii*) राज्य के अधीन नौकरियों का समान अवसर (अनुच्छेद 16) (Equality of Opportunity in Matters of Public Employment–Article 16)–अनुच्छेद 16 के अनुसार, "सब नागरिकों को सरकारी पदों पर नियुक्ति के समान अवसर प्राप्त होंगे और इस सम्बन्ध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर सरकारी नौकरी या पद प्रदान करने में भेद-भाव नहीं किया जायेगा।" इसके अन्तर्गत राज्य को यह अधिकार है कि वह राजकीय सेवाओं के लिए आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित कर दे। संसद कानून द्वारा संघ में सम्मिलित राज्यों को अधिकार दे सकती है कि वे उस पद के उम्मीदवार के लिए उस राज्य का निवासी होना आवश्यक ठहरा दें। इसी प्रकार सेवाओं में पिछड़े हुए वर्गों के लिए भी स्थान सुरक्षित रखे जा सकते हैं।

(*iv*) **अस्पृश्यता का निषेध (अनुच्छेद 17) (Abolition of Untouchability–Article 17)**–सामाजिक समानता को और अधिक पूर्णता देने के लिए अस्पृश्यता का निषेध किया गया है। अनुच्छेद 17 में कहा गया है कि "अस्पृश्यता से उत्पन्न किसी अयोग्यता को लागू करना एक दण्डनीय अपराध होगा।" हिन्दू समाज से अस्पृश्यता के विष को समाप्त करने के लिए संसद के द्वारा 1955 ई. में 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' (Untouchability Offences Act) पारित किया गया है जो पूरे भारत पर लागू होता है। इस कानून के अनुसार अस्पृश्यता एक दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

(*v*) **उपाधियों का निषेध (अनुच्छेद 18) (Abolition of Titles–Article 18)**–ब्रिटिश शासन काल में सम्पत्ति आदि के आधार पर उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं, जो सामाजिक जीवन में भेद उत्पन्न करती थीं, अत: नवीन संविधान में इनका निषेध कर दिया गया है। अनुच्छेद 18 में व्यवस्था की गयी है कि "सेना अथवा विद्या सम्बन्धी उपाधियों के अलावा राज्य अन्य कोई उपाधियाँ प्रदान नहीं कर सकता।" इसके साथ ही भारतवर्ष का कोई नागरिक बिना राष्ट्रपति की आज्ञा के विदेशी राज्य से भी कोई उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता।

2. **स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom–Article 19 to 22)**–भारतीय संविधान का उद्देश्य विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना है, अत: संविधान के द्वारा नागरिकों को विविध स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गयी हैं। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 19 सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह अधिकार नागरिकों को निम्नलिखित 6 स्वतन्त्रताएँ प्रदान करता है:

(*i*) धारा 19 के द्वारा भारतीय नागरिकों को 7 स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गई थीं, जिसमें छठी स्वतन्त्रता, सम्पत्ति प्राप्त करने तथा उसे बेचने की स्वतन्त्रता थी। परन्तु 44वें संशोधन द्वारा सम्पत्ति के अधिकार के साथ-साथ 'सम्पत्ति की स्वतन्त्रता' भी समाप्त कर दी गई है और इस प्रकार अब धारा 19 के अन्तर्गत नागरिकों को छ: स्वतन्त्रताएँ ही प्राप्त हैं, जो इस प्रकार हैं–

(*a*) भाषण देने तथा विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता (Right to Freedom of Speech and Expression)।

(*b*) शान्तिपूर्वक तथा बिना शस्त्रों के इकट्ठा होने की स्वतन्त्रता (Freedom to assemble peacefully and without arms)।

(*c*) संघ बनाने का अधिकार (Freedom to form Associations)।

(*d*) भारत राज्य के क्षेत्र में भ्रमण करने का अधिकार (Freedom to move freely throughout the territory of India)।

(*e*) भारत के किसी भाग में रहने या निवास करने की स्वतन्त्रता (Freedom to reside and settle in any part of the territory of India)।

(*f*) कोई भी व्यवसाय करने, पेशा अपनाने या व्यापार करने का अधिकार (Freedom to practise any profession or to carry on any occupation, trade or business)।

धारा 20 से 22 तक ने नागरिकों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। ब्रिटेन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का आधार कानून का शासन है। यही सिद्धान्त भारत में भी अपनाया गया है।

नोट्स भारतीय संविधान के अनुसार नागरिकों को सात मौलिक अधिकार प्राप्त थे, लेकिन 44वें संविधान संशोधन के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से निकाल दिया गया है।

(*ii*) (*a*) धारा 20 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को सजा उस समय में प्रचलित कानून के अनुसार हो दी जा सकती है।

(*b*) धारा 20 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को एक अपराध के लिए दो बार सजा नहीं दी जा सकती है।

(*c*) धारा 20 के अनुसार किसी भी व्यक्ति को अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।

(*iii*) धारा 21 के अनुसार कानून द्वारा स्थापित पद्धति (Procedure Established by Law) के बिना किसी व्यक्ति को उसके जीवन और उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

(*a*) किसी भी व्यक्ति को उसका अपराध बताए बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता।

(*b*) गिरफ्तार किये गए व्यक्ति को 24 घंटे के अन्दर मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना आवश्यक है।

(*c*) बिना मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बन्दी को जेल में नहीं रखा जा सकता।

(*d*) बन्दी को कानूनी सलाह प्राप्त करने का पूरा अधिकार है।

3. **शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right Against Exploitation—Article 23 to 24)**–संविधान के 23 तथा 24वें अनुच्छेदों में नागरिकों के लिए शोषण के विरुद्ध अधिकारों का उल्लेख किया गया है। इस अधिकार का यह लक्ष्य है कि समाज का कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति के साथ अन्याय न कर सके।

(*i*) धारा 23 के अनुसार मनुष्यों का व्यापार, उनसे बेगार तथा इच्छा के विरुद्ध काम करवाने की मनाही कर दी गई है और जो इस व्यवस्था का किसी प्रकार से उल्लंघन करेगा, उसे कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध समझा जाएगा।

(*ii*) धारा 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु वाले बालक को किसी भी कारखाने अथवा खान में नौकर नहीं रखा जाएगा। न ही किसी अन्य संकटमयी नौकरी में लगाया जाएगा। इसका अभिप्राय यह है कि बच्चों को काम में लगाने की बजाए उनको शिक्षा दी जाए। इसीलिए भारतीय संविधान के अध्याय 4 में निर्देशक सिद्धांतों के द्वारा राज्यों को यह निर्देश दिया गया है कि वह 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करें। शिक्षा के अधिकार (Right to Education) अधिनियम को भी इसी लिए बनाया गया है।

4. **धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion–Article 25 to 28)**–संविधान के अगले 4 अनुच्छेदों (25 से 28) में भारत को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य बनाने की व्यवस्था की गई है। संविधान-निर्माताओं ने अनुच्छेद 15 तथा 16 में दिए इस अब अधिकार के साथ 42वें संशोधन के द्वारा धर्म-निरपेक्ष शब्द को संविधान की प्रस्तावना में जोड़ दिया गया है।

(*i*) **किसी भी धर्म को मानने की स्वतन्त्रता (Freedom to practise any Religion)**–अनुच्छेद 25 में यह व्यवस्था की गई है कि भारत में सभी नागरिकों को किसी भी धर्म को मानने, उसका अनुयायी बनने तथा उसका प्रचार करने का अधिकार है।

(*ii*) **धार्मिक कार्य का प्रबंधन करने की स्वतन्त्रता (Freedom to manage Religious Affairs)**–अनुच्छेद 26 द्वारा सभी धार्मिक सम्प्रदायों को धार्मिक एवं परोपकारी उद्देश्यों के लिए संस्थाएँ स्थापित करने उनसे सम्बन्धित विषयों का संचालन करने, चल तथा अचल सम्पत्ति खरीदने तथा कानून के अनुसार उनका प्रबंधन चलाने का अधिकार दिया गया है।

(*iii*) **धर्म के प्रचार के लिए कर न देने की स्वतन्त्रता (Freedom as to Payment of Taxes for Promotion of any Particular Religion)**–अनुच्छेद 27 में यह निर्धारित किया गया है। कि किसी भी धर्म के प्रचार के लिए किसी व्यक्ति को कोई कर देने पर विवश नहीं किया जायेगा।

नोट

(iv) **शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा न दिए जाने की रोक (Prohibition of Giving Religious Instructions in Educational Institutions)**–अनुच्छेद 28 द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि राज्य द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त किसी भी संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। परन्तु इसके अधीन वे संस्थाएँ नहीं आतीं जिनकी स्थापना किसी ट्रस्ट द्वारा धर्म के प्रचार के लिए की गई हो, चाहे उसका प्रशासन राज्य ही चलाता हो। इसी अनुच्छेद में यह भी स्पष्ट किया गया है कि राज्य द्वारा जिन संस्थाओं को अनुदान (Grants) दिया जाता है, उनमें किसी व्यक्ति को धार्मिक समारोह में शामिल होने अथवा धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने पर विवश नहीं किया जा सकता।

5. **सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and Educational Rights–Article 29 to 30)**–सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का उल्लेख संविधान की 29 व 30 अनुच्छेदों में किया गया है। इनके अनुसार भारत में निवास करने वाले अल्पमतों के हितों की सुरक्षा की उचित व्यवस्था की गई है ताकि वे अपनी संस्कृति तथा भाषा के आधार पर अपना विकास कर सकें।

(i) अनुच्छेद 29 के अनुसार, भारत के किसी भी क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों के हर वर्ग या उसके भाग को, जिनकी अपनी भाषा, लिपि अथवा संस्कृति हो, उसे यह अधिकार है कि वह उनकी उनकी रक्षा करे।

(ii) अनुच्छेद 29 के अनुसार, किसी भी नागरिक को राज्य द्वारा या उसकी सहायता से चलायी जाने वाली शिक्षा संस्था में प्रवेश देने से धर्म, जाति, वंश, भाषा या इनमें किसी के आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता।

(iii) अनुच्छेद 30 के अनुसार, सभी अल्पसंख्यकों को चाहे वे धर्म पर आधारित हों या भाषा पर यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपनी इच्छानुसार शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करें तथा उनका प्रबन्ध करें।

(iv) अनुच्छेद 30 के अनुसार, राज्य द्वारा सहायता देते समय शिक्षा संस्थाओं के प्रति इस आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा कि वह अल्पसंख्यकों के प्रबन्ध के अधीन है, चाहे वह अल्पसंख्यक भाषा के आधार पर या धर्म के आधार पर क्यों न हो। 44 वें संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि राज्य अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित व चलाई जा रही शिक्षा संस्थाओं की सम्पत्ति को अनिवार्य रूप से लेने के लिए कानून का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखेगा कि कानून के द्वारा निर्धारित की गई रकमों से अल्पसंख्यकों के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह परिवर्तन इसलिए करना पड़ा, क्योंकि 44वें संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 31 को हटाकर सम्पत्ति का अधिकार समाप्त कर दिया गया है। अब सम्पत्ति का अधिकार केवल कानूनी अधिकार है।

6. **संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies–Article 32)**–संविधान में मौलिक अधिकारों के उल्लेख से अधिक महत्त्वपूर्ण बात उन्हें क्रियान्वित करने की व्यवस्था है, जिसके बिना मौलिक अधिकार अर्थहीन सिद्ध हो जाते। संविधान निर्माताओं ने इस उद्देश्य से संवैधानिक उपचारों के अधिकार को भी संविधान में स्थान दिया है, जिसका तात्पर्य यह है कि नागरिक अधिकारों को लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की शरण ले सकते हैं। इन न्यायालयों के द्वारा व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित उन सभी कानूनों और कार्यपालिका के उन कार्यों को अवैधानिक घोषित कर दिया जायेगा जो अधिकारों के विरुद्ध हों। संवैधानिक उपचारों के अधिकारों की व्यवस्था के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए **डा. अम्बेडकर** ने कहा था, "यदि कोई मुझसे यह पूछे कि संविधान का वह कौन-सा अनुच्छेद है जिसके बिना संविधान शून्यप्राय हो जायेगा, तो इस अनुच्छेद (अनुच्छेद 32) को छोड़कर मैं और किसी अनुच्छेद की ओर संकेत नहीं कर सकता। यह तो संविधान का हृदय तथा आत्मा है।" भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश **राजेन्द्र गडकर** ने इसे 'भारतीय संविधान का सबसे प्रमुख लक्षण' और संविधान द्वारा स्थापित 'प्रजातान्त्रिक भवन की आधारशिला' कहा है।

नोट

सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए निम्न पाँच प्रकार के लेख जारी किये जा सकते हैं–

(*i*) **वन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)**–व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए यह लेख सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यह उस व्यक्ति की प्रार्थना पर जारी किया जाता है जो यह समझता है कि उसे अवैध रूप से बन्दी बनाया गया है। इसके द्वारा न्यायालय, बन्दीकरण करने वाले अधिकारी को आदेश देता है कि वह बन्दी बनाये गये व्यक्ति को निश्चित समय और स्थान पर उपस्थित करे, जिससे न्यायालय बन्दी बनाये जाने के कारणों पर विचार कर सके। दोनों पक्षों की बात सुनकर न्यायालय इस बात का निर्णय करता है कि नजरबन्दी वैध है या अवैध, और यदि अवैध होती है तो न्यायालय बन्दी को फौरन मुक्त करने की आज्ञा देता है। इस प्रकार अनुचित एवं गैरकानूनी रूप से बन्दी बनाये गये व्यक्ति वन्दी प्रत्यक्षीकरण के लेख के आधार पर स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं।

(*ii*) **परमादेश (Mandamus)**–परमादेश का लेख उस समय जारी किया जाता है जब कोई पदाधिकारी अपने सार्वजनिक कर्तव्य का निर्वाह नहीं करता। इस प्रकार के आज्ञा पत्र के आधार पर पदाधिकारी को उसके कर्त्तव्य पालन का आदेश जारी किया जाता है।

(*iii*) **उत्प्रेषण (Certiorari)**–यह आज्ञापत्र अधिकांशत: किसी विवाद को निम्न न्यायालय से उच्च न्यायालय में भेजने के लिए जारी किया जाता है, जिससे वह अपनी शक्ति से अधिक अधिकारों का उपभोग न करे या अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते हुए न्याय के प्राकृतिक सिद्धान्तों को भंग न करे। इस आज्ञापत्र के आधार पर उच्च न्यायालय निम्न न्यायालयों से किन्हीं विवादों के सम्बन्ध में सूचना भी प्राप्त कर सकते हैं।

(*iv*) **प्रतिषेध (Prohibition)**–इस आज्ञापत्र के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों द्वारा निम्न न्यायालयों तथा अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरणों को जारी करते हुए यह आदेश दिया जाता है कि वे मामले में अपने यहाँ कार्यवाही स्थगित कर दें, क्योंकि यह मामला उसके अधिकार क्षेत्र के बाहर है।

(*v*) **अधिकार पृच्छा (Quo-warranto)**–जब कोई व्यक्ति ऐसे पदाधिकारी के रूप में कार्य करने लगता है, जिसके रूप में कार्य करने का उसे वैधानिक रूप से अधिकार नहीं है तो न्यायालय अधिकार पृच्छा के आदेश द्वारा उस व्यक्ति से पूछता है कि वह किस आधार पर इस पद पर कार्य कर रहा है और जब तक वह इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर नहीं देता, वह कार्य नहीं कर सकता।

व्यक्तियों के द्वारा सामान्य परिस्थितियों में ही न्यायालयों की शरण लेकर अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा की जा सकती है, लेकिन युद्ध, बाहरी आक्रमण या आन्तरिक अशान्ति जैसी परिस्थितियों में, जबकि राष्ट्रपति के द्वारा संकटकाल की घोषणा कर दी गयी हो, मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए कोई व्यक्ति किसी न्यायालय से प्रार्थना नहीं कर सकेगा। इस प्रकार संविधान के द्वारा संकटकाल में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को निलम्बित करने की व्यवस्था की गयी है।

निष्कर्ष (Conclusion)–उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि समाज में मौलिक अधिकारों का एक विशेष महत्त्व होता है। लेकिन कुछ आलोचकों ने भारतीय मौलिक अधिकारों की कटु आलोचना की है। उनका मत है कि मौलिक अधिकारों के तीसरे अध्याय में सामाजिक और आर्थिक अधिकार सम्मिलित न करना एक बहुत बड़ी भूल है और इसी कारण मौलिक अधिकार खोखले बनकर रह गये हैं। इन अधिकारों की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि सरकार को मौलिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने की अनेक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, लेकिन इन सब बातों के बावजूद भी इसमें तनिक सन्देह नहीं है कि मौलिक अधिकार लोकतन्त्र की आधारशिला हैं। विश्व में कोई भी देश ऐसा नहीं है जहाँ पर मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध न लगाए गए हों। मौलिक अधिकारों द्वारा नागरिकों की व्यक्तिगत सुरक्षा की गई है तथा विधानपालिका, कार्यपालिका की निरंकुशता पर प्रतिबन्ध न लगाए गए हों। भारत में मौलिक अधिकारों द्वारा नागरिकों की व्यक्तिगत सुरक्षा की गई है तथा विधानपालिका, कार्यपालिका

नोट

की निरंकुशता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। अन्त में हमें **एम.वी. पायली** (M.V. Paylee) के कथन से सहमत होना पड़ेगा, "सम्पूर्ण दृष्टि से संविधान में अंकित मौलिक अधिकार भारतीय प्रजातन्त्र को दृढ़ तथा जीवित रखने के आधार हैं।" ("These fundamental rights, taken as a whole remain a formidable sustaining basis of Indian Democracy.")

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. 'समानता का अधिकार' का वर्णन संविधान के किन अनुच्छेदों में किया गया है?
   (*a*) 14 से 18 (*b*) 16 से 24
   (*c*) 18 से 20 (*d*) 21 से 25
5. संविधान के अनुच्छेद 14 में निम्न में से किसकी बात की गई है?
   (*a*) धार्मिक स्वतंत्रता (*b*) कानून के समक्ष समानता
   (*c*) अवसर की समानता (*d*) अस्पृश्यता का निषेध
6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार का वर्णन संविधान के किस अनुच्छेद में है?
   (*a*) अनुच्छेद 23 (*b*) अनुच्छेद 24
   (*c*) अनुच्छेद 32 (*d*) अनुच्छेद 33

2.3 सारांश (Summary)

- मौलिक अधिकार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अधिकारों के हित में राज्य की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाने का श्रेष्ठ उपाय हैं।
- 1945 में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, 'संयुक्त राष्ट्र संघ' के द्वारा भी 10 दिसम्बर, 1948 ई. को 'मानवीय अधिकारों की सार्वलौकिक घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights) के नाम से अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार पत्र स्वीकार किया गया।
- हमारे संविधान में सरकार को राज्य की सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक नैतिकता तथा लोक-कल्याण की दृष्टि से मौलिक अधिकारों पर समय की आवश्यकता अनुसार उचित प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया गया है।
- स्वतन्त्रता का अधिकार जिस द्वारा नागरिकों को भाषण तथा विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता, समुदाय निर्माण करने की स्वतन्त्रता, किसी जगह रहने तथा कोई भी पेशा अपनाने की स्वतन्त्रता आदि प्रदान की गई है।
- भारतीय संविधान की धारा 226 के अन्तर्गत हमारे छीने गए अधिकार को लागू करवाने के लिए उचित विधि द्वारा प्रान्त में उच्च न्यायालय की शरण ले सकते हैं तथा धारा 32 के अन्तर्गत उचित विधि द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकते हैं।
- कानून के समक्ष समानता का तात्पर्य यह नहीं है कि औचित्यपूर्ण आधार पर और कानून द्वारा मान्य किसी भेदभाव की भी व्यवस्था नहीं की जा सकती है। यदि कानून कर लगाने के सम्बन्ध में धनी और गरीब में और सुविधाएँ प्रदान करने में स्त्रियों और पुरुषों में भेद करता है तो इसे कानून के समक्ष समानता का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता।

नोट

- धारा 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु वाले किसी भी बालक को किसी भी कारखाने अथवा खान में नौकर नहीं रखा जाएगा। न ही किसी अन्य संकटमयी नौकरी में लगाया जाएगा।
- संविधान में मौलिक अधिकारों के उल्लेख से अधिक महत्त्वपूर्ण बात उन्हें क्रियान्वित करने की व्यवस्था है, जिसके बिना मौलिक अधिकार अर्थहीन सिद्ध होंगे। संविधान निर्माताओं ने इस उद्देश्य से संवैधानिक उपचारों के अधिकार को भी संविधान में स्थान दिया है, जिसका तात्पर्य यह है कि नागरिक अधिकारों को लागू करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों की शरण ले सकते हैं।

2.4 शब्दकोश (Keywords)

- मौलिक (Fundamental): मूल संबंधी, असली, वास्तविक, मूलभूत (जैसे मानव के मौलिक सिद्धांत)
- अल्पसंख्यक (Minority): कम जनसंख्या वाला

2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में दिये गये मौलिक अधिकारों की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. भारत में कौन-कौन से मौलिक अधिकार नागरिकों को प्राप्त है? वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

1. अमेरिका	2. नकारात्मक
3. 368	4. *a*
5. *b*	6. *c*

2.6 सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था* – एन. छाबरा, अभिनव प्रकाशन, रोहतक, (हरियाणा)।
2. *भारतीय राजनीतिक प्रणाली* – यू.आर. घई।

नोट

पाठ 3: मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties)

संरचना (Structure)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
3.1 भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties Given in Indian Constitution)
3.2 सारांश (Summary)
3.3 शब्दकोश (Keywords)
3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
3.5 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों का अर्थ समझने में।
- भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को कितने मौलिक कर्त्तव्य प्रदत्त हैं, समझने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

भारत में स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान महात्मा गाँधी ने सदा कर्त्तव्यों की धारणा पर बल दिया। "स्वतंत्र भारत के लिए गाँधीवादी संविधान" (A Gandhism Constitution for Free India) नामक लघु पुस्तिका में मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्त्तव्यों पर एक पूर्ण अध्याय शामिल किया गया। इस पुस्तक की भूमिका गाँधी जी ने स्वयं लिखी थी। गाँधी जी के अनुसार अधिकार का अर्थ कर्त्तव्य का अच्छी तरह से पालन करना है; अधिकार के साथ अनुकूल दायित्व होता है। गाँधी जी अधिकारों और कर्त्तव्यों में आंगिक संबंध मानते थे। यदि अधिकार शरीर है तो कर्त्तव्य उसकी आत्मा है। उनका आपस में वही सम्बन्ध है जो चोली और दामन का होता है। वह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

भारत के संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों को तो स्थान दिया गया, परन्तु मौलिक कर्त्तव्यों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया। इसका कारण शायद यह था कि उस समय देश लम्बे काल के विदेशी शासन, राजनैतिक दमन और मानव अधिकारों के अभाव से मुक्त हुआ था और संविधान-निर्माता पश्चिमी उदारवादी व्यक्तिवाद की विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित थे। उस समय राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रदान करना था, परन्तु संविधान लागू होने के 26 वर्ष के पश्चात् अखिल भारतीय कांग्रेस ने यह अनुभव किया कि संविधान में नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों की सूची भी होनी चाहिए। कार्य संवैधानिक सुधारों के लिए नियुक्त की गई **स्वर्ण सिंह कमेटी** को सौंपा गया। इस कमेटी की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के अन्तर्गत भारतीय संविधान में एक नया भाग IV जोड़ा गया है।

टास्क मौलिक कर्त्तव्य से आप क्या समझते हैं?

3.1 भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties Given in Indian Constitution)

भारतीय संविधान के भाग IV के अनुच्छेद 51A में निम्नलिखित दस मौलिक कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है—

1. संविधान का पालन करें और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करें: प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्त्तव्य है कि वह पूर्ण निष्ठा से संविधान का पालन करे क्योंकि यही देश का सर्वोच्च कानून है। इसके आदर्शों (लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता आदि), संस्थाओं (संसद, कार्यपालिका आदि) का सम्मान करना भी नागरिक का परम कर्त्तव्य है। राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करना भी प्रत्येक नागरिक का मौलिक कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है। अतः प्रत्येक नागरिक को राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक तिरंगे ध्वज का आदर करके राष्ट्र के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए। साथ ही राष्ट्रगान के समय सावधान की मुद्रा में खड़े होकर राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना प्रकट करनी चाहिए।

2. भारत की प्रभुसत्ता, एकता और अखण्डता को कायम रखना और रक्षा करना: देश की प्रभुता का समर्थन करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्त्तव्य बताया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य द्वारा निर्मित कानूनों का सही ढंग से पालन करना सभी नागरिकों का पवित्र कर्त्तव्य है।

नोट्स यदि कोई देश भारत पर आक्रमण करे तो सभी नागरिक उसकी रक्षा में तन, मन, धन से योगदान दें। इसके साथ ही नागरिकों को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे देश की एकता और अखण्डता स्थायी रह सके।

3. देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें: देश की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्त्तव्य है क्योंकि देश की रक्षा में ही नागरिकों की रक्षा निहित है। राष्ट्र पर संकट होने पर नागरिकों को अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को भुलाकर राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए। यदि देश को सैनिकों की आवश्यकता हो तो नागरिक को स्वेच्छा से सेना में भर्ती हो जाना चाहिए।

4. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखें और उनका पालन करें: प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों (स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व) को अपने हृदय में सदैव संजोए रखे और अपने दैनिक जीवन में उनका अनुसरण करें।

नोट

5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करें: सभी नागरिकों का परम कर्त्तव्य है कि वे परस्पर भ्रातृत्व की भावना का विकास करें। न्याय, स्वतंत्रता एवं बन्धुत्व के आधार पर निर्मित इस नवीन राष्ट्र (भारत) के समस्त नागरिक यह अनुभव करें कि वे एक ही धारा के शिशु हैं, एक ही उनकी मातृभूमि है और उनका एक ही भ्रातृत्व है।

6. सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व समझें और उसे बनाये रखें: प्रत्येक देश की अपनी एक प्राचीन सामाजिक संस्कृति होती है। हमारे देश की एक प्राचीन गौरवशाली संस्कृति है जो एकता, विश्वबंधुत्व, सर्वधर्म समभाव आदि आदर्शों को अपने में समाहित किए हुए है भारत की इस गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा को समझना और इसे अक्षुण्ण बनाए रखना नागरिकों का मौलिक कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है।

7. जंगलों, झीलों, नदियों और जंगली जीवन सहित प्राकृतिक वातावरण की संभाल और सुधार तथा जीवित प्राणियों के प्रति दया भाव रखना: हमारे प्राकृतिक वातावरण को प्रदूषण और अनैच्छिक शोषण से बचाने की आवश्यकता अनुभव करते हुए संविधान के निर्माताओं ने नागरिकों का यह मौलिक कर्त्तव्य निर्धारित किया कि वे प्राकृतिक वातावरण की रक्षा करें और उसमें सुधार करें।

8. सार्वजनिक सम्पत्ति को सुरक्षित रखें और हिंसा से दूर रहें: सभी नागरिकों का यह कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है कि वे सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करें। अतः उन्हें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे सार्वजनिक सम्पत्ति को हानि पहुँचे या उसके नष्ट होने की आशंका हो। दूसरे उन्हें हिंसात्मक आंदोलनों एवं कार्यों से सदा दूर रहना चाहिए।

क्या आप जानते हैं स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए केन्द्रीय सरकार ने 42वें संविधान संशोधन विधेयक के अन्तर्गत नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित किया।

9. वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करें: विद्यमान बुराइयों और जड़ पड़ गये रीति-रिवाजों को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि लोग एक वैज्ञानिक मानसिकता विकसित करें। उनको प्रत्येक स्थिति में एक तर्कपूर्ण प्रवृत्ति और सीखने की इच्छा विकसित करनी चाहिए और अपने गुणों और साधनों को समाज के सुधार और विकास के लिए प्रयोग करना चाहिए। मानवीय विचारों एवं मूल्यों को समझना, उनका सम्मान करना और उनको अपनाना मनुष्य का एक सर्वोच्च कर्त्तव्य है।

10. व्यक्तिगत एवं सामूहिक क्षेत्र में विविध विषयों में उन्नति की ओर अग्रसर हों: सभी नागरिकों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे लगातार ज्ञानार्जन एवं क्षेत्रों में उन्नति की ओर बढ़ने का हमेशा प्रयास करें जिससे राष्ट्र के उत्थान के लिए किए जाने वाले निरन्तर प्रयास एवं उनके फलस्वरूप प्राप्त उपलब्धियाँ सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकें।

निष्कर्ष: जापान, इटली, चीन और अन्य अनेक यूरोपियन देशों के संविधानों में अधिकारों के साथ-साथ कर्त्तव्यों का भी उल्लेख है और भारत मे भी नागरिक कर्त्तव्यों के उल्लेख कर दिया गया है। इससे भारतीय नागरिकों को अपने कर्त्तव्यों का अधिक स्पष्ट रूप में बोध होगा और वे अधिक अच्छे रूप से इनका पालन कर सकेंगे।

इस कर्त्तव्यों की अवहेलना की जाने पर अभी तक किसी प्रकार की दण्ड व्यवस्था नहीं की गयी है, लेकिन संसद द्वारा इस सम्बन्ध में दण्ड की व्यवस्था की जा सकती है। कर्त्तव्यों की उपरोक्त व्यवस्था के सम्बन्ध में यही शंका है कि कुछ कर्त्तव्यों की भाषा के सम्बन्ध में आवश्यक स्पष्टता का अभाव है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास एवं समन्वित संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्त्व आदि ऐसी बातें हैं, जिनकी व्याख्या मनमाने रूप में की जा सकती है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानववाद की बात तो करना सरल है लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इन्हें सहज ही साधारण नागरिक के जीवन में उतारा जा सकता

है। इस सम्बन्ध में भय और आपत्ति यह है कि कर्त्तव्य पालन करवाने के नाम पर शासक वर्ग के द्वारा अपनी सत्ता का दुरुपयोग किया जा सकता है। आशा यही की जानी चाहिए कि ऐसी स्थिति उत्पन्न न हो।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

1. 'स्वतंत्र भारत के लिए गांधीवादी संविधान पुस्तक' ……… ने लिखी है।
2. 42वें संवैधानिक संशोधन के अंतर्गत संविधान में एक नया भाग ……… जोड़ा गया है।
3. मूल अधिकारों को ……… की सिफारिशों को स्वीकार करते संविधान में शामिल किया गया था।

3.2 सारांश (Summary)

- गाँधी जी के अनुसार अधिकार का अर्थ कर्त्तव्य का अच्छी तरह से पालन करना है; अधिकार के साथ अनुकूल दायित्व होता है। गाँधी जी अधिकारों और कर्त्तव्यों में आंगिक संबंध मानते थे।
- राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करना भी प्रत्येक नागरिक का मौलिक कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है। अत: प्रत्येक नागरिक को राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक तिरंगे ध्वज का आदर करके राष्ट्र के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करना चाहिए।
- राष्ट्र पर संकट होने पर नागरिकों को अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को भुलाकर राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए। यदि देश को सैनिकों की आवश्यकता हो तो नागरिक को स्वेच्छा से सेना में भर्ती हो जाना चाहिए।
- मानवीय विचारों एवं मूल्यों को समझना, उनका सम्मान करना और उनको अपनाना मनुष्य का एक सर्वोच्च कर्त्तव्य है।

3.3 शब्दकोश (Keywords)

- संशोधन (Amendment): शुद्ध करना, साफ करना, ठीक करना, दुरुस्त करना, रूप बदलना।
- उदारवाद (Liberalism): वह सिद्धांत कि सभी लोगों को समान रूप से स्वतंत्र रहने का अधिकार मिलना चाहिए (समानता एवं स्वतंत्रता)।

3.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. संविधान द्वारा दिए गए भारतीय नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्यों की व्याख्या कीजिए?
2. एक नागरिक के लिए मौलिक कर्त्तव्य कितने महत्त्वपूर्ण हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

1. महात्मा गांधी
2. IV
3. स्वर्ण सिंह समिति

3.5 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था* — एन. छाबरा, अभिनव प्रकाशन, रोहतक (हरियाणा)।
2. *भारत का संविधान* — सुभाष कश्यप।

नोट

पाठ 4: राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy)

संरचना (Structure)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 निर्देशक सिद्धांतों की प्रकृति (Nature of Directive Principles)

4.2 निर्देशक सिद्धांतों का महत्त्व (Importance of Directive Principles)

4.3 निर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण (Classification of Directive Principles)

4.4 नीति-निर्देशक तत्त्वों की आलोचना (Criticism of Directive Principles)

4.5 राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों की उपयोगिता (Usefulness of Directive Principles of State Policy)

4.6 निर्देशक तत्त्वों का क्रियान्वयन और उपलब्धियाँ (Implementation and Achievements with Regard to Directive Principles)

4.7 निर्देशक सिद्धांत और मौलिक अधिकारों में अन्तर (Difference between Directive Principles and Fundamental Rights)

4.8 सारांश (Summary)

4.9 शब्दकोश (Keywords)

4.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

4.11 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- निर्देशक सिद्धांत के अर्थ, विषय-वस्तुओं को समझने हेतु।
- निर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण करके संविधान संशोधन को समझने में।
- राज्य-नीति के निर्देशक तत्त्वों की उपयोगिता का वर्णन करने हेतु।
- निर्देशक सिद्धांत और मौलिक अधिकारों में अन्तर को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय संविधान की एक विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत 'राज्य-नीति के निर्देशक तत्त्व' नाम से राज्य से पथ-प्रदर्शन हेतु कुछ सिद्धांतों की व्यवस्था की गयी है। इस नीति निर्देशक तत्त्वों का उल्लेख संविधान के चतुर्थ भाग में किया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत संविधान निर्माताओं ने एक दिशा की ओर संकेत किया है जिसका अनुसरण केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा कानून निर्माण और प्रशासन के संबंध में किया जाना चाहिए.

1937 में आयरलैण्ड ने अपने संविधान में न केवल मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की वरन् सामाजिक नीति के निर्देशक सिद्धांतों को भी संविधान में स्थान दिया। इसके साथ ही मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में यह अन्तर रखा है कि जहाँ मौलिक अधिकारों को 'न्याय योग्य' ठहराया गया, नीति निर्देशक सिद्धांतों को न्याय योग्य नहीं माना गया।

4.1 निर्देशक सिद्धांतों की प्रकृति (Nature of Directive Principles)

इस निर्देशक तत्त्वों की प्रकृति और स्वरूप के सम्बन्ध में—अनुच्छेद 37 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि—"इस भाग (4) में दिये गये उपबंधों को किसी भी न्यायालय द्वारा बाध्यता नहीं दी जा सकेगी, किन्तु तो भी इसमें दिये हुए तत्त्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि निर्माण में इन तत्त्वों का प्रयोग करना राज्य का कर्त्तव्य होगा।"

> *क्या आप जानते हैं* **डॉ. अम्बेडकर** ने इन निर्देशक तत्त्वों के सम्बन्ध में संविधान सभा में कहा था, "राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व मानो 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अधीन गवर्नर जनरल और गवर्नरों के नाम आदेश हैं। अन्तर केवल इतना है कि 1935 के अधिनियम के अधीन आदेश कार्यपालिका को आदेश होते थे, जबकि निर्देशक तत्त्व राज्य के नाम आदेश हैं।"

"इसलिए हमारे राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व कार्यपालिका के साथ-साथ विधानमंडलों को प्रभावित करेंगे।" इन तत्त्वों की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए **श्री जी.एन. जोशी** अपनी पुस्तक 'भारत का संविधान' में लिखते हैं कि, "निर्देशक तत्त्वों का विधानमंडलों को कानून बनाते समय और कार्यपालिका को इन तत्त्वों को लागू करते समय ध्यान रखना चाहिए। ये उस नीति की ओर संकेत करते हैं जिनका अनुसरण संघ और राज्यों को करना चाहिए।"

राज्य-नीति के निर्देशक तत्त्व भारतीय संविधान की एक नई विशेषता है। इन सिद्धांतों में उन आदेशों की सूची समाविष्ट है जिनके अनुसार वर्तमान तथा भविष्य की सरकारें कार्य करेंगी भले ही वे किसी राजनीतिक दल से संबंधित हो। ये सिद्धांत संविधान के भाग IV (अनुच्छेद 36 से 51) में दिए गए हैं। ये सिद्धांत, संविधान निर्माताओं की आशाओं एवं आकांक्षाओं को परिलक्षित करते हैं। इन सिद्धांतों द्वारा वे भारत में कल्याणकारी राज्य स्थापित करना चाहते थे जिसमें लोगों को सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक न्याय प्राप्त हो सके। ये उपबंध भारतीय संविधान में जीवन का संचार करते हैं। इसके निर्माता इस सत्य को ठीक तरह समझते थे कि व्यक्ति के अधिकारों को समूचे समाज के सामूहिक हितों के साथ समंजित किया जाना चाहिए। वे अमरीका के अनुभव से परिचित थे इसलिए उन्होंने सामाजिक परिवर्तन की संभावना को सम्मुख रखा। इस सम्बन्ध में उन्होंने आयरलैण्ड के संविधान से मार्गदर्शन प्राप्त किया।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks):

1. आयरलैंड ने अपने संविधान में सामाजिक नीति के निर्देशक सिद्धांतों को ········ में शामिल किया है।
2. राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत संविधान के भाग IV ········ में दिये गये हैं।

4.2 निर्देशक सिद्धांतों का महत्त्व (Importance of Directive Principles)

निर्देशक सिद्धांत एक विशेष प्रकार की सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं। अनुच्छेद 38 के अनुसार, "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करके जिसमें राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय उपलब्ध हों, लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयत्न करेगा।" ("The State shall strive to promote the welfare of the people by securing and protecting as effectively as it may a social order in which justice, social, economic and political shall inform all the institutions of national life.") इन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया जाता। 42वें संशोधन से पूर्व मौलिक अधिकार निर्देशक सिद्धांतों से ऊँचे माने जाते थे, भले ही ये सिद्धांत देश के शासन के लिए आधारभूत थे। अनुच्छेद 37 के अनुसार भाग IV के उपबंध किसी न्यायालय द्वारा लागू नहीं होंगे, पर देश के प्रबंधन में तथा कानून बनाते समय ध्यान में रखे जाएँगे। ("Provisions in Part IV shall not be enforceable by any court, but the principle there in laid down are nevertheless fundamental in the governance of the country and it shall be the duty of the State to apply their principles in making the laws.") 42वें संशोधन के बाद इन्हें मौलिक अधिकारों से ऊँचा स्थान दिया गया है। इस संशोधन के बाद संसद अथवा राज्य विधानमंडलों द्वारा बनाए गए किसी कानून को किसी न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह संविधान के अनुच्छेद 14, 19 तथा का उल्लंघन करता है।

4.3 निर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण (Classification of Directive Principles)

संविधान के अध्याय 4, अनुच्छेद 36 से 51 तक निर्देशक सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है। संविधान में तो इनका वर्गीकरण नहीं किया गया लेकिन, **प्रो. एम.पी. शर्मा** ने इन्हें प्रमुख रूप से तीन भागों में विभाजित किया है।

इन तीन वर्गों में दो और वर्गों को भी जोड़ा जा सकता है।

1. समाजवादी सिद्धांत (Socialistic Principles): इस वर्ग के अधीन ऐसे सिद्धांत रखे जा सकते हैं जिनका उद्देश्य भारत में समाजवादी कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है।

(*i*) धारा 38 के अनुसार राज्य कल्याणकारी राज्य की उन्नति के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा।

(*ii*) धारा 39 के अनुसार–

(*a*) प्रत्येक नागरिक को अपना निर्वाह करने के लिए आजीविका कमाने का अधिकार प्राप्त हो।

(*b*) देश में भौतिक साधनों का विभाजन इस प्रकार हो जिससे अधिक-से-अधिक जन-कल्याण हो सके।

(*c*) देश का आर्थिक ढाँचा इस प्रकार का हो कि धन तथा उत्पादन के साधन चन्द व्यक्तियों के हाथ में एकत्रित न हों।

(*d*) स्त्रियों व पुरुषों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन की व्यवस्था हो।

(*e*) स्त्रियों, बच्चों तथा युवकों को नैतिक तथा भौतिक पतन एवं शोषण से बचाया जाए।

(*f*) स्त्री, पुरुष तथा बच्चों को आर्थिक संकट से विवश होकर ऐसे कार्य न करने दिए जाएँ जो उनकी आयु तथा स्वास्थ्य के अनुकूल हों।

(*iii*) धारा 41 के अनुसार बेकारी, बीमारी, बुढ़ापा तथा अंगहीन होने की स्थिति में राज्य अपनी शक्ति के अनुसार सहायता देने की व्यवस्था करे। इसके अलावा राज्य सब लोगों को रोजगार तथा शिक्षा देने का प्रयास करे।

(*iv*) धारा 42 के अनुसार राज्य काम के लिए न्यायपूर्ण स्थिति उत्पन्न करे तथा अधिक-से-अधिक प्रसूति सहायता (Maternity Relief) का प्रबंध करे।

> *नोट्स* धारा 43 के अनुसार राज्य प्रत्येक श्रेणी के मजदूरों के लिए अच्छा वेतन, अच्छा जीवन-स्तर तथा आवश्यक छुट्टियों का प्रबंध करे। राज्य इस प्रकार का प्रबंध करे कि मजदूर सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुविधाओं का अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त कर सकें।

2. गाँधीवादी सिद्धांत (Gandhian Principles): इस श्रेणी में वे सिद्धांत शामिल किए जा सकते हैं जिनसे समाज की स्थापना हो सकती है जिनका स्वप्न गाँधी जी के मन में था।

(*i*) धारा 40 के अनुसार गाँवों में ग्राम पंचायतों का निर्माण किया जाएगा।

(*ii*) धारा 43 के अनुसार गाँवों में घरेलू दस्तकारियों की उन्नति के लिए प्रयत्न किया जाएगा।

(*iii*) धारा 46 के अनुसार राज्य कमजोर वर्गों को तथा विशेषत: अनुसूचित जातियों और पिछड़े कबीलों को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करेगा, उनको सामाजिक अन्याय तथा हर प्रकार के शोषण से बचाएगा।

(*iv*) धारा 47 के अनुसार राज्य शराब तथा अन्य नशीली वस्तुओं पर जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, प्रतिबंध लगाने का प्रयास करेगा।

(*v*) धारा 48 के द्वारा दूध देने वाले पशुओं को मारने पर रोक लगाएगा तथा पशुओं की नस्ल सुधारने का यत्न करेगा।

3. उदारवादी सिद्धांत (Liberal Principles): इस श्रेणी में साधारण तथा विशाल विचारों वाले मनोरथों को शामिल किया गया है।

(*i*) धारा 44 के अनुसार राज्य समस्त भारत में समान व्यवहार नियम (Uniform Civil Code) लागू करने का यत्न करेगा।

(*ii*) धारा 45 के अनुसार संविधान लागू होने के दस वर्ष के अन्दर-अन्दर राज्य 14 वर्ष तक के बालकों के लिए नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।

(*iii*) धारा 47 के अनुसार राज्य लोगों के जीवन-स्तर तथा खुराक-स्तर को ऊँचा उठाने तथा उनके स्वास्थ्य में सुधार करने का प्रयत्न करेगा।

(*iv*) धारा 48 के अनुसार राज्य वैज्ञानिक आधार पर कृषि और पशुपालन का संचालन करेगा।

(*v*) धारा 50 के अनुसार राज्य न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् रखने का प्रयास करेगा।

4. अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों संबंधी सिद्धांत (Principles Relating to International Relations): इस श्रेणी में ऐसे सिद्धांत शामिल किए गए हैं जिनका लक्ष्य विश्व शान्ति स्थापित करना है। ये सिद्धांत इस प्रकार हैं–

धारा 51 के अनुसार–

(*i*) राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा व्यवस्था को बढ़ावा देगा।

(*ii*) राज्य विभिन्न राष्ट्रों के बीच सम्मानपूर्वक तथा न्यायोचित सम्बन्धों को बनाए रखने का यत्न करेगा।

नोट

(*iii*) राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों, सन्धियों तथा समझौतों का मान करेगा।

(*iv*) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को पंच फैसले (Arbitration) द्वारा निपटाने के ढंग का राज्य समर्थन करेगा।

5. अन्य सिद्धांत (Other Principles): धारा 49 के अनुसार राज्य ऐतिहासिक स्मारकों की रक्षा करने का पूरा प्रयास करेगा।

(*i*) 42वें संशोधन द्वारा संविधान में नया अनुच्छेद 43.1 जोड़ा गया है जिसके द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि राज्य उचित कानून या किसी अन्य विधि से इस उद्देश्य के लिए प्रयत्न करेगा कि किसी भी उद्योग से सम्बन्धित कारोबार के प्रबंध में अथवा अन्य संस्थाओं में श्रमिकों को भाग लेने का अवसर प्रदान हो।

(*ii*) 42वें संशोधन द्वारा संविधान में एक नया अनुच्छेद 48-A जोड़ा गया है, जिसमें यह व्यवस्था की गई है कि राज्य वातावरण की सुरक्षा तथा सुधार के लिए और देश के वनों तथा जीवन की रक्षा के लिए यत्न करेगा।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

3. धारा .... के अनुसार समाजवादी सिद्धांत कहता है कि राज्य काम के लिए न्यायपूर्ण स्थिति उत्पन्न करे तथा अधिक-से-अधिक प्रसूति सहायता का प्रबंध करें।
4. अनुच्छेद .... के अनुसार गांधीवादी सिद्धांत कहता है कि गाँवों में ग्राम पंचायत का निर्माण किया जाना चाहिए।

4.4 नीति-निर्देशक तत्त्वों की आलोचना (Criticism of Directive Principles)

जिस समय संविधान का निर्माण हो रहा था, उस समय संविधान सभा में और बाहर भी राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों सम्बन्धी उपबंधों की बहुत आलोचना हुई थी। संविधान के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् भी अनेक विद्वानों ने कई आधारों पर इन उपबंधों की आलोचना की है। निर्देशक तत्त्वों के विरुद्ध की जाने वाली आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं–

1. वैधानिक शक्ति का अभाव (Lack of Legal Sanction): संविधान ने राज्य के नीति के निर्देशक तत्त्वों को एक ओर तो देश के शासन में मूलभूत माना है किन्तु साथ ही वे वैधानिक शक्ति या प्राप्त न्याय योग्य नहीं है अर्थात् न्यायालय उपर्युक्त सिद्धांत को क्रियान्वित नहीं कर सकते हैं। अतः आलोचकों की राय में ये निर्देशक तत्त्व 'शुभ इच्छाएँ' (Pious Wishes), 'नैतिक उपदेश' (Morel Precepts) या 'ऐसी राजनीतिक घोषणाओं के समान हैं, जिनका कोई संवैधानिक महत्त्व नहीं हो।' संविधान सभा के एक सदस्य **श्री नासिरुद्दीन** ने इन्हें 'नववर्ष के प्रथम दिन पास किए गए शुभकामना का प्रस्ताव' जैसी वस्तु कहा था और **प्रो. के.टी. शाह** के शब्दों में, 'यह एक ऐसा चैक है जिसका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया है।' **प्रो. ह्वीयर** ने इन निर्देशक तत्त्वों को 'उद्देश्यों और आकांक्षाओं का घोषणा पत्र' कहा है और **श्री एन.आर. राघवाचारी** इन्हें 'ललित पदावली में व्यक्त ध्वनित भावनाओं की ऐसी पंक्तियाँ कहते हैं जिनका वैधानिक दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है।' सर **बी.एन. राव** के शब्दों में, "राज्यों की नीति-निर्देशक तत्त्व राज्य के अधिकारियों के लिए नैतिक उपदेश के समान हैं और वे इस आलोचना के पात्र हैं कि संविधान में नैतिक उपदेशों के लिए उचित स्थान नहीं है।" आलोचकों का कहना है यदि संविधान में नैतिक उपदेश करना ही अभीष्ट था, तो बाइबिल की दस पवित्र आज्ञाओं को संविधान में क्यों नहीं लिया गया?

2. अस्पष्ट तथा अतार्किक रूप से संग्रहीत (Vague and Illogically): नीति-निर्देशक तत्त्वों के विरुद्ध यह भी आलोचना की जाती है कि ये किसी निश्चित या संगतपूर्ण दर्शन पर आधारित नहीं है। वे अस्पष्ट हैं, उनमें क्रमबद्धता का अभाव है और एक बात को बार-बार दोहराया गया है। उदाहरण के लिए, इन तत्त्वों में पुराने स्मारकों की रक्षा जैसे महत्त्वहीन प्रश्न अपेक्षाकृत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, आर्थिक तथा सामाजिक प्रश्नों के साथ मिला

दिए गए हैं। **प्रो. श्रीनिवासन** के शब्दों में, "इस अध्याय में कुछ बेढंगे तरीके से आधुनिक को पुरातन के साथ और तर्क तथा विज्ञान द्वारा सुझाये गए उपबंधों को विशुद्ध रूप से भावुकता और पूर्वाग्रह पर आधारित उपबंधों के साथ मिला दिया गया है।".

3. एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य में अस्वाभाविक (Unnatural in Sovereign State): एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य में इस प्रकार के सिद्धांतों को ग्रहण करना अस्वाभाविक भी लगता है। एक उच्च सत्ता अधीनस्थ सत्ता को आदेश दे सकती है जैसा कि 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में ब्रिटिश संसद द्वारा गवर्नर जनरल और गवर्नरों को आदेश दिए गए थे, लेकिन एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य को इस प्रकार के आदेश देने की आवश्यकता पड़े, यह अस्वाभाविक जान पड़ता है विधिवेत्ताओं की दृष्टि में एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य के लिए इस प्रकार के आदेशों का कोई औचित्य नहीं है।

4. अव्यावहारिक एवं अनुचित (Impractical and Unsound): व्यावहारिकता व औचित्य को भी कुछ आलोचकों के द्वारा चुनौती दी गयी है। उदाहरण के लिए, मद्य निषेध से सम्बन्धित निर्देशक-तत्त्वों की स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के प्रतिपादकों द्वारा उग्र आलोचना की गयी है। उनका कहना है कि ये तथाकथित सुधार राष्ट्रीय कोष पर भारस्वरूप होंगे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि नैतिकता थोपी नहीं जा सकती। मद्य निषेध शराबियों को नैतिक प्रणाली बनाने के बजाय शराब के अवैध व्यापार को जन्म देगा। यह व्यवस्था इस दृष्टि से भी अव्यावहारिक प्रतीत है कि अनेक राज्य सरकारों द्वारा मद्य निषेध की व्यवस्था का अन्त तक सार्वजनिक क्षेत्र में 'मद्य विक्रय गृहों' (Wine Shops) की स्थापना की गयी है। ऐसी स्थिति में **डॉ. जैनिंग्ज** के ये शब्द बहुत कुछ सीमा तक उचित प्रतीत होते हैं कि–'आने वाली सदी में ये तत्त्व निस्संदेह निरर्थक हो जाएँगे'।

5. संवैधानिक द्वन्द्व के कारण (Basis of Constitutional Crisis): संवैधानिक विधि वेत्ताओं ने यह आशंका व्यक्त की कि ये तत्त्व भारतीय शासन में संवैधानिक द्वन्द्व और गतिरोध के कारण भी बन सकते हैं। संविधान सभा में **श्री संथानम्** ने यह आशंका व्यक्त की थी कि इन निर्देशक-तत्त्वों के कारण राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री अथवा राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं? प्रश्न यह है कि अगर प्रधानमंत्री इन सिद्धांतों का उल्लंघन करता है तो स्थिति क्या होगी? एक पक्ष का कहना है कि राष्ट्रपति इस आधार पर किसी भी विधेयक पर निशेषाधिकार का प्रयोग कर सकता है कि वह शासन के मूलभूत सिद्धांत निर्देशक-तत्त्वों के विरुद्ध है। भारतीय संविधान के प्रसिद्ध लेखक **श्री दुर्गादास बसु** के द्वारा भी उपर्युक्त विचार व्यक्त किया गया है। इसी प्रकार की घटनाएँ राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच तीव्र मतभेद को जन्म देंगी और इससे संसदात्मक प्रजातन्त्र को गम्भीर आघात पहुँच सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion): उपर्युक्त अध्ययन से सुस्पष्ट विदित होता है कि आधुनिक युग में भारत में निर्देशक सिद्धांतों का विशेष महत्व है। न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश **के. सुब्बा राव** (K. Subba Rao) का कहना है, "संविधान के चौथे भाग में राजनीति के निर्देशक-तत्त्वों का वर्णन किया गया है। यह ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना चाहता है, जिसमें न्याय सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक राष्ट्रीय जीवन की समस्त संस्थाओं का आधार होगा। यह एक ऐसे कृषक समाज की स्थापना का निर्देश देता है, जिससे धन का केन्द्रीयकरण न रहेगा, जहाँ प्रचुरता रहेगी, जहाँ शिक्षा पाने, काम करने तथा जीवन-निर्वाह करने का सभी को समान अवसर प्राप्त होगा और जहाँ पर सामाजिक न्याय प्राप्त होगा।"

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

5. निम्न में से किसने नीति-निर्देशक सिद्धांतों को 'नव वर्ष के प्रथम दिन पास किए गए शुभकामना का प्रस्ताव' कहा है?

   (*a*) प्रो. के.टी. शाह (*b*) प्रो. व्हीलर

   (*c*) सर.बी.एन. राव (*d*) श्री नासिरुद्दीन

6. यह कथन किसका है–'नीति-निर्देशक सिद्धांत एक ऐसा चैक है जिसका भुगतान बैंक की इच्छा पर छोड़ दिया गया है'–

(*a*) प्रो. के.टी. शाह (*b*) श्री एन.आर. राघावाचारी

(*c*) प्रो. व्हीलर (*d*) श्री नासिरुद्दीन

7. निम्न से किसने यह आशंका व्यक्त की थी कि निर्देशक-तत्त्वों के कारण राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री अथवा राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं?

(*a*) के. सुब्बा राव (*b*) श्री संपानम्

(*c*) प्रो. निवासन (*d*) प्रो. व्हीलर

4.5 राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्व की उपयोगिता (Usefulness of Directive Principles of State Policy)

नीति-निर्देशक तत्त्वों की आलोचना की गई है उसका तात्पर्य नहीं लिया जाना चाहिए कि वे बिल्कुल व्यर्थ और महत्त्वहीन हैं। वास्तव में, संवैधानिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से नीति-निर्देशक तत्त्वों का बहुत अधिक महत्त्व है। न्यायमूर्ति **हेगड़े** के अनुसार, "यदि हमारे संविधान के कोई भाग ऐसे हैं जिन पर सावधानी और गहराई से विचार करने की आवश्यकता है तो वे हैं भाग तीन और चार।" उनमें संविधान का दर्शन निहित है और एक लेखक के शब्दों में; "वे हमारे संविधान की अन्तरात्मा है।" **डॉ. पायली** के अनुसार, "इन निर्देशक तत्त्वों का महत्त्व इस बात में है ये नागरिकों के प्रति राज्य के सकारात्मक दायित्व है।" इन तत्त्वों के महत्त्व का अध्ययन निम्नलिखित रूपों से किया जा सकता है–

1. असंगत तथा असामयिक होने के तर्क गलत (Directive Principles are neither Inconsistent nor out of date): नीति-निर्देशक तत्त्वों के सम्बन्ध में **प्रो. जैनिग्ज** और **श्रीनिवास** जैसे व्यक्तियों की यह आलोचना नितान्त अनुचित है कि ये तत्त्व असंगत तथा असामयिक है। वास्तव में, ये विचार केवल विदेशी नहीं है वरन् इस अध्याय के अनेक उपबंध पूर्णरूप में भारतीय है। यद्यपि 21वीं सदी में ये सिद्धांत पुराने पड़ जाएँगे और व्यावहारिक हो जाएँगे लेकिन कम से कम 20वीं सदी के भारत में ये सिद्धांत उपयोगी तथा व्यावहारिक प्रतीत होते हैं। पुनः **प्रो. एम.वी. पायली** के शब्दों में, "यदि कभी ये सिद्धांत पुराने पड़ जाएँगे तो इनका आवश्यकतानुसार संशोधन किया जा सकता है; क्योंकि संशोधन प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। जब तक इनके संशोधन करने का समय आएगा, तब तक भारत इनका पूरा लाभ उठा चुका होगा और भारत भूमि में आर्थिक लोकतंत्र की जड़ें गहरी हो चुकी होंगी। संविधान का निर्माण वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए होता है। यदि हम वर्तमान का निर्माण सुदृढ़ नींव पर करें तो भविष्य की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

2. निर्देशक तत्त्वों के पीछे जनमत की शक्ति (Power of Public Opinion behind the Principles): यद्यपि इन निर्देशक तत्त्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लेकिन इसके पीछे जनमत की सत्ता होती है, जो प्रजातंत्र का सबसे बड़ा न्यायालय है। अतः जनता के प्रति उत्तरदायी कोई भी सरकार इनकी अवहेलना का साहस नहीं कर सकती। शासन द्वारा किया गया इनका बार-बार उल्लंघन देश में शक्तिशाली विरोध को जन्म देगा। व्यवस्थापिका के भीतर शासन को विरोधी दल के प्रहारों का सामना करना पड़ेगा और व्यवस्थापिका के बाहर इसे निर्वाचन के समय निर्वाचकों को जवाब देना होगा। निर्देशक तत्त्वों के पीछे जनमत देना होगा। **प्रो. पायली** के अनुसार, "ये निर्देशक तत्त्व राष्ट्रीय चेतना के आधारभूत स्तर का निर्माण करते हैं और जिनके द्वारा इन तत्त्वों का उल्लंघन किया जाता है, वे ऐसा कार्य उत्तरदायित्व की स्थिति से अलग होने की जोखिम पर ही करते हैं।" आलोचक **राघवाचारी** भी स्वीकार करते हैं कि, "जो शासन सत्ता पर आधिपत्य बना ले, उसे इस अनुदेश-पत्र का आदर करना ही होगा। आगामी आम चुनाव में उसे इस सम्बन्ध में निर्वाचकों को जवाब देना ही पड़ता है।" ऐसी स्थिति में **श्री अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर** ने संविधान सभा में ठीक ही कहा था कि "कोई भी लोकप्रिय मंत्रिमंडल संविधान के चतुर्थ भाग के उपबंधों के उल्लंघन का साहस नहीं कर सकता।"

3. चरम सीमाओं से रक्षा (An Insurance against Extremes): हमारे संविधान निर्माता इस तथ्य से पूर्णतया परिचित थे कि प्रजातांत्रिक राज्य में परिवर्तनशील जनमत के परिणामस्वरूप विभिन्न समयों में विभिन्न राजनीतिक दल सत्तारूढ़ हो सकते हैं। कभी दक्षिणपंथी दल शासन सत्ता पर अधिकार कर सकता है और कभी कोई वामपंथी दल। निर्देशक तत्त्व दोनों प्रकार की सरकारों को मर्यादित रखेंगे तथा उन्हें किसी प्रकार का एक तरफ झुकाव रखने से रोकेंगे। **श्री अमरनन्दी** के अनुसार, "संविधान के निर्देशक तत्त्व इस बात का आश्वासन देते हैं कि अनुदार दल अपनी नीति के निर्धारण में इन तत्त्वों की पूर्ण अवहेलना नहीं कर सकेगा और एक उग्रगामी दल अपने दल के आर्थिक या अन्य कार्यक्रम को पूरा करने के लिए संविधान का अन्त करना आवश्यक नहीं समझेगा। इस प्रकार निर्देशक तत्त्व वाम और दक्षिण पंथ की चरम सीमाओं से सुरक्षा प्रदान करते हैं।"

4. नैतिक आदर्शों के रूप में महत्त्व (Importance as Moral Ideals): यदि निर्देशक तत्त्वों को केवल नैतिक धारणाएँ ही मान लिया जाए तो इस रूप में भी उनका अपार महत्त्व है। ब्रिटेन में मैग्नाकार्टा, फ्रांस में मानवीय तथा नागरिक अधिकारों की घोषणा तथा अमरीकी संविधान की प्रस्तावना को कोई कानूनी अनुशक्ति प्राप्त नहीं, फिर भी इन देशों के इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार उचित रूप से यह आशा की जा सकती है कि ये निर्देशक तत्त्व भारतीय शासन को नीति को निर्देशित और प्रभावित करेंगे। **ऐलेन ग्लेडहिल** के शब्दों में, "अनगिनत व्यक्तियों के जीवन नैतिक आदर्शों के फलस्वरूप सुधरे हैं और ऐसे उदाहरण भी मिलने कठिन नहीं हैं जबकि उच्च नैतिक आदर्शों का राष्ट्रों के इतिहास पर प्रभाव पड़ता है।"

5. संविधान की व्याख्या में सहायक (Helpful in the Interpretation of the Constitution): संविधान के अनुसार निर्देशक तत्त्व देश के शासन में मूलभूत हैं जिसका तात्पर्य यह है कि देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी सभी सत्ताएँ उनके द्वारा निर्देशित होंगी। न्यायपालिका भी शासन का एक महत्त्वपूर्ण अंग होने के कारण यह आशा की जा सकती है कि भारत में न्यायालय संविधान की व्याख्या के कार्य में निर्देशक तत्त्वों को उचित महत्त्व देंगे। **प्रो. ऐलेक्जेण्डरोविच** का मत है कि "चूँकि निर्देशक सिद्धांतों में संविधान सभा की आर्थिक और सामाजिक नीति बोल रही है और क्योंकि उसमें हमारे संविधान निर्माताओं की इच्छा की अभिव्यक्ति है, इसलिए हमारे न्यायालयों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे मौलिक अधिकारों संबंधी उपबंधों की व्याख्या करते समय राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों पर पूरा-पूरा ध्यान दें।" भारतीय न्यायालयों ने कई बार मौलिक अधिकार संबंधी विवादों में निर्णय देते समय निर्देशक सिद्धांतों से मार्गदर्शन लिया है। 'बम्बई राज्य बनाम एफ.एम. बालसराय' वाले विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 47 के आधार पर निर्णय दिया कि शासन ने मादक द्रव्य निषेध अधिनियम पास करके उचित प्रतिबंध ही लगाया था। पुनः उच्चतम न्यायालय ने **'बिहार राज्य बनाम कामेश्वरसिंह'** वाले विवाद में अनुच्छेद 39 के प्रकाश में यह निर्णय दिया था कि जमींदारों के अन्त का उद्देश्य वास्तविक जनहित ही था। इसी प्रकार **'विजय वस्त्र उद्योग बनाम अजमेर राज्य'** के विवाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 43 के प्रकाश में **'न्यूनतम पारिश्रमिक अधिनियम'** को उचित ठहराया। **श्री एम.सी. सीतलवाड़** के शब्दों में **'राज्य नीति के इन मूलभूत सिद्धांतों को वैधानिक प्रभाव प्राप्त न होते हुए भी इनके द्वारा न्यायालयों के लिए उपयोगी प्रकाश स्तम्भ का कार्य किया जाता है'**।

6. शासन के मूल्यांकन का आधार (Basis of the Evaluation of Government): नीति-निर्देशक तत्त्वों द्वारा जनता को शासन की सफलता व असफलता की जाँच करने का मापदण्ड भी प्रदान किया जाता है। शासक दल के द्वारा अपने मतदाताओं को निर्देशक सिद्धांतों के संदर्भ में अपनी सफलताएँ बतानी होंगी तथा शासक शक्ति पर अधिकार करने के इच्छुक राजनीतिक दल को इन तत्त्वों की क्रियान्विति के प्रति अपनी तत्परता और उत्साह दिखाना होगा। इस प्रकार निर्देशक तत्त्व जनता को विभिन्न दलों की तुलनात्मक जाँच करने योग्य बना देंगे।

7. कार्यपालिका प्रधान इनका दुरुपयोग नहीं कर सकते हैं (Executive Head cannot Exploit Provisions): निर्देशक तत्त्व के पक्ष में अन्तिम बात यही कही जा सकती है कि यद्यपि विधान के सदस्यों तथा कुछ संविधान-वेत्ताओं ने यह भय प्रकट किया है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल इस आधार पर किसी विधेयक पर अपनी सम्मति देने से इंकार कर सकते हैं कि वह निर्देशक तत्त्वों के प्रतिकूल है, लेकिन व्यवहार में

ऐसा घटना की सम्भावना कम है, क्योंकि संसदात्मक शासन प्रणाली में नाममात्र का कार्यपालिका प्रधान लोकप्रिय प्रधान लोकप्रिय मंत्रिपरिषद् द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने का दुस्साहस नहीं कर सकता है। **डॉ. अम्बेडकर** के शब्दों में, "विधायिका द्वारा पारित विधि को अस्वीकृत करने के लिए राष्ट्रपति या राज्यपाल निर्देशक तत्त्वों का प्रयोग नहीं कर सकते।"

वास्तव में, निर्देशक तत्त्व भारतीय राजनीति के सर्वोच्च सिद्धांत हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश **श्री केनिया** ने 'गोपालन बनाम मद्रास राज्य' के विवाद पर निर्णय देते हुए कहा था, "क्योंकि राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्व संविधान में शामिल हैं, इसलिए वे बहुमत दल के अस्थायी आदेश मात्र ही नहीं हैं, वरन् उनमें राष्ट्र की बुद्धिमत्तापूर्ण स्वीकृति बोल रही है जो संविधान सभा के माध्यम से व्यक्त हुई थी।"

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताइए–

8. 'राज्य नीति के मूलभूत सिद्धांतों को वैधानिक प्रभाव प्राप्त न होते हुए भी इनके द्वारा न्यायालयों के लिए उपयोगी प्रकाश स्तम्भ का कार्य किया जाता है।' यह कथन श्री एम.सी. सीतलवाड़ का है।
9. निर्देशक तत्त्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित किया जा सकता है।

टास्क राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों की उपयोगिता बताएँ।

4.6 निर्देशक तत्त्वों का क्रियान्वयन और उपलब्धियाँ (Implementation and Achievements with Regard to Directive Principles)

नीति-निर्देशक तत्त्वों के क्रियान्वयन की समस्या पुलिस राज्य को कल्याणकारी राज्य और संविधान द्वारा स्थापित राजनीतिक लोकतंत्र को आर्थिक लोकतंत्र में परिवर्तन करने की समस्या है। यह कार्य इतना बड़ा है कि इसे तुरन्त सम्पन्न नहीं किया जा सकता। इसे पूरा करने के लिए दीर्घकालीन प्रयत्न, प्रचुर धन और तीव्र गति से आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास आवश्यक है।

परन्तु राज्य ने यह कार्य प्रारंभ कर दिया है और इस दिशा में कई महत्त्वपूर्ण बातें की गयी हैं–

1. पाँच पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर कृषि और उद्योगों की उन्नति, शिक्षा और स्वस्थ्य की सुविधाओं का प्रसार, नौकरी व कार्य के साधनों में वृद्धि, राष्ट्रीय आय व लोगों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयत्न किए गए हैं।
2. युवक वर्ग व बालकों को शोषण से रक्षा करने के लिए अनेक कानून पास किए गए हैं, बीमारी और दुर्घटना के विरुद्ध सुरक्षा के लिए कुछ सीमा तक मजदूर वर्ग में बीमा योजना लागू की गयी है व बेरोजगारी बीमा योजना को लागू करने और रोजगार की सुविधाएँ बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। राज्य सामाजिक कल्याण की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है।
3. हिन्दू बिल के कई अंशों जैसे हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955; हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956; आदि का पारित करके देश के सभी वर्गों के लिए समान विधि संहिता प्राप्त करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं।
4. अस्पृश्यता निवारण के लिए और अनुसूचित तथा पिछड़ी हुई जातियों के बालकों को उदारपूर्वक छात्रवृत्ति और अन्य सुविधायों द्वारा शिक्षित करने का कार्य भी हुआ है।

5. यद्यपि अब भी निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा और सबके लिए पर्याप्त स्वास्थ्य सेवा का प्रबंध अधूरा ही है, तथापि इन दिशाओं में भी महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है। अन्तिम स्थान में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीयकरण और सामुदायिक विकास योजनाओं द्वारा ग्राम पंचायतों को अधिक सशक्त बनाने का प्रयास किया जा चुका है। गरीबों को 'मुफ्त कानूनी सहायता' प्रदान करने के लिए न्यायमूर्ति **पी.एन. भगवती** की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। कई प्रांतों में वृद्ध तथा असहाय लोगों के लिए वृद्धावस्था पेंशन (Old Age Pension) की व्यवस्था की गई है। यह गौरव हरियाणा को भी प्राप्त है।

हाल ही के वर्षों में निर्देशक तत्त्वों के क्रियान्वियन की दिशा में कुछ और कदम भी उठाये गये हैं। बंधुआ मजदूरी की समाप्ति और स्त्री-पुरुष को समान वेतन दिलाने का अध्यादेश जारी किया गया जिसे बाद में संसद के द्वारा पुष्टि प्रदान कर दी गयी। राज्य सरकारों के द्वारा ग्रामीण जनता और समाज के अन्य कमजोर वर्गों का ऋण माफ करने के लिए आवश्यक कानूनों का निर्माण किया गया है। अभी 1976 में संसद के द्वारा 'शहरी भूमि सीमाकरण कानून' पारित किया गया है, जिसके अनुसार 4 श्रेणी के शहरों में शहरी भूमि की सीमा 500 वर्ग मीटर से 2000 वर्ग मीटर निश्चित कर दी गयी है। आशा की जानी चाहिए कि आगे चल कर इस कानून को अन्य शहरी क्षेत्रों में भी लागू किया जाएगा। वास्तव में गरीबों की खुशहाली के कार्यक्रम में एक नयी जान डाली गयी है। जिन लोगों के पास जमीन नहीं, उन्हें घर बनाने के लिए जमीन दिलाने, भूमि सुधार लागू करने और खेतीबाड़ी पर काम करने वालों की मजदूरी बढ़ाने के काम तेजी से आगे बढ़ाए जा रहे हैं।

नीति-निर्देशक तत्त्वों में निहित लक्ष्य को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है, परन्तु राज्य इस सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व को भूला नहीं है और आशा की जा सकती है और आगे आने वाले वर्षों में इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए और अधिक तेजी से प्रयत्न किए जाएँगे।

निष्कर्ष (Conclusion): उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान में लिखित निर्देशक सिद्धांत अर्थहीन तथा महत्त्वहीन नहीं। उनकी संवैधानिक व्यवस्था में काफी अधिक महत्ता है। इन सिद्धांतों को व्यवहार में लाने पर ही हमारे लोकतंत्र का भविष्य निर्भर है। **डॉ. ए.सी. कपूर** के कथनानुसार, "निर्देशक सिद्धांत लोकतंत्र को स्थायित्व देने वाले सिद्धांत हैं"।

अतः निश्चय ही निर्देशक सिद्धांतों का संविधान में अत्यन्त महत्त्व है। 25वें संशोधन के पश्चात् तो इनका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है। आज इन सिद्धांतों को भारतीय राज्य की समाजवादी नीति का आधार कहा जा सकता है। इन सिद्धांतों को व्यवहार में अपनाने पर ही भारत में आदर्श लोकतंत्र की स्थापना तथा सफलता निर्भर है। **श्री छागला** (Chagla) के इस कथन में पर्याप्त सत्यता है, "अगर इन निर्देशक सिद्धांतों को अच्छी प्रकार व्यावहारिक रूप दिया जाए तो हमारा देश पृथ्वी पर स्वर्ग बन जाएगा।" सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में यह विचार व्यक्त किए थे–"Being a part of the constitutional scheme, the Directive Principles do not represent a temporary will of a majority but the deliberate wisdom of the nation expressed through the constituent assembly entrusted with the duty of setting the paramount and permanent law of the country."

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

निम्न कथनों में सत्य/असत्य बताइए–

10. 25वें संविधान संशोधन के पश्चात् नीति-निर्देशक तत्त्वों का महत्त्व कम हुआ है।
11. 'निर्देशक सिद्धांत लोकतंत्र को स्थायित्व देने वाले सिद्धांत हैं।' कथन डॉ. एन.सी. कपूर का है।

4.7 निर्देशक सिद्धांत और मौलिक अधिकारों में अन्तर (Difference between Directive Principles and Fundamental Rights)

भारतीय संविधान के तीसरे अध्याय में धारा 12 से 35 तथ्य छः प्रकार के मौलिक अधिकारों की घोषणा की गई है, जिनका प्रयोग करके नागरिक अपने जीवन का पूर्ण विकास कर सकते हैं जबकि संविधान के चौथे भाग में धारा 35 से 51 में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों की घोषणा की गई है, जिनका उद्देश्य भारतीय नागरिकों का आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक विकास तथा भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। दोनों के ही उद्देश्य समान प्रतीत होते हैं। लेकिन दोनों में अन्तर है। हम दोनों को समान प्रकृति वाले नहीं कह सकते।

निर्देशक सिद्धांतों और मौलिक अधिकारों में निम्नलिखित आधार पर भेद किया जा सकता है–

1. निर्देशक सिद्धांत सकारात्मक निर्देश हैं जबकि मौलिक अधिकार नकारात्मक निषेध आज्ञाएँ हैं: दोनों में प्रथम अन्तर यह है कि राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत राज्य को दिए गए निश्चित आदेश हैं जोकि हमें यह बतलाते हैं कि राज्य में पंचायत प्रणाली का गठन किया जाएं, बेकारी को दूर करने की योजनाएँ बनाई जाएँ, गौहत्या को रोका जाए, न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग किया जाए आदि। इसके विपरीत मौलिक अधिकारों द्वारा राज्य को अधिकतर नकारात्मक आदेश दिए गए हैं। दूसरे शब्दों में, राज्य शक्ति पर प्रतिबंध लगाए गए हैं। उदाहरण स्वरूप, राज्य किसी व्यक्ति की सम्पत्ति पर राशि दिए बिना अधिकार नहीं करेगा; राज्य धर्म, रंग, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।

श्री ग्लैडहिल (Gledhill) के शब्दों में–"मौलिक अधिकार राज्य के लिए कुछ निषेध आज्ञाएँ हैं। **इनके** द्वारा राज्य को कुछ निश्चित कार्य न करने को कहा गया है, निर्देशक सिद्धांत सरकार को दिए गए सकारात्मक निर्देश हैं जो कि बतलाते हैं कि सरकार ने क्या किया है।" ("Fundamental Rights are injunctions to prohibit the government from doing certain things, the Directive Principles are affirmative instructions to the government to do certain things.")

2. मौलिक अधिकार न्यायसंगत हैं, निर्देशक सिद्धांत नहीं: संविधान में यह स्पष्ट किया गया है कि मौलिक अधिकार न्यायसंगत नहीं हैं। इन्हें न्यायपालिका द्वारा सुरक्षित करवाया जा सकता है। न्यायपालिका नागरिकों के मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए कार्यपालिका को कोई आदेश जारी कर सकती है। संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Rights the Constitutional Remedies) नागरिकों का मौलिक अधिकार है। इसके विपरीत निर्देशक सिद्धांत न्यायसंगत नहीं। संविधान की धारा 37 में यह स्पष्ट कहा गया है कि निर्देशक सिद्धांत न्यायपालिका द्वारा लागू नहीं करवाये जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में निर्देशक सिद्धांत केवल मात्र निर्देश हैं, कानूनी आदेश नहीं। निर्देशक सिद्धांतों का न्यायसंगत न होना तथा मौलिक अधिकारों का न्यायपालिका द्वारा सुरक्षित होना ही दोनों में एक बड़ा भेद है। (Fundamental Rights are commendatory while the Directive Principles are declaratory)

3. मौलिक अधिकारों का उद्देश्य राजनैतिक स्वतंत्रता है तो निर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य आर्थिक स्वतंत्रता: जहाँ मौलिक अधिकारों द्वारा राजनैतिक लोकतंत्र की व्यवस्था की गई है वहीं निर्देशक सिद्धांतों द्वारा आर्थिक तथा सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना की गई है। (Whereas Political Democracy has been established by the incorporation of Fundamental Rights, Economic and Social Democracy has been hoped to be established by the incorporation of Directive Principles) सफल लोकतंत्रीय व्यवस्था के लिए यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है कि राजनैतिक लोकतंत्र आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र पर आधारित हो। भारत में इसे अपनाने के लिए संविधान के दो भागों (III and IV) में क्रमशः राजनैतिक तथा आर्थिक लोकतंत्र की व्यवस्था की गई है।

4. दोनों एक दूसरे के पूरक हैं: भाग III में वह अधिकार लिखे गये हैं जिनको राजनैतिक अधिकार कहा जा सकता है तथा भाग IV में लिखे सिद्धांत आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार कहे जा सकते हैं। राजनैतिक अधिकार मनुष्य के व्यक्तित्त्व के विकास में तभी पूर्ण योग दे सकते हैं जबकि वे उचित सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों

में उपभोग किए जाएँ। राजनैतिक लोकतंत्र का आधार सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र हो तो तभी सामाजिक विकास एवं कल्याण के कार्य को उचित रूप में पूर्ण किया जा सकता है। उचित सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के लिए समाज में सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों का अस्तित्त्व आवश्यक है। अतः मौलिक अधिकार (राजनैतिक अधिकार) तथा निर्देशक सिद्धान्त (आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार) दोनों इकट्ठे समाज का विकास सम्भव बना सकते हैं। अतः दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

5. मौलिक अधिकार प्राप्त किये जा चुके हैं परन्तु निर्देशक सिद्धान्तों को प्राप्त करना अभी बाकी है: मौलिक अधिकार लोगों को प्राप्त हो चुके हैं जबकि निर्देशक सिद्धान्त अभी तक लोगों को प्राप्त नहीं हुए। सरकार इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास कर रही है।

6. मौलिक अधिकारों का सम्बन्ध व्यक्तियों से हैं, निर्देशक सिद्धान्तों का राज्य से है: मौलिक अधिकारों का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तिगत का विकास करना तथा उसके जीवन को सुखी व सभ्य बनाना है। वे ऐसी परिस्थितियों की स्थापना करते हैं जिसमें व्यक्ति अपने में निहित गुणों का उचित रूप से विकास कर सके। इसके विपरीत, राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त समाज के विकास पर बल देते हैं। निर्देशक सिद्धान्तों के अध्याय में धारा 38 में यह स्पष्ट रूप से कहा है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करेगा जिसमें सभी को सामाजिक व आर्थिक न्याय मिल सके।

7. निर्देशक सिद्धांतों का महत्त्व मौलिक अधिकारों से अधिक है: मौलिक अधिकार सामाजिक जीवन की कुछ व्यवस्थाएँ हैं जो मनुष्य की खुशी के लिए अनिवार्य हैं। लेकिन इनका सम्बन्ध केवल एक मनुष्य से ही है जबकि इसके विपरीत, निर्देशक सिद्धांतों में उन लक्ष्यों का उल्लेख है जिनको मद्देनजर रखते हुए आर्थिक, सामाजिक तथा राजकीय न्याय के आधार पर एक शुद्ध कल्याणकारी राज्य स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया है। भले ही ये सिद्धांत न्यायालयों द्वारा लागू नहीं किए गए जा सकते, तो भी इनका महत्त्व हमारे विचार में मौलिक अधिकारों से अधिक है। ये सिद्धांत संसदीय लोकतंत्र के साथ-साथ आर्थिक लोकतंत्र का आदर्श दर्शाते हैं। इसलिए निर्देशक सिद्धांत **डॉ. ए.सी. कपूर** (Dr. A.C. Kapoor) के शब्दों में-"ये लोक राज्य को स्थिरता देने वाले सिद्धान्त हैं।" ("They provide an element of permanency in democracy") जहाँ मौलिक अधिकारों को कानूनी बल प्राप्त हैं वहां निर्देशक सिद्धांतों को नैतिक शक्ति प्राप्त है। **पायली** ने ठीक ही कहा है कि "राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों में मार्ग में कोई भी अवरोध सहन नहीं किया जाना चाहिए, चाहे वह एक व्यक्ति के मूल अधिकार ही क्यों न हो समूचे समाज के कल्याण तथा प्रगति के मार्ग में एक व्यक्ति के अधिकार अवरोध नहीं बनने चाहिए।"

8. दोनों के बीच यदि अवरोध हो तो किसे महत्त्व मिलेगा: 25वें और 42वें संशोधन से पहले मौलिक अधिकारों को निर्देशक सिद्धांतों से अधिक महत्त्व दिया जाता था। यदि दोनों के बीच अवरोध होता तो मौलिक अधिकारों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। एक मुकदमे में निर्णय देते समय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था, "राज्य को चाहिए कि वह निर्देशक सिद्धांतों के उचित पालन के लिए कानून बनाए, लेकिन उसके द्वारा बनाये गये कानूनों से मौलिक अधिकारों को हानि नहीं पहुँचनी चाहिए।"

27 फरवरी, 1967 को गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि संसद ने संविधान में 42वें संशोधन पारित किया जिसमें यह व्यवस्था की गई कि संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है, जिसमें नागरिकों के मौलिक अधिकार भी सम्मिलित होंगे। 25वें संशोधन द्वारा एक नई धारा 29-B और 39-C में दिए गए निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए बनाएगी, वह कानून सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस आधार पर रद्द नहीं किया जाएगा कि वह कानून धारा 14, 19 व 31 में दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। 24 अप्रैल, 1973 को केशवानंद भारती केस में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसा निर्णय दिया जिसमें गोलकनाथ निर्णय को रद्द कर दिया गया तथा संविधान के 24वें संशोधन की वैधता को स्वीकार कर लिया कि संसद संविधान के किसी भी भाग में भी संशोधन कर सकती है जिसमें मौलिक अधिकार भी सम्मिलित होंगे लेकिन संसद संविधान के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकती है। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के 25वें संशोधन की वैधता को भी स्वीकार कर लिया, लेकिन 25वें संशोधन के 31-C के इस भाग को अवैध घोषित कर

दिया गया जिसके अनुसार संविधान के 39-B और 39-C में दिए गए निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के उद्देश्य के पास किए कानूनों को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है कि वे धारा 14, 19 व 31 में दिए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

नवम्बर 1976 में हमारी संसद ने 42वें संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की थी कि संविधान के चौथे भाग में दिए गए सभी या किसी भी निर्देशक सिद्धांत को लागू करने के लिए बनाया गया कोई भी कानून इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है। परन्तु 19 मई, 1980 को अपने महत्त्वपूर्ण निर्णय मिनर्वा मिल्स तथा अन्य बनाम भारत सरकार में 42वें संशोधन की धारा (4) को रद्द कर दिया गया।

निष्कर्ष (Conclusion): राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों का आलोचनात्मक अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि इसके महत्व को देखते हुए संविधान में उनको सम्मिलित करना गलत नहीं है। **एम.सी. सीतलवाड़** के शब्दों में, "ये सिद्धांत प्रज्जवलित ज्योति के रूप में राज्य के सभी अधिकारों के राष्ट्र-निर्माण के प्रयासों का मार्गदर्शन करेंगे जिससे राष्ट्र धीरे-धीरे समृद्धशाली तथा शक्तिशाली बन सके और विश्व के अन्य राष्ट्रों में अपना योग्य स्थान प्राप्त कर सके।"

इसी प्रकार हम मुख्य **न्यायाधीश चन्द्रचूड़** के शब्दों में कह सकते हैं, "हमारे संविधान का उद्देश्य मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों में समन्वय स्थापित करना है, इनमें कोई एक नहीं अपितु दोनों संयुक्त रूप में संविधान का दिल एवं आत्मा हैं।" ("Our constitution aims at bringing about a synthesis between Fundamental Rights and the Directive Principles of State Policy. Together not individually, they form the core of the Constitution together not individually. They constitute, its true conscience.")

अन्त में **K.C. Makandan** ने उचित ही कहा है, "If a chapter of Fundamental Rights is a must for a state of the modern democratic type with a written constitution, chapter on the Directive Principles of state policy is a must for a welfare state with written constitution."

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

12. नीति-निर्देशक सिद्धांतों की घोषणा संविधान के चौथे भाग की किस धारा में किया गया है?
    - (*a*) धारा 35-51
    - (*b*) धारा 35-77
    - (*c*) धारा 35-36
    - (*d*) धारा 51-57
13. मौलिक अभिकार प्राप्त किये जा चुके हैं, जबकि निर्देशक सिद्धांत...
    - (*a*) प्राप्त किये जा चुके हैं
    - (*b*) प्राप्त करना अभी बाकी है
    - (*c*) न (*a*) न (*b*)
    - (*d*) उपरोक्त में कोई नहीं।

4.8 सारांश (Summary)

- इन नीति-निर्देशक तत्त्वों का उल्लेख संविधान के चतुर्थ भाग में किया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत संविधान निर्माताओं ने एक दिशा की ओर संकेत किया है जिसका अनुसरण केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा कानून निर्माण और प्रशासन के संबंध में किया जाना चाहिए।
- राज्य-नीति के निर्देशक तत्त्व भारतीय संविधान की एक नई विशेषता है। इन सिद्धांतों में उन आदेशों की सूची समाविष्ट है जिनके अनुसार वर्तमान तथा भविष्य की सरकारें कार्य करेंगी भले ही वे किसी राजनीतिक दल से संबंधित हो।
- निर्देशक सिद्धांत एक विशेष प्रकार की सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं। अनुच्छेद 38 के अनुसार, "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करके जिसमें राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय उपलब्ध हों, लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयत्न करेगा।"

- 42वें संशोधन द्वारा संविधान में नया अनुच्छेद 43.। जोड़ा गया है जिसके द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि राज्य उचित कानून या किसी अन्य विधि से इस उद्देश्य के लिए प्रयत्न करेगा कि किसी भी उद्योग से सम्बन्धित कारोबार के प्रबंध में अथवा अन्य संस्थाओं में श्रमिकों को भाग लेने का अवसर प्रदान हो।
- संविधान ने राज्य के नीति के निर्देशक तत्त्वों को एक ओर तो देश के शासन में मूलभूत माना है किन्तु साथ ही वे वैधानिक शक्ति या प्राप्त न्याय योग्य नहीं है अर्थात् न्यायालय उपर्युक्त सिद्धांत को क्रियान्वित नहीं कर सकते हैं।
- यद्यपि इन निर्देशक तत्त्वों को न्यायालय द्वारा क्रियान्वित नहीं किया जा सकता, लेकिन इसके पीछे जनमत की सत्ता होती है, जो प्रजातंत्र का सबसे बड़ा न्यायालय है।
- नीति-निर्देशक तत्त्वों में निहित लक्ष्य को पूरा करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है, परन्तु राज्य इस सम्बन्ध में अपने उत्तरदायित्व को भूला नहीं है और आशा की जा सकती है और आगे आने वाले वर्षों में इस उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए और अधिक तेजी से प्रयत्न किए जाएँगे।
- मौलिक अधिकार लोगों को प्राप्त हो चुके हैं जबकि निर्देशक सिद्धान्त अभी तक लोगों को प्राप्त नहीं हुए। सरकार इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास कर रही है।

4.9 शब्दकोश (Keywords)

- अस्पृश्यता (Untouchability): छुआछूत, अछूतापन।
- विकेन्द्रीयकरण (Decentralisation): केन्द्र से हटाना।

4.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारतीय संविधान में दिए गए राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।
2. निर्देशक सिद्धांतों का महत्त्व बताते हुए निर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण कीजिए।
3. राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
4. मौलिक अधिकारों और निर्देशक सिद्धांतों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. राज्य-नीति निर्देशक सिद्धांतों की उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

1. 1937	2. अनुच्छेद 36 से 51	3. 42
4. 40	5. (*d*)	6. (*a*)
7. (*b*)	8. सत्य	9. असत्य
10. असत्य	11. सत्य	12. (*a*)
13. (*b*)		

4.11 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. *इंडियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स* – सुभाष कश्यप।
2. *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था* – एन. छाबरा, अभिनव प्रकाशन, रोहतक (हरियाणा)।

इकाई–3

नोट

पाठ 5: भारतीय संविधान का निर्माण एवं संशोधन प्रक्रिया (Making of Indian Constitution and Amendment Process)

संरचना (Structure)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 भारतीय संविधान का निर्माण (Making of the Indian Constitution)

5.2 भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया (Process of Amending Indian Constitution)

5.3 संशोधन शक्ति की सीमाएँ (Limitation on Amendment Powers)

5.4 संशोधन प्रक्रिया के दोष (Defects of Amendment Procedure)

5.5 कुछ संवैधानिक संशोधनों के विषय में सर्वसम्मति (Some Constitutional Amendments to the Support of All)

5.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- भारतीय संविधान के निर्माण की जरूरत को समझने में।
- भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया को समझने में।
- भारतीय संविधान प्रक्रिया के दोष को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

भारत का संवैधानिक विकास वास्तव में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से प्रारंभ होता है। बंगाल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना को ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों ने किया था। ईस्ट इंडिया कंपनी का उद्देश्य भारत और अन्य पूर्वी देशों के व्यापार से लाभ उठाना था, पर भारत की राजनीतिक दुर्दशा का लाभ उठाकर कम्पनी के कर्मचारियों ने राजकीय मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारत की एकता छिन्न-भिन्न हो गई और इसका लाभ कम्पनी ने पूर्ण रूप से उठाया। अंग्रेजों ने भारत में 1947 ई. तक राज किया

और उनके शासन काल में समय-समय पर भारतीय शासन-व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किये गए। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ और उसके बाद भारतीय गणतंत्र के संविधान (Constitution) का निर्माण हुआ जो 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ।

नोट

5.1 भारतीय संविधान का निर्माण (Making of the Indian Constitution)

भारत सदियों से परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ था। एक लंबे अर्से के संघर्ष एवं कुर्बानी के बाद 15 अगस्त, 1947 ई. को भारत स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता के बाद भारतीय नेताओं के लिए स्वतंत्रता अपने आप में एक साध्य नहीं थी, वह तो साध्य के लिए एक साधन मात्र थी। वास्तव में, साध्य तो था न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व के आधार पर प्रजातांत्रिक व्यवस्था को लागू करना। विश्व के राजनीतिक परिवेश में एक प्रभुत्व संपन्न राष्ट्र के रूप में स्थापित करना। इसके लिए एक ऐसे संविधान का निर्माण करना जो भारत में लोककल्याणकारी राज्य की व्यवस्था को स्थापित कर सके। आजादी के बाद संविधान निर्माण का अर्थ संविधान सभा को सौंपा गया। इसके बारे में **सुभाष कश्यप** लिखते हैं कि *"संविधान सभा के कुल 12 अधिवेशन हुए जिसमें 167 दिन लगे। इसमें से 114 दिन प्रारूप संविधान के विचार में लग गए। प्रारूप समिति (Drafting Committee) का 29 अगस्त, 1947 को निर्वाचन हुआ और 1 दिन उसकी बैठकें हुईं। संवैधानिक परामर्शदात्री समिति ने जो प्रारूप संविधान तैयार किया था उसमें 243 अनुच्छेद तथा 13 अनुसूचियाँ थीं। प्रारूप समिति ने संविधान सभा के सम्मुख जो पहला प्रारूप संविधान प्रस्तुत किया उसमें 315 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचियाँ थीं। जब प्रारूप संविधान पर धारावार विचार समाप्त हुआ, तब उसमें 386 अनुच्छेद थे। अपने अंतिम रूप में संविधान में 395 अनुच्छेद तथा 8 अनुसूचियाँ थीं। प्रारूप संविधान में संशोधन के 7635 प्रस्ताव सदन पटल पर रखे गए थे। इनमें से सदन में कुल 2473 संशोधन प्रस्तुत किए गए।"* **डॉ. अंबेडकर** ने 25 नवंबर, 1949 को कहा कि *"संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया की संविधान सभाओं को अपने संविधानों की रचना में जितना समय लगा था, उसे देखते हुए भारतीय संविधान सभा ने बहुत शीघ्र संविधान बना लिया था अत: उसे बधाई दी जा सकती है।"* संविधान सभा के तीन वर्ष में उस पर जो व्यय हुआ वह अधिक न था। 22 नवंबर, 1949 तक उस पर 63,96,729 रु. व्यय किए गए। जनता ने संविधान सभा की कार्यवाही में सक्रिय रुचि ली और दर्शक दीर्घा में 53,000 दर्शकों को प्रवेश मिला था।

साधारणतया संविधान सभा उस सभा को कहते हैं जो किसी देश के संविधान का निर्माण करती है। यह किसी देश के संविधान के निर्माण के लिए वहाँ के नागरिकों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि सभा है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भारतीयों द्वारा देश के लिए संविधान निर्माण करने हेतु संविधान सभा के गठन की माँग की जाती रही है। 1922 ई. में **महात्मा गाँधी** तथा होमरूल आंदोलन के अग्रणी नेता **श्रीमती एनी बेसेंट** ने माँग की कि, *"भारत के संविधान का निर्माण भारतीयों द्वारा ही होना चाहिए।"* इस प्रकार कैबिनेट मिशन के अनुसार संविधान सभा का चुनाव जुलाई–अगस्त, 1946 में ब्रिटिश भारत के 296 सदस्यों के लिए संपन्न हुए। इस प्रकार **इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज** में संविधान सभा की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है, *"यह एक ऐसी प्रतिनिध्यात्मक संस्था होती है जिसे नवीन संविधान पर विचार करने और अपनाने या विद्यमान संविधान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए चुना जाए।"* **पंडित जवाहर लाल नेहरू** के शब्दों में *"यह एक चलायमान राष्ट्र है जो अपनी पुरानी पोशाक को उतार कर स्वनिर्मित नवीन पोशाक धारण करता है।"*

26 जनवरी 1930 को कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में भारत की पूर्व स्वतंत्रता विषयक सुविख्यात ऐतिहासिक प्रस्ताव पास किया था और उसी समय से प्रतिवर्ष इस तिथि को संपूर्ण भारत में सभाएँ और स्वतंत्रता संबंधी प्रस्ताव दोहराए जाते हैं। दिसंबर, 1946 को डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में संविधान सभा की पहली बैठक हुई। बाद में चलकर 11 दिसंबर, 1946 को डॉ. राजेंद्र प्रसाद को सभा का स्थाई सदस्य बनाया गया। सभा ने डॉ. भीमराव अंबेडकर की अध्यक्षता में एक प्रारूप समिति का गठन किया गया। फरवरी 1948 ई. में इस समिति ने संविधान का प्रारूप प्रकाशित किया। नवंबर, 1948 में संविधान सभा की पुन: बैठक हुई। जिसमें इस प्रारूप पर विचार किया गया। यह 17 अक्टूबर, 1949 तक चला। इस पर अंतिम रूप से विचार करने के लिए 14 नवंबर, 1949 को सभा की फिर बैठक हुई। 26 नवंबर, 1949 को इस संविधान पर संविधान सभा के अध्यक्ष ने हस्ताक्षर कर दिए। इस प्रकार भारतीय संविधान को पारित होने में 2 वर्ष 11 महीने 18 दिन लगे। संविधान की कुछ धाराओं को 26 नवंबर, 1949 को ही लागू कर दिया गया किंतु पूरा संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया।

नोट

अंबेडकर के शब्दों में, *"यह संविधान पूर्णतः व्यवहार जन्य है ... यदि नवीन संविधान में कुछ त्रुटियाँ हों तो उनका कारण यह नहीं होगा कि हमारा संविधान खराब है, बल्कि हमें यह कहना पड़ेगा कि मानव स्वभाव बुरा है।"* इस प्रकार 26 जनवरी, 1950 को भारतवर्ष संप्रभुता संपन्न गणतंत्र घोषित हुआ। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद भारतवर्ष के प्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

इस प्रकार संविधान सभा ने भारतीय गणतंत्र के लिए 'उत्कृष्ट संविधान' के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद एवं प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर के अविस्मरणीय योगदान ने भारतीय संविधान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। भारतीय संविधान में ब्रिटेन की तरह संसदीय लोकतंत्र, संघात्मक और एकात्मक व्यवस्था का सम्मिश्रण, मौलिक अधिकार और नीति-निर्देशक तत्त्व, धर्म निरपेक्षता, सामाजिक, सामाजिक न्याय तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति जैसी अवधारणाओं को अपनाकर एक 'गणतंत्रीय संविधान के रूप में अपनी महत्ता को विश्व के सामने प्रस्तुत किया है।

नवीन संविधान के आधार पर 1952 में भारत में प्रथम बार केंद्र और राज्यों के लिए आम चुनाव हुआ। जिसके आधार पर नए संसद और विधानमंडल का गठन किया गया।

भारत एक विशाल देश है। अनेकता में एकता इसकी विशेषता है। यहाँ का संविधान विश्व का सर्वाधिक विशाल संविधान है। इसके अंतर्गत भारत की सभी राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्थाओं का लिखित उपबंध है। मूल संविधान में जो व्यवस्थाएँ दी गई हैं, वे यदि समय की बदलती परिस्थितियों के अनुसार नहीं बदलीं तो देश का विकास अवरुद्ध हो जाएगा। जब संविधान का निर्माण हुआ था उस समय देश की आबादी 40 करोड़ थी किंतु आज देश की आबादी एक अरब 36 करोड़ हो गई है। अतः यदि समय की माँग के अनुसार व्यवस्थाएँ परिवर्तित न की जाएँ तो संवैधानिक उपबंधों का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा। भारतीय संविधान के भाग 20 के अनुच्छेद 368 में संविधान संशोधन से संबंधित प्रक्रिया का विस्तृत उपबंध है। जैसा कि **विल्सन** ने कहा है कि *"संविधान को निश्चत रूप से जीवन प्रेरक होना चाहिए। इसके तत्त्व हैं राष्ट्र के विचार और स्वभाव। अतः राष्ट्रीय जीवन में परिवर्तन के साथ उसका विकास आवश्यक है।"* गार्नर के अनुसार, *"कोई भी लिखित संविधान संशोधन के विधि की उपबंधों के बिना पूर्ण नहीं है।"*

भारतीय संविधान की एक विशेषता यह है कि इसके लगभग प्रत्येक उपबंध में संशोधन किया जा सकता है। भारतीय संविधान में संसदीय प्रभुसत्ता को इंग्लैंड के अलिखित संविधान का आधार है तथा मूलभूत विधि के सिद्धांत का जो अमेरिका के लिखित संविधान का आधार है, अपूर्व समन्वय मिलता है। इस संबंध में **श्री नेहरू** ने कहा था–*"वैसे हम इस संविधान को यथासंभव ठोस तथा स्थाई बनाना चाहते हैं जबकि संविधानों में स्थायित्व होना कठिन है, इसमें लचीलापन भी आवश्यक है। यदि आप किसी वस्तु को कठोर तथा स्थाई बना देते हैं तो उससे राष्ट्र की एक जीवित, सशक्त तथा प्राणवान् जनता का विश्वास रौंद देते हैं...। इस संविधान को ऐसा नहीं बना सकते थे जिसे परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुसार ढाला न जा सके। जब संसार में उथल-पुथल हो रही है तथा हम अतिशीघ्र परिवर्तनशील जमाने में रह रहे हैं, हो सकता है, हम आज जो कुछ कर सकें शायद वह कल न कर सकें"*[1]

5.2 भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया (Process of Amending Indian Constitution)

भारतीय संविधान के विरुद्ध अनुच्छेदों की विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा संशोधित करने के उपबंध हैं। हम इन प्रक्रियाओं को निम्नांकित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

1. सामान्य विधि द्वारा संशोधनों की प्रक्रिया,
2. संसद के विशिष्ट बहुमत द्वारा संशोधन की विशिष्ट प्रक्रिया,
3. राज्यों के विधानमंडल की स्वीकृति से संशोधन की प्रक्रिया।

हम तीनों पर पृथक्-पृथक् विचार करेंगे।

1. While we want this constitution to be as solid and permanent as we can make it, there is no permanence in constitution.

1. सामान्य विधि द्वारा संशोधनों की प्रक्रिया—संशोधन की यह प्रक्रिया अत्यधिक सरल एवं सुगम है। सिद्धांततः इसकी प्रक्रिया वही है जो इंग्लैंड के संविधान में अपनाई जाती है। इसमें उसी प्रकार संशोधन होते रहते हैं जिस प्रकार साधारण विधि में। इसके अनुसार संसद या तो अपनी प्रेरणा के अनुसार, या राज्य के विधानमंडलों की माँग पर या अन्य शासनाधिकारियों की माँग पर सामान्य विधि के द्वारा संविधान में संशोधन ला देती है। संविधान में संशोधन, कहने का तात्पर्य यहाँ पर संविधान की धाराओं से है। भारतीय संविधान में इस प्रकार संशोधन विधेयक संसद के साधारण बहुमत से पास किया जाता है। इसके लिए किसी विशिष्ट प्रकार की संशोधन प्रक्रिया अपनाने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि यदि कोई संशोधन विधेयक संसद के साधारण बहुमत से ही पारित हो जाए तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति पा ले, तो संशोधन का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि इस प्रकार का संशोधन संवैधानिक संशोधन नहीं होता, फिर भी व्यवहार में इसे संविधान का ही संशोधन माना जाता है। इंग्लैंड में यही प्रक्रिया अपनाई जाती है। भारतवर्ष के संविधान में इस प्रकार का संशोधन नए राज्यों में पुनर्संगठन, राज्यों में उच्च सदन की सृष्टि, केंद्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों का निर्माण और अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित आदिम जातियों के क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में किया जाता है। इस प्रकार के कई संशोधन भारतीय संविधान में हो चुके हैं। भारत में पहले क, ख, ग वर्ग के राज्य थे परंतु इसी संशोधन-प्रणाली के द्वारा सन् 1956 में इनकी संख्या 14 कर दी गई। बंबई के स्थान पर गुजरात एवं महाराष्ट्र दो नए राज्य हो गए। अतः इस प्रकार का संशोधन अत्यंत ही सरल है। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि यह संवैधानिक संशोधन नहीं, यद्यपि व्यावहारिक रूप में इन्हें संविधान का ही संशोधन समझा जाता है। सन् 2000 में सांवैधानिक संशोधन के माध्यम से ही छत्तीसगढ़, उत्तरांचल एवं झारखंड जैसे तीन नए राज्यों का गठन हुआ। अब भारत में राज्यों की संख्या 28 हो गई है।

2. संसद के विशिष्ट बहुमत द्वारा संशोधन की विशिष्ट प्रक्रिया—जिस तरह संविधान में संशोधन की प्रथम प्रक्रिया सरल एवं सुगम है, उसी प्रकार संशोधन की द्वितीय प्रक्रिया अत्यंत जटिल है। इसके अनुसार संविधान के अधिकांश अनुच्छेदों में संशोधन विशिष्ट प्रक्रिया तथा संसद के प्रत्येक सदन के विशिष्ट बहुमत द्वारा ही किया जा सकता है। अर्थात् संविधान के ऐसे संशोधन का विधेयक संसद के किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है। यदि यह विधेयक उस सदन की कुल सदस्य-संख्या के बहुमत और उपस्थित तथा मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पारित हो जाए, तो दूसरे सदन में भेज दिया जाएगा। यदि दूसरे सदन में भी उसी प्रक्रिया तथा बहुमत से पारित हो जाए, तो वह संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।

इसे एक उदाहरण द्वारा और भी स्पष्ट किया जा सकता है। मान लें, संसद के एक सदन में 500 सदस्य हैं तथा 450 सदस्य ही उपस्थित हैं। ऐसी परिस्थिति में इस प्रकार के संशोधन के लिए सदन के सदस्यों का बहुमत और उपस्थित सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत आवश्यक है। अर्थात् 450 का दो-तिहाई 300 तथा 500 का 251। अतः इस प्रकार के संशोधन-विधेयक को पास होने के लिए 251 से अधिक सदस्यों का मत चाहिए। साथ-ही-साथ 300 मत भी चाहिए क्योंकि उपस्थित सदस्य 450 हैं, जिनका दो-तिहाई 300 है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि यदि 450 व्यक्तियों में 300 व्यक्ति इस प्रकार के विधेयक को पास कर दें तो संशोधन-विधेयक पास समझा जाएगा क्योंकि इसी 300 में कम-से-कम 251 भी निहित हैं। इसी प्रकार दूसरे सदन में भी होता है। इस प्रकार के विधेयक को पहले किसी सदन में उपस्थित किया जा सकता है, क्योंकि यह धन-विधेयक नहीं है। संविधान का अधिकांश भाग इसी रीति के द्वारा संशोधित होता है।

3. राज्यों के विधानमंडल की स्वीकृति से संशोधन की प्रक्रिया—यह प्रक्रिया अत्यंत जटिल है जो अमेरिका के संविधान में संशोधन की प्रक्रिया से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इस वर्ग के अंतर्गत वे अनुच्छेद हैं जिनमें संशोधन के लिए विधेयक संसद के किसी भी सदन में पेश किया जाता है। लेकिन धन-विधेयक को पहले निम्न सदन में ही उपस्थित किया जाता है। ऐसा विधेयक संसद के दोनों सदनों की कुल सदस्य-संख्या के बहुमत एवं उपस्थित मतदाताओं के दो-तिहाई बहुमत से पारित हो जाए तो वह राज्य के विधान-मंडलों के पास भेज दिया जाएगा। यदि कुल राज्यों के कम-से-कम आधे की भी स्वीकृति मिल जाए तो उसे राष्ट्रपति के सम्मुख स्वीकृति के लिए भेज दिया जाएगा और स्वीकृति पाते ही संशोधन हो जाएगा। अतः इस प्रक्रिया को तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है।

(1) संसद-सदस्यों का बहुमत हो तथा उपस्थित मतदाताओं का दो-तिहाई भाग समर्थन करे।

(2) इसके बाद उसे राज्य के विधान-मंडलों के पास स्वीकृति के लिए भेज दिया जाएगा। इस व्यवस्था में स्वीकृति के लिए कम-से-कम आधे राज्यों के विधान-मंडलों के द्वारा भी उक्त संशोधन विधेयक का पारित होना आवश्यक है।

नोट

(3) उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति भी पानी होती है। इस वर्ग के अंतर्गत निम्नलिखित विषयों से संबंधित धाराएँ हैं–

(क) राष्ट्रपति के निर्वाचन से संबंधित धाराएँ,

(ख) संघीय कार्यपालिका की शक्ति-संबंधी धाराएँ,

(ग) राज्य की कार्यपालिका संबंधी धाराएँ,

(घ) सर्वोच्च न्यायालय से संबंधित धाराएँ,

(ङ) उच्च न्यायालयों से संबंधित धाराएँ,

(च) संघ तथा राज्यों के बीच अधिकार विभाजन-संबंधी धाराएँ,

(छ) संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व संबंधी धाराएँ,

(ज) संशोधन संबंधी धाराएँ।

इस प्रकार इस वर्ग के अंतर्गत वे अनुच्छेद रखे गए हैं, जो संविधान के संघीय स्वरूप से अधिक संबंधित हैं और यही कारण है कि इन धाराओं में संशोधन करने के लिए अधिक जटिल प्रक्रिया निर्धारित की गई है। यदि संशोधन के विषय में संसद के दोनों सदनों में मतभेद हो, तो उच्चतम न्यायालय के निर्णयानुसार दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन द्वारा उस मतभेद को दूर किया जाएगा। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि क्या राष्ट्रपति संसद द्वारा पारित संशोधन विधेयक को अस्वीकृत कर सकता है? इसके संबंध में संविधान में कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है। अमेरिका में संशोधन विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष रखा नहीं जाता। अतः उसकी अस्वीकृति या स्वीकृति का प्रश्न ही नहीं उठता। भारतीय संविधान यद्यपि इस संबंध में अस्पष्ट है, तथापि आलोचकों का विचार है कि संसद द्वारा पारित संशोधन विधेयक पर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति देगा ही।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि भारतीय संविधान में तीन प्रकार की संशोधन प्रक्रियाएँ क्यों रखी गई हैं तथा तीसरी प्रक्रिया को इतना जटिल क्यों रखा गया है।

भारतीय संविधान के निर्माता जानते थे कि हर अनुच्छेद को अनाम्य बनाना अच्छा नहीं होगा। दूसरे, कुछ ऐसे भी विषय थे जिन्हें नाम्य बनाना भी उचित न था। अत: यही सोचकर जो धाराएँ जैसी; या जिन धाराओं को जैसी भी आवश्यकता थी उन्हें वैसा ही बनाने का प्रयास किया गया। उदाहरण के लिए, कुछ विषयों को नाम्य बनाना अच्छा माना गया तथा कुछ विषयों को अत्यधिक जटिल एवं अनाम्य बनाना ही अच्छा माना गया। ऐसी परिस्थिति में संशोधन की एक ही प्रक्रिया नहीं अपनाई जा सकती थी। फलत: संविधान-संशोधन की तीन प्रक्रियाएँ हो गईं। इसमें तीसरी प्रणाली अत्यधिक जटिल है। इसके अंतर्गत वे ही अनुच्छेद रखे गए हैं जिनका संबंध संविधान के संघीय रूप से अधिक है। चूँकि संविधान का संघीय रूप नष्ट न किया जा सके, इसलिए संघीय रूप से संबंधित सभी धाराओं को एक अत्यंत ही कड़े प्रहरी के अंतर्गत रखा गया है।

उपर्युक्त तीनों प्रक्रियाओं से पता चलता है कि भारतीय संविधान में संशोधन करने की जो प्रक्रियाएँ बरती गई हैं उनसे स्पष्ट है कि भारतीय संविधान अंशतः अनाम्य और अंशतः नाम्य है और संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया एकात्मक तथा संघात्मक संविधानों की संशोधन प्रक्रियाओं का मिश्रण है। कुछ धाराएँ एकात्मक संविधान की तरह सामान्य विधि द्वारा संशोधित हो सकती हैं, तो कुछ अन्य धाराएँ संघात्मक संविधान की तरह संघ तथा इकाइयों की व्यवस्थापिका की सहमति से संशोधित हो सकती हैं।

यदि हम भारतीय संविधान की संशोधन-प्रणाली की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो पता चलता है कि भारतीय संविधान की संशोधन प्रणाली न तो अधिक सरल ही है जैसा कि इंग्लैंड में पाई जाती है। वास्तव में भारतीय संविधान की संशोधन प्रणाली दोनों विदेशी प्रणालियों की कड़ी है। इंग्लैंड के संविधान में संशोधन के लिए कोई विशिष्ट प्रणाली नहीं अपनाई जाती। वहाँ पर संवैधानिक विधि एवं साधारण विधि में कोई अंतर नहीं होता। इसलिए किसी भी प्रकार की विशिष्ट प्रक्रिया इंग्लैंड के लिए नहीं अपनाई जाती। इससे कुछ कठोर रूप में संविधान का संशोधन होता है, फिर भी यह सरल ही है। वहाँ पर किसी भी संशोधन के लिए दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती

नोट

है। परंतु संघीय विषयों से संबंधित संशोधन की यह प्रणाली भारत से भी सरल है, क्योंकि भारत में संघीय विषयों का संशोधन राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति से भी होता है। स्विट्जरलैंड में संवैधानिक संशोधन के लिए कैंटन सरकारों की अनुमति आवश्यक है, परंतु अमेरिका की तरह तीन-चौथाई बहुमत की आवश्यकता नहीं। भारत में संशोधन विभिन्न तीन प्रक्रियाओं के द्वारा होता है। यहाँ पर एक ही प्रक्रिया अपनाना अच्छा नहीं समझा गया। संविधान के कुछ भाग को भारतीय संसद अकेले ही संशोधित कर सकती है, कुछ को साधारण बहुमत से एवं कुछ को विशिष्ट बहुमत से तथा कुछ भाग को राज्यों की स्वीकृति से करती है। भारत में कम-से-कम आधे राज्यों की स्वीकृति आवश्यक है, परंतु इसके स्थान पर संयुक्त राज्य अमेरिका में तीन-चौथाई राज्यों या तीन-चौथाई राज्यों के सम्मेलन के द्वारा स्वीकृत होना परमावश्यक है। भारत में संशोधन-विधेयक के पारित होने पर राष्ट्रपति के सम्मुख स्वीकृति के लिए भेजा जाना आवश्यक है परंतु अमेरिका में स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के सम्मुख रखा ही नहीं जाता। फिर भी, संयुक्त राज्य अमेरिका की संशोधन प्रणाली अपेक्षाकृत अधिक जटिल है। यह संविधान 230 वर्ष पहले अस्तित्व में आया है। तब से लेकर आज तक इसमें केवल 27 संशोधन किए गए हैं जबकि भारतीय संविधान को बने हुए अभी लगभग 70 वर्ष हुए हैं इसमें जनवरी 2020 तक 104 संवैधानिक संशोधन हो चुके हैं।

5.3 संशोधन शक्ति पर सीमाएँ (Limitation on Amendment Power)

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि संशोधन प्राधिकारी को किस सीमा तक संशोधन की शक्ति प्राप्त है। क्या संशोधन शक्ति पर कुछ बंधन है या संशोधन प्राधिकारी संपूर्ण संविधान को ही बदल सकता है? सिद्धांततः किसी भी राष्ट्र को अपने संविधान में किसी भी प्रकार का परिवर्तन लाने का अधिकार होना चाहिए। खासकर एक संघात्मक राज्य में जहाँ संविधान निर्मात्री प्राधिकारी (Constituent authority) में राज्य की सर्वोच्च शक्ति निहित होती है, संविधान को बिना किसी बंधन के परिवर्तन करने का अधिकार रहना चाहिए।

इस दृष्टिकोण के आधुनिक संविधानों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे संविधान आते हैं जिनमें संशोधन प्राधिकारी की शक्ति सीमित रहती है। संविधान के कुछ मौलिक उपबंधों में वह किसी प्रकार का संशोधन नहीं ला सकता है। उदाहरणार्थ, इटली के संविधान में यह लिख दिया गया है कि उसके गणतांत्रिक स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है; फ्रांस के चतुर्थ गणतंत्र में प्रस्तावना के राजनीतिक सिद्धांतों तथा संशोधन प्रक्रिया को, संवैधानिक शक्ति को संशोधन शक्ति की पहुँच के बाहर रखा गया था; तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में यह प्रतिबंध लगाया गया है कि सीनेट में राज्यों के समान प्रतिनिधित्व में राज्यों की स्वीकृति के बिना किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं लाया जाएगा। दूसरे वर्ग में वे संविधान आते हैं, जिनमें संशोधन शक्ति पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। मैक्सिको, ऑस्ट्रिया, जापान तथा स्विट्जरलैंड के संविधानों को पूर्णतया संशोधित किया जा सकता है। इस प्रकार की पूर्ण संशोधन शक्ति प्रायः जनता को दे दी जाती है, जो अंतिम रूप से संप्रभु है। भारतीय संविधान भी इसी श्रेणी में आता है। अनुच्छेद 368 में किसी प्रकार के बंधन की चर्चा नहीं की गई है। **सरदार डॉ. के. सेन** के विचार में तो *"भारतीय संविधान में उल्लिखित संशोधन शक्ति संविधान सभा की शक्ति के समान विस्तृत तथा व्यापक है।"* अर्थात् संशोधन के द्वारा भारतीय संविधान में किसी प्रकार का भी परिवर्तन लाया जा सकता है।

5.4 संशोधन प्रक्रिया के दोष (Defects of Amendment Procedure)

भारतीय संविधान की संशोधन प्रक्रिया की आलोचना का मुख्य कारण यह है कि कई बातों को संदिग्धावस्था में छोड़ दिया गया है। मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं–

संयुक्त अधिवेशन–अगर किसी संशोधन के विषय में संसद के दोनों सदनों में मतभेद हो जाए तो इस गतिरोध को कैसे दूर किया जाएगा? इस गूढ़ प्रश्न पर संविधान मौन है। परंतु 'शंकरी प्रसाद बनाम भारतीय संघ' (1951) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि संविधान अनुच्छेद 368 में संवैधानिक संशोधन को पूर्ण संहिता निश्चित नहीं करता तथा संविधान को संशोधित करने की जो प्रक्रिया निर्धारित की गई है, वह विधायिका प्रक्रिया है और उस पर उसी प्रक्रिया के नियम लागू होते हैं। अतः किसी संशोधन विधेयक के संबंध

में संसद के दोनों सदनों से मतभेद होने पर साधारण विधेयक की भाँति उसको संयुक्त अधिवेशन द्वारा पारित किया जा सकता है।

नोट

राष्ट्रपति के अधिकार–संविधान यह स्पष्ट नहीं बतलाता है कि किसी भी संशोधन विधेयक पर राष्ट्रपति हस्ताक्षर करने से इंकार कर सकता है या नहीं, भारत में संशोधन विधेयकों को राष्ट्रपति के समक्ष उसकी स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करने की व्यवस्था है जबकि अमेरिका में विधेयकों को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत ही नहीं किया जाता है। इस संबंध में **दुर्गादास बसु** का विचार है कि *"आयरलैंड के राष्ट्रपति की भाँति भारत के राष्ट्रपति को भी यह अधिकार है कि अगर अनुच्छेद 368 में वर्णित प्रक्रिया का अनुकरण न किया गया हो तो राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति देने से इंकार कर सकता है।"*

अनिश्चित अवधि–संविधान यह निर्धारित नहीं करता है कि कितने समय के अंदर राज्य विधानमंडल को संशोधन विधेयक को अनुसमर्थित करना चाहिए या अनुसमर्थित करने से इंकार कर देना चाहिए। राज्य विधानमंडल देरी की नीति को अपनाकर विधेयक को सदा के लिए समाप्त कर सकते हैं।

राज्यों की स्थिति–राज्यों को संविधान के संशोधन में भाग लेने का अवसर बहुत कम दिया गया है। यह संघीय सिद्धांत की उपेक्षा है। संशोधन को प्रारंभ करने का अधिकार केवल संसद को ही प्राप्त है। राज्यों को संवैधानिक संशोधन के प्रस्ताव को लाने का अधिकार नहीं दिया गया है। केवल अनुच्छेद 169 में राज्य की विधान सभा, विधान परिषद् के निर्माण या समाप्ति का प्रस्ताव ला सकती है। इसके अतिरिक्त केवल कुछ ही उपबंधों के संबंध में राज्य विधानमंडलों की स्वीकृति की आवश्यकता है।

नागरिकों की स्थिति–सिर्फ राज्यों को ही नहीं, बल्कि नागरिकों को भी संशोधन की प्रक्रिया में भाग लेने से वंचित किया गया है। स्विट्जरलैंड के संविधान की भाँति लोकप्रिय आरंभण (Popular initiative) की व्यवस्था भारतीय संविधान में नहीं है।

संशोधन विधेयक का स्वरूप–संशोधन प्रक्रिया के विरुद्ध एक गंभीर आरोप है कि हर संवैधानिक संशोधन को हर प्रकार से साधारण विधेयकों के स्तर पर ला दिया गया है। संशोधन विधेयक को एक बिल (Bill) के रूप में पेश किया जाता है, संसद के किसी भी सदन में इसे प्रस्तुत किया जा सकता है; इसे पारित करने की प्रक्रिया साधारण विधेयक की प्रक्रिया के समान है; तथा अंत में इस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर की आवश्यकता पड़ती है। अमेरिका में संशोधन बिल के रूप में नहीं, बल्कि कांग्रेस के प्रस्ताव (Resolutions) के रूप में रहते हैं तथा राष्ट्रपति की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं रहती। ऑस्ट्रेलिया के संविधान में भी भारत की तरह संशोधन विधेयक का रूप साधारण विधेयक की भाँति है। इस संबंध में ऑस्ट्रेलिया की नकल करते समय हमारे संविधान-निर्माता यह भूल गए कि ऑस्ट्रेलिया का संविधान विधायिका सभा का एक विधेयक है, जबकि भारतीय संविधान एक संप्रभु संविधान सभा (Constituent Assembly) की कृति है।

जटिल उपबंध–आलोचकों का यह भी कहना है कि उपबंध जटिल है। जबकि संविधान सभा सिर्फ साधारण बहुमत से संविधान का निर्माण कर सकती थी तब संसद पर दो-तिहाई बहुमत का बंधन क्यों थोपा गया? कम-से-कम, कुछ वर्षों तक संसद को साधारण बहुमत से संविधान में संशोधन लाने का अधिकार मिलना चाहिए था। आलोचकों को इस बात का भय है कि संसद तथा राज्य विधानमंडलों में भविष्य के बहुदलीय प्रथा की जड़ जमा लेने पर संशोधन लाना अत्यधिक कठिन हो जाएगा। फलतः, संविधान अनाम्य हो जाएगा।

संशोधन प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन–भारतीय संविधान में संशोधन के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के बाद अंत में यही कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान में संशोधन की जो प्रक्रिया है उसकी अपनी विशेषताएँ है जो इसे संयुक्त राज्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ और स्विट्जरलैंड से अलग रखती हैं। भारत की तुलना में अमेरिका के संविधान में संशोधन की प्रक्रिया जटिल है। अमेरिका के संविधान के अनुच्छेद 5 में संविधान में औपचारिक संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है कि "कांग्रेस जब कभी अपने दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत से आवश्यक समझे, संविधान में संशोधन प्रस्तुत कर सकेगी या दो-तिहाई राज्यों के विधानमंडलों की प्रार्थना पर संशोधन के लिए एक सम्मेलन आमंत्रित करेगी।" उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में प्रस्तुत संशोधन यदि तीन-चौथाई राज्यों के विधानमंडलों या तीन-चौथाई राज्यों के सम्मेलन द्वारा, दोनों में से जिस किसी ढंग को कांग्रेस स्वीकार करे, संपुष्ट कर दिया जाएगा तो वह इस संविधान का वैध अंग बन जाएगा। परंतु, किसी राज्य को उसकी सहमति के बिना सीनेट में मताधिकार की समानता से वंचित नहीं किया जा सकेगा। स्पष्ट है कि अमेरिका के संविधान में संशोधन आसानी से नहीं हो सकता है। यही कारण है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के

नोट

संविधान को लागू हुए 230 वर्ष (4 मार्च 2020 तक) हो चुके हैं और 2019 तक (अंतिम 1992 में) सिर्फ उसमें 27 संशोधन ही हो सके हैं। दूसरी ओर ग्रेट ब्रिटेन में बहुत ही सरल प्रक्रिया अपनाई गई है। ग्रेट ब्रिटेन में साधारण विधेयक की तरह संशोधन विधेयक भी पारित किया जाता है। परंतु फ्रांस और स्विट्ज़रलैंड में भारत की तुलना में संशोधन की कुछ कठिन प्रक्रिया अपनाई गई है। स्विट्ज़रलैंड में संशोधन प्रस्तावों पर कैंटनों की जनता का अनुसमर्थन आवश्यक माना गया है। फ्रांस के पंचम गणतंत्र मे संशोधन के लिए दो तरीके अपनाए जाते हैं। पहले तरीके के अनुसार संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने पर संशोधन विधेयक को जनमत संग्रह के लिए प्रसारित कर दिया जाता है। दूसरे तरीके के अनुसार यदि राष्ट्रपति के विचार में जनमत संग्रह की आवश्यकता नहीं है तो संशोधन विधेयक को संसद के संयुक्त अधिवेशन में भेजा जाता है और तीन-चौथाई बहुमत से पारित हो जाने के बाद संविधान में संशोधन हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया सभी देशों से भिन्न है।

यहाँ 2005 में निजी शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण से संबंधित संशोधन पारित हो चुके हैं। समय और परिस्थिति के बदलते परिवेश में संविधान का संशोधन तो आवश्यक है किंतु संविधान के मूल स्वरूप में परिवर्तन नहीं लाना चाहिए, इस संबंध में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय भी यही है कि उसके मौलिक स्वरूप में परिवर्तन का अधिकार संसद को नहीं है।

5.5 कुछ संवैधानिक संशोधनों के विषय में सर्वसम्मति (Some Constitutional Amendment to the Support of All)

भारतीय संविधान के संवैधानिक संशोधन में कुछ ऐसे भी संशोधन हुए हैं जिनका समर्थन विरोधी दलों ने भी किया है। क्योंकि उनका संबंध जन आकांक्षाओं एवं लोक-कल्याणकारी राज्य के लिए आवश्यक था। उदाहरण के लिए संविधान के **52वें संशोधन अधिनियम** 1985 में प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के समय में किया था। इस संशोधन में यह प्रावधान किया गया कि संसद अथवा विधायक, जो अपनी पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में चले जाते हैं, उन्हें सदन की सदस्यता के अयोग्य माना जाएगा। संविधान के **61वें संशोधन** 1989 द्वारा मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष की गई। इसका भी समर्थन सभी राजनीतिक दलों ने एक मत से किया। संविधान के **73वें और 74वें संवैधानिक संशोधन** में पंचायतों और नगरपालिकाओं को संविधान का हिस्सा बनाया गया। स्थानीय स्वशासन अब गाँधी जी के सपनों को साकार करने में प्रकाश स्तंभ का कार्य कर रही है। संविधान के **86वें संवैधानिक संशोधन** 2002 में शिक्षा के अधिकार का वर्णन है। संविधान के **91वें संशोधन अधिनियम** 2003 में इस बात का उल्लेख किया गया है कि लोकसभा या विधानसभा के सदस्यों की कुल संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक मंत्रियों के पदों की संख्या नहीं होनी चाहिए। संविधान के **93वें संशोधन** 2005 में उच्च शिक्षण संस्थाओं में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए स्थान का आरक्षण किया गया है। किंतु इस अधिनियम में अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों में इस अधिनियम को शामिल नहीं किया गया है।

संविधान के संशोधन अधिनियम में प्रत्येक ग्रामीण और शहरी बेरोजगार परिवार के एक आदमी को साल में 100 दिन काम देने की योजना की शुरुआत की गई है। इस अधिनियम को भी सभी राजनीतिक दलों ने सर्वसम्मति से पास किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक समाजवादी जनतंत्र एवं लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना के सिलसिले में जब भी संविधान का संशोधन हुआ है उसका स्वागत सभी राजनीतिक दल के लोगों ने स्वेच्छा से किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. संविधान संशोधन से संबद्ध भारतीय संविधान का अनुच्छेद है--
   (क) 226 (ख) 368
   (ग) 136 (घ) 336.
2. भारतीय संविधान के 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया है–
   (क) धर्मनिरपेक्ष (ख) समाजवादी धर्मनिरपेक्ष
   (ग) समाजवादी (घ) गणराज्य।

नोट

3. किस संविधानिक संशोधन के द्वारा दल-बदल पर रोक लगाई गई है?
   (क) 45वाँ संशोधन (ख) 50वाँ संशोधन
   (ग) 52वाँ संशोधन (घ) 51वाँ संशोधन।
4. राष्ट्रपति संविधान के किस संविधानिक संशोधन के द्वारा मंत्रिपरिषद् की सलाह को मानने के लिए बाध्य है?
   (क) 44वाँ संशोधन (ख) 42वाँ संशोधन
   (ग) 25वाँ संशोधन (घ) 52वाँ संशोधन।
5. भारतीय संविधान में संविधान संशोधन की निम्नांकित विशिष्ट विधि है
   (क) संसद के दोनों सदनों का साधारण बहुमत से संशोधन।
   (ख) संसद के दोनों सदनों की कुल संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत और अंत में उक्त विधेयक को कम से कम आधे राज्यों के अनुसमर्थन से।
   (ग) संसद के दोनों सदनों के दो तिहाई बहुमत से संशोधन।
   (घ) केवल लोकसभा के बहुमत से संशोधन।
6. भारतीय संविधान के किस संशोधन द्वारा नौवीं अनुसूची शामिल की गयी? *[1997]*
   (क) 17 (ख) 6
   (ग) 4 (घ) 1.

5.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में संशोधन प्रक्रिया का वर्णन है?
2. संविधानिक संशोधन से आप क्या समझते हैं?
3. संविधानिक संशोधनों की आवश्यकता पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. भारत में संशोधन की प्रमुख विशेषताएँ कौन-सी हैं?
5. भारत में संशोधन प्रक्रिया के प्रमुख दोष कौन-से हैं?
6. भारतीय संविधान के संशोधन की क्या प्रक्रिया है?
7. भारतीय संविधान की संशोधन प्रक्रिया की तुलना विश्व के अन्य राष्ट्रों के संविधानों की संशोधन प्रक्रिया से कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

1. (ख) 2. (ख) 3. (ख) 4. (ख) 5. (ग) 6. (घ)।

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था* – एन. छाबरा।
2. *भारतीय राजनीतिक प्रणाली* – यू.आर.आई।

नोट

इकाई–4

पाठ 6: संघ-राज्य संबंध–वैधानिक, प्रशासकीय और वित्तीय राजनीति (Centre-States Relations–Legislative, Administrative and Financial Politics)

संरचना (Structure)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 संघ और राज्यों में वैधानिक संबंध (Legislative Relations between the Union and States)

6.1.1 संघ सूची-97 विषय (Union List–97 Subjects)

6.1.2 राज्य सूची-66 विषय (State List–66 Subjects)

6.1.3 समवर्ती सूची-47 विषय (Concurrent List–47 Subjects)

6.1.4 अवशेष शक्तियाँ (Residuary Powers)

6.2 संघ और राज्यों में प्रशासकीय संबंध (Administrative Relations between the Union and the States)

6.3 संघ और राज्यों में वित्तीय संबंध (Financial Relations between the Union and the States)

6.4 भारतीय संघीय प्रणाली के तनाव क्षेत्र (Tension Areas of Indian Federal System)

6.5 संघ-राज्य संबंधों की पुनर्रचना के लिए प्रस्ताव (Proposal for Centre-State Reformation)

6.6 सरकारिया आयोग (1983-88) की सिफारिशें [The Recommendations of Sarkaria Commission (1983-88)]

6.7 सारांश (Summary)

6.8 शब्दकोश (Keywords)

6.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

6.10 सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी निम्न के लिए योग्य होंगे:

- संघ सूची के विभिन्न विषयों को जानने में।
- राज्य सूची में वर्णित विषयों को जानने में।

- समवर्ती सूची में वर्णित विषयों को जानने में।
- संघ और केन्द्र के बीच संबंधों का वर्णन करने हेतु।

नोट

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय संविधान के द्वारा दोहरी शासन प्रणाली स्थापित की गई है जिसमें संघ केन्द्र में और राज्य घेरे में विद्यमान हैं और प्रत्येक को संविधान के द्वारा निर्धारित विषयों के सम्बन्ध में सत्ता प्रयोग की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। संविधान के द्वारा संघ और राज्यों को दी जाने वाली शक्तियों का साफ और स्पष्ट विभाजन किया गया है। संविधान के दो भाग XI और XII (अनच्छेद 245 से 263) संघ और राज्यों के मध्य सम्बन्धों के वणन को समर्पित हैं। भाग XI में भारत संघ के इन दो भागों के बीच वैधानिक और प्रशासकीय सम्बन्धों की चर्चा की गई है और भाग XII में वित्तीय सम्बन्धों का वर्णन किया गया है। ऐसा वर्णन संविधान के एक उद्देश्य दृढ़ तथा शक्तिशाली केन्द्र के साथ संघात्मक व्यवस्था की स्थापना को पूर्णतया स्पष्ट करता है। और यह राज्यों के संघ भारत की प्रकृति को प्रकट करता है। *डी. एन. बैनर्जी* के अनुसार, "हमारे संविधान के प्रारम्भिक आधार क्षेत्रवाद और स्थानीय वफादारी की माँगों और एकात्मकता की आवश्यकता के मध्य एक समझौता है।" इसी कारण हमारे संविधान में संघवाद और एकात्मकता दोनों की कुछ-कुछ विशेषताएँ हैं। भारतीय संविधान न तो पूर्णतया संघीय है और न ही एकात्मक। इसका स्वभाव अर्धसंघीय है, कहने का तात्पर्य यह है कि इसका स्वरूप संघात्मक है परन्तु कुछ विशेष स्थितियों में यह निश्चित एकात्मक सुझाव वाला राज्य है। इस कथन की पुष्टि तब हो जाती है जब हम संघ और राज्यों के मध्य शक्तियों के विभाजन के मध्य शक्तियों के विभाजन की व्यवस्था और इनके वैधानिक, प्रशासकीय और वित्तीय सम्बन्धों की प्रकृति का विश्लेषण करते हैं।

6.1 संघ और राज्यों में वैधानिक संबंध (Legislative Relations between the Union and States)

संविधान के भाग XI में संघ और राज्यों के मध्य वैधानिक शक्तियों के विभाजन का विस्तृत वर्णन किया गया है। ऐसा करते समय अमरीकी संविधान के अनुसार कार्य नहीं किया गया है। अमरीकी संघ में, संविधान संघ सरकार के लिए कुछ शक्तियाँ निर्धारित की गई हैं और शेष शक्तियाँ राज्यों को दी गई हैं। इसके विपरीत भारतीय संविधान कैनेडा के संविधान के अनुरूप हैं। कैनेडा के संविधान की 91वीं अनुच्छेद में अलग-अलग विषयों की तीन भागों–31 विषयों वाली डोमीनियन सूची, 16 विषयों वाली प्रांतीय सूची और 3 विषयों वाली समवर्ती सूची में बाँटा गया। इसके अतिरिक्त इस संविधान के अनुसार अवशेष शक्तियाँ, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, स्विट्ज़रलैंड और जर्मनी के संविधानों के विपरीत, केन्द्र को सौंपी गईं। भारतीय संविधान में भी अलग-अलग विषयों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया है: जो इस प्रकार है–

I. संघीय सूची, इसमें 97 विषय हैं जिन पर संघीय संसद् कानून बना सकती है।
II. राज्य सूची, इसमें 66 विषय हैं जिन पर राज्य विधान सभाएँ कानून बना सकती हैं।
III. समवर्ती सूची, इसमें 47 विषय हैं जिन पर संघ और राज्य दोनों ही कानून बना सकते हैं।
IV. अवशेष शक्तियाँ (Residuary Powers) अर्थात् इन तीनों सूचियों के अतिरिक्त अन्य विशेष केन्द्र को सौंपे गए हैं।

नोट्स संघीय सूची सूचियों से बड़ी है इसमें 97 विषय शामिल हैं जिन पर संघीय संसद संविधान के द्वारा निश्चित प्रक्रिया के अनुसार कानून पास कर सकती है।

6.1.1 संघी सूची–97 विषय (The Union List–97 Subjects)

संघीय सूची में आरंभ में 97 विषय शमिल हैं। सातवें संशोधन के द्वारा विषय 33 को हटा दिया गया था और 101 संशोधन के द्वारा विषय 92 को हटा दिया गया था, परन्तु छठे संशोधन के द्वारा एक अन्य नया विषय 92–ए और 42वीं संशोधन के द्वारा एक अन्य विषय 2–ए संघीय सूची में शामिल किए गए थे। इस प्रकार कुल मिला कर अब संघीय सूची में 97 प्रभावी विषय हैं।

संघीय सूची के प्रमुख विषय है: सुरक्षा, विदेशी मामले, मुद्रा और सिक्का, युद्ध और शान्ति, परमाणु ऊर्जा, राष्ट्रीय स्रोत, निवारक नजरबंदी, रेलवे, डाक और तार, नागरिकता, जहाजरानी और समुद्री परिवहन, विदेशी व्यापार, अन्तर्राज्यीय व्यापार और व्यवसाय, बैंकिंग, बीमा, राष्ट्रीय राज्य मार्ग, अधिकार पत्र और सुरक्षित अधिकार, जनगणना, चुनाव, उच्च शिक्षा की संस्थाएँ आदि। संघीय संसद् के पास इन विषयों पर कानून बनाने की शक्ति हैं अनुच्छेद 246 में स्पष्ट लिखा गया है कि संघीय संसद् के पास ही 7वीं अनुसूची की पहली सूची (संघीय सूची) में दर्ज सभी विषयों पर कानून बनाने का पूर्ण शक्ति है।

6.1.2 राज्य सूची–66 विषय (State List–66 Subjects)

राज्य सूची में उन विषयों का वर्णन किया गया है जिन पर प्रत्येक राज्य की विधानपालिका कानून बना सकती है और ऐसे कानून सम्बन्धित राज्य के क्षेत्र में लागू होते हैं। राज्य सूची के प्रमुख विषय हैं: सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस, राज्य न्यायालय शुल्क, शराब, अंगहीनों और बेरोजगारों को आर्थिक सहायता, पुस्तकालय, संचार साधन, कृषि, पशु-पालन, जल-आपूर्ति, सिंचाई और नहरें, मछली पालन, सड़क यात्रा कर और माल कर, निर्यात कर आदि। कुछ स्थितियों में कुछ अपवादों को छोड़ कर, प्रत्येक राज्य विधानपालिका के पास सातवीं अनुसूची की सूची II (राज्य रूप में 66 विषय शामिल हैं)। सातवें संशोधन के द्वारा विषय 36 को हटा दिया गया था, संविधान की 42वें **संशोधन** के अनुसार विषय 11, 19, 20 और 29 को इस सूची से हटा दिया गया था और संविधान की 101 वें **संशोधन** के अनुसार विषय 52 और 55 को इस सूची से हटा दिया गया था। इस प्रकार अब कुल मिलाकर राज्य **सूची में** 61 प्रभावी विषय है।

6.1.3 समवर्ती सूची–47 विषय (Concurrent List–47 Subjects)

संघीय संसद् और राज्य विधानपालिकाएँ दोनों के पास ही सातवीं अनुसूची की सूची III अर्थात् समवर्ती सूची में शमिल विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति होती है। इस सूची के प्रमुख विषय इस प्रकार हैं: फौजदारी कानून, फौजदारी प्रक्रिया, कृषि वाली ज़मीन के अतिरिक्त किसी अन्य ज़मीन का हस्तांतरण, ठेका व्यवस्था, दंडयोग्य दुर्व्यवहार, निवारक हिरासत, विवाह और तलाक, नीलामी और दीवालियापन, ट्रस्ट और ट्रस्टी, न्याय-प्रबन्ध, गवाही और शपथ, सिविल प्रक्रिया, न्यायालय की मानहानि, पागलपन, जानवरों पर होते अत्याचार और रोक; जंगलों, जंगली जानवरों और पक्षियों की सुरक्षा, जनसंख्या पर नियन्त्रण और परिवार नियोजन, व्यापार संघ, शिक्षा, श्रमिक भलाई, देश की आन्तरिक जहाज़रानी और समुद्री यातायात, भोजन पदार्थ, कीमतों पर नियन्त्रण स्टाम्प शुल्क आदि। समवर्ती सूची में अब वास्तविक रूप में 52 विषय शमिल हैं क्योंकि संविधान की 42वें संशोधन के द्वारा विषय 11–ए, 17–ए, 17–बी, 20–ए और 33–ए इसमें शामिल किए गए।

6.1.4 अवशेष शक्तियाँ (Residuary Powers)

संविधान के अनुच्छेद 248 के अधीन कानून-निर्माण की अवशेष शक्तियाँ संघ को सौंपी गई हैं। इस अनुच्छेद के अनुसार, "संसद के पास समवर्ती सूची या राज्य सूची में शामिल न किए गए किसी भी मामले से सम्बन्धित कोई भी कानून बनाने का विशेष अधिकार बनाने और और कर लागू करना शामिल है।"

इस प्रकार भारतीय संविधान में संघ राज्यों के मध्य शक्तियों का निश्चित और स्पष्ट विभाजन किया गया है और ऐसा करते समय इसने कैनेडा के संविधान को एक मॉडल के रूप में स्वीकार किया है।

वैधानिक सम्बन्धों के सम्बन्ध में संघ की श्रेष्ठ स्थिति (The Superior Position of the Union in respect of Legislative Relations)

नोट

संघ और प्रत्येक राज्य के लिए वैधानिक शक्तियों वाले एक अलग और स्वायत्त क्षेत्र की सीमाबन्दी करते समय शक्तियों के विभाजन में संविधान में स्पष्ट रूप में संघ के पक्ष में झुकाव प्रतीत होता है। कई व्यवस्थाओं से भारतीय संविधान एकात्मक भावना सिद्ध होती है। निम्नलिखित तथ्य इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि वैधानिक सम्बन्धों के घेरे अंदर संघ को अधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ स्थिति प्राप्त है।

1. सबसे बड़ी संघीय सूची (Longest Union List): संघीय सूची 97 विषयों वाली तीन सूचियों में से सबसे बड़ी सूची है जिसमें प्रभावी 97 विषय शामिल हैं।

इसमें राष्ट्रीय और उच्च महत्त्व के सभी विषय शामिल हैं।

2. समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में संघीय कानूनों को राज्य कानून से अधिक प्राथमिकता (Primacy of the Union Laws over State Laws in respect of Concurrent Subjects): संघीय संसद और प्रत्येक राज्य विधानसभा समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। परन्तु किसी समवर्ती विषय पर संघ के एक कानून और किसी राज्य के एक कानून में झगड़ा पैदा हो जाने की स्थिति में संघ के कानून को राज्य कानून की तुलना में प्राथमिकता दो जाती है। अनुच्छेद 254 में यह स्पष्ट दर्शाया गया है कि केवल एक ही स्थिति में इस सिद्धांत के विपरीत चला जा सकता है, वह यह है कि यदि किसी राज्य विधानपालिका के द्वारा किसी समवर्ती विषय से सम्बन्धित कोई कानून पास किया गया हो और ऐसा कानून राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करके ही कानून बना हो तो उस स्थिति में राज्य कानून व्यवहार में लागू रहेगा चाहे यह कानून अथवा इसका कोई भाग संघ के कानून के विपरीत ही क्यों न हो।

यहाँ इस बात की व्यवस्था भी की गई है कि कोई भी सत्ता अथवा संस्था संसद को ऐसे मामले के सम्बन्ध में कोई कानून बनाने, कानून में वृद्धि करने संशोधन करने, परिवर्तन करने या राज्य विधानसभा के द्वारा बनाए गए कानून को खण्डित करने से रोक नहीं सकती। इस प्रकार हम स्पष्ट रूप में यह कह सकते हैं कि समवर्ती सूची के विषयों में संघ को श्रेष्ठता प्राप्त है।

3. अवशेष शक्तियाँ संघीय संसद के पास हैं (Residuary Powers are with Union Parliament): संघीय सूची में 97 विषय शामिल करने के पश्चात् और समवर्ती विषयों के सम्बन्ध में संघीय कानूनों को प्राथमिकता देने के पश्चात् संविधान में अनुच्छेद 248 के अधीन अवशेष शक्तियाँ/विषय संघीय संसद के पूर्ण अधिकार क्षेत्र में शामिल किए गए हैं।

4. राज्य सूची के सम्बन्ध संघीय संसद के अधिकार (Union Parliament's Rights in respect of the objects of State List): प्रत्येक राज्य विधानपालिका को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है। परन्तु यहाँ भी कुछ अपवाद हैं जिनके अनुसार संसद को अलग-अलग मामलों में राज्य विषयों से सम्बन्धित कानून बनाने की शक्ति मिल जाती हैं।

(क) राष्ट्रीय हित में केन्द्रीय कानून (Central Leqislation in National Interest): अनुच्छेद 249 के अधीन राज्यसभा अपने विद्यमान और मतदान कर रहे सदस्यों के 2/3 बहुमत के समर्थन के द्वारा एक प्रस्ताव पास करके किसी राज्य विषय को राष्ट्रीय महत्त्व वाला विषय घोषित कर सकती है। ऐसी स्थिति में संघीय संसद को इस विषय पर कानून बनाने के लिए एक वर्ष के समय के लिए शक्ति मिल जाती है। राज्यसभा ऐसा प्रस्ताव बार-बार पास कर सकती है और किसी राज्य विषय से सम्बन्धित संसद की कानून निर्माण की शक्तियों में वृद्धि कर सकती है। ऐसा संघ का कानून राज्यसभा के प्रस्ताव की अवधि समाप्त होने के पश्चात् छः महीने के समय के लिए लागू रह सकता है।

(ख) राष्ट्रीय संकटकालीन समय के दौरान केन्द्रीय कानून निर्माण (Central Legislation during National Emergency): जब अनुच्छेद 352 के अधीन देश में संकटकाल स्थिति की घोषणा हो

जाती है तब संसद को राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बनाने की शक्ति मिल जाती है। ऐसी स्थिति में राज्य सूची समवर्ती सूची में परिवर्तित हो जाती है। संकटकाल के समय के दौरान, संसद के द्वारा बनाए गए कानूनों को किसी राज्य विधानपालिका के द्वारा बनाए गए कानून की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है। इसके साथ ही किसी विषय पर निर्मित संघीय कानून संकटकाल के समय के समाप्त होने के पश्चात् भी छः महीने के समय तक लागू रहते हैं।

(ग) संवैधानिक संकटकाल के समय के दौरान केन्द्रीय कानून-निर्माण (Central Legislation during a Constitutional Emergency): जब राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अधीन किसी राज्य या राज्यों में संवैधानिक संकटकाल की स्थिति घोषित कर देता है तो राज्य विधानपालिका/विधानपालिकाएँ भंग या स्थगित कर दी जाती हैं और संघीय संसद के पास सम्बन्धित राज्य/राज्यों के सम्बन्ध में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने की शक्ति आ जाती है। संसद, चाहे तो उस राज्य की वैधानिक शक्तियाँ राष्ट्रपति को सौंप सकती है (अनुच्छेद 375 (1)) या यह शक्तियाँ किसी अन्य अधिकारी को सौंपने का अधिकार राष्ट्रपति को दे सकता है।

क्या आप जानते हैं संसद या राष्ट्रपति या किसी अन्य अधिकारी के द्वारा संवैधानिक संकटकाल के समय के दौरान बनाए गए कानून तब तक लागू रहते हैं जब तक कि योग्य विधानपालिका या अन्य अधिकारी इनको समाप्त अथवा परिवर्तित नहीं कर देता या इनमें कोई संशोधन नहीं कर देता।

(घ) राष्ट्रपति की सहमति कुछ राज्य बिलों को प्रस्तुत करने की व्यवस्था (Introduction of Some State Bills with Presidential Permission): राष्ट्रपति की पूर्व-सहमति से ही राज्य विधानपालिका में कुछ विशेष प्रकार के बिलों, जैसा कि राज्य के अंदर या कहीं और व्यापार से सम्बन्धित बिल को पेश किया जा सकता है।

(ङ) राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए कुछ राज्य बिलों के आरक्षण की व्यवस्था (Reservation of Certain State Bills for Presidential Assent): कुछ विशेष प्रकार के बिल जैसा कि उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र और प्रभाव (अनुच्छेद 200), सार्वजनिक हित में किसी सम्पत्ति का प्रबंध करना, उपयुक्त प्रबंध के लिए दो या अधिक निगमों को जोड़ना, अन्तर्राज्यीय नदी या नदी घाटी से पैदा होने वाली या निर्मित की गई बिजली और पानी पर लागू करना आदि बिल राज्यपाल के द्वारा राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। यहाँ तक कि समवर्ती सूची के साथ सम्बन्धित कुछ मामले भी राज्यपाल के द्वारा राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रखे जा सकते हैं। राष्ट्रपति ऐसी स्थिति में बिल को या तो स्वीकृति दे सकता है या राज्य विधानसभा को पुनः विचार करने के लिए वापस भेज सकता है। जब बिल राज्य विधानसभा के द्वारा पुनः पास हो जाता है, तब इसको स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है, परन्तु राष्ट्रपति द्वारा इसको अपनी स्वीकृति देनी अनिवार्य नहीं होती। राष्ट्रपति के द्वारा बिल को स्वीकृति न दिए जाने पर यह रद्द हो जाता है। राष्ट्रपति ऐसे बिल को अस्वीकार तब करता है जब राष्ट्रपति को लगे कि उसके निर्देशों का राज्य विधानपालिका के द्वारा पालन नहीं किया गया। इसी प्रणाली के अधीन ही केरल शिक्षा बिल, 1959, औद्योगिक झगड़े (पश्चिमी बंगाल) बिल, 1969, हिन्दू उत्तराधिकारिता बिल (हरियाणा संशोधन) 1979, केरल भूमि सुधार दूसरा संशोधन बिल 1980 और कई अन्य राज्य बिल रद्द किए गए।

(च) दो या अधिक राज्यों की सहमति के साथ केन्द्रीय कानून-निर्माण (Central Legislation with the Consent of Two or More States): यदि दो या अधिक राज्यों की विधानपालिकाएँ संघीय संसद को राज्य सूची के किसी विषय/विषयो पर कानून बनाने की प्रार्थना करें तो, संघीय संसद उनके लिए कानून निर्मित कर सकती है। इस उद्देश्य के लिए सम्बन्धित राज्य विधानपालिकाओं को एक प्रस्ताव पास करना पड़ता है। एक बार संसद ऐसा कानून बना ले तो दूसरी राज्य विधानपालिकाएँ भी प्रस्ताव पास करके ऐसे कानून को अपना सकती हैं।

नोट

(छ) अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को व्यावहारिक रूप देने के लिए केन्द्रीय कानून-निर्माण (Central Legislation for Giving Effect to International Agreements): संविधान के अनुच्छेद 253 के अधीन संघीय संसद के पास किसी अन्य देश से कोई सन्धि, समझौता या संविदा लागू करवाने या कोई अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि लागू करने के लिए समस्त भारत के लिए या इसके किसी भाग के लिए कानून निर्माण करने की शक्ति होती है।

ये सभी विशेषताएँ इस तथ्य पर प्रकाश डालती हैं कि संघीय संसद संविधान की कुछ निर्धारित अलग-अलग धाराओं के अनुसार कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर भी अपनी कानून-निर्माण शक्ति का प्रयोग कर सकती है। *जे.आर. सिवाच* के अनुसार, "राज्य सूची के लगभग 13 विषय संघीय सूची के द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं और राज्य सूची के 4 विषय समवर्ती सूची के विषयों के द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं"।

5. संघ के कानूनों का उच्चतर स्तर (Superior Status of Union Laws): संविधान के अनुच्छेद 251 में इस बात की व्यवस्था की गई है कि संघ के कानून और राज्य कानून में कोई झगड़ा पैदा हो जाने की स्थिति, संघ के कानूनों को राज्य के कानून से प्राथमिकता दी जाएगी। यह व्यवस्था संघीय संसद के द्वारा बनाए गए कानूनों को निश्चित रूप में उच्चतर स्थान प्रदान करती है।

6. संसद के पास राज्य विधान परिषद् को स्थापित या समाप्त करने की शक्ति है (Parliament's power to establish or abolish State Legislative Council): संविधान के अनुसार किसी राज्य में एक-सदनीय विधानसभा या दो-सदनीय विधानपालिका हो सकती हैं। यदि कोई राज्य दो-सदनीय विधानपालिका चाहता है और इस उद्देश्य के लिए उपरि सदन अर्थात् राज्य विधान परिषद् की स्थापना करना चाहता है तो इस उद्देश्य के लिए राज्य को प्रस्ताव पास करके संघीय संसद को कानून निर्माण करने की प्रार्थना करनी पड़ती है। यदि कोई राज्य अपनी विधानसभा के उपरि सदन को समाप्त करना चाहता है तो इसकी राज्य विधानसभा को प्रस्ताव पास करना पड़ता है और संघीय संसद को उपयुक्त कार्यवाही करने की माँग प्रस्तुत करनी पड़ती है। केवल संघीय संसद ही राज्य विधान सभाओं के उपरि सदनों की स्थापना कर सकती है या उनको समाप्त कर सकती है।

7. संसद की राज्यों की सीमाएँ निश्चित करने/परिवर्तित करने की शक्ति (Parliament's Power to Determine/Change the Boundaries of the States): संसद के पास राज्यों की सीमाएँ परिवर्तित करने की शक्ति होने के कारण यह राज्य विधानसभा पर वैधानिक रूप में हावी होती है क्योंकि राज्य विधानपालिका के द्वारा बनाए गए कानून केवल राज्य के भू-क्षेत्र में ही लागू होते हैं। उदाहरणस्वरूप जब संवैधानिक संशोधन के द्वारा मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार में से क्रमवार छत्तीसगढ़, उत्तरांचल और झारखंड को अलग राज्य बना दिया गया तो इससे पहले तीन राज्यों के अधिकार-क्षेत्र स्वयं ही सीमित हो गए।

8. संसद के पास संघीय प्रदेशों के लिए कानून बनाने की शक्ति (Parliament's Power to Legislate for the Union Territories): भारतीय संघ में 28 राज्यों के साथ-साथ 8 संघीय प्रदेश (Union Territories) भी शामिल हैं, क्योंकि प्रत्येक संघीय प्रदेश के पास अपनी विधानसभा नहीं होती, इसलिए संसद के पास ऐसे सभी संघीय क्षेत्रों के लिए सभी विषयों पर कानून पास करने की शक्ति होती है।

यह सभी तथ्य संघ और राज्यों के मध्य वैधानिक सम्बन्धों के बारे में संघ की श्रेष्ठ स्थिति की पुष्टि की ओर संकेत करते हैं। यह विशेषता भारतीय संघ प्रणाली में विद्यमान एकात्मक भावना को प्रकट करती है।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

1. समवर्ती सूची में शामिल विषयों पर केन्द्र और ········ दोनों कानून बना सकते हैं।
2. पुलिस, कृषि, पशुपालन आदि ········ सूची के विषय हैं।
3. भारतीय संघ में 28 राज्यों के साथ-साथ ········ संघीय प्रदेश भी शामिल हैं।

टास्क संघ सूची मे शामिल विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

नोट

6.2 संघ और राज्यों में प्रशासकीय संबंध (Administrative Relations between the Union and the States)

संघ और राज्यों के मध्य प्रशासकीय सम्बन्धों की प्रकृति का परीक्षण इस प्रकार है–

प्रशासकीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भी भारतीय संविधान द्वारा संघ को विशेष प्राथमिकता दी गई है। संघात्मक व्यवस्था की आवश्यक विशेषता को अपनाते हुए भारतीय संविधान द्वारा भी दोहरी शासन प्रणाली की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक राज्य की अपनी सरकार और शासन व्यवस्था होती है जो राज्य सूची में दर्ज विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण और प्रशासकीय शक्तियों का प्रयोग अपने-अपने राज्य के क्षेत्र में करती है। संघीय सरकार के पास संघीय सूची के विषयों और अवशेष विषयों के प्रशासन का पूर्ण अधिकार होता है। संविधान में समवर्ती सूची के विषयों पर संघ और राज्यों दोनों को समवर्ती प्रशासकीय अधिकार सौंपे गए हैं।

संविधान के भाग XI, अध्याय II, अनुच्छेद 256 से 263 तक संघ और राज्यों के मध्य प्रशासकीय सम्बन्धों का वर्णन किया गया है। जब हम इन व्यवस्थाओं का विश्लेषण करते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि प्रशासकीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भी संघ को साधारण स्थितियों में भी श्रेष्ठता प्राप्त है और संकटकाल के समय के दौरान तो इसे बहुत अधिक प्रशासकीय शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। निम्नलिखित तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं–

1. राज्यपाल की नियुक्ति और भूमिका (Appiontment and Role of Governor): प्रत्येक राज्य का एक राज्यपाल होता है जो राज्य के मुखिया के रूप में कार्य करता है। राज्यपाल को नियुक्त करने, स्थानांतरण करने या हटा देने की शक्ति राष्ट्रपति के पास होती है। राज्यपाल की नियुक्ति करते समय, राष्ट्रपति राज्य मंत्रिपरिषद् का परामर्श ले सकता है, परन्तु यह परामर्श स्वीकार करने के लिए बन्धनकारी नहीं होता। यद्यपि अब आम सहमति से यह नियम स्वीकार कर लिया गया है कि राज्यपाल की नियुक्ति के समय केन्द्र अवश्य ही सम्बन्धित राज्य की मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेगी और उसकी इच्छाओं को सम्मान देगी। राज्यपाल दो तरह से कार्य करता है–(*i*) वह राज्य में केन्द्र के एजेंट के रूप में कार्य करता है, और (*ii*) राज्य के प्रशासन के मुखिया के रूप में कार्य करता है। सामान्य तौर पर वह संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करता है परन्तु संवैधानिक संकटकाल के समय में वह राज्य के प्रशासन का वास्तविक मुखिया (अनुच्छेद 356 अधीन) बन जाता है। राष्ट्रीय संकटकाल के समय के दौरान राष्ट्रपति राज्यपाल को कोई भी निर्देश या आदेश दे सकता है और उसके आदेश का पालन करना राज्यपाल का उत्तरदायित्व बन जाता है। कई बार राज्यपाल केन्द्र के एजेंट के रूप में अधिक और राज्य प्रशासन के मुखिया के रूप में कम कार्य करता है। मार्च 2005 में झारखंड के राज्यपाल ने और मई 2005 में बिहार के राज्यपाल ने केन्द्र के पक्ष के आधार पर ही अपने निर्णय दिए।

2. राज्यों का संघ के प्रति कर्तव्य (Obiligation of the States towards the Union): संविधान के अनुच्छेद 256 में दर्ज है कि–"प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति संसद के द्वारा बनाए गए कानूनों का पालन विश्वसनीय बनाने वाले ढंग से प्रयोग की जाएगी और संघ की कार्यपालिका शक्ति राज्य को ऐसे निर्देश दे सकेगी जो भारत सरकार को ऐसे उद्देश्य के लिए आवश्यक प्रतीत होंगे।"

3. कुछ विशेष स्थितियों में राज्यों पर संघ का नियंत्रण (Control of the Union over States in Certian Conditions): अनुच्छेद 257 के अधीन इस बात की व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक राज्य की कार्यकारी शक्ति का प्रयोग इस ढंग से किया जाएगा कि यह संघ की कार्यकारी शक्ति के प्रयोग में बाधा न डाले या फिर संघीय कार्यपालिका शक्ति के सफलता के मार्ग में बाधा डाले या पक्षपात न करे। संघ राज्य को ऐसे निर्देश दे सकता है जो भारत सरकार को इस उद्देश्य के लिए आवश्यक प्रतीत होंगे।

नोट

4. संघ की निर्देश देने की शक्ति (Union's Power to give Directions): ऐसे संचार साधनों का, जोकि राष्ट्रीय और सैनिक महत्त्व के घोषित किए जाते हैं, निर्माण एवं रख-रखाव करने के लिए संघ कोई भी निर्देश किसी राज्य को दे सकता है और ऐसा करना संघ की कार्यपालिका शक्ति में शामिल है।

5. रेलवे की सुरक्षा (Protection of Railways): अनुच्छेद 257 के अनुसार, "संघ के पास राज्य के अंदर रेलवे की सुरक्षा के लिए उठाए जाने वाले कदमों के सम्बन्ध में राज्यों को निर्देश देने की शक्ति होती है।"

6. राष्ट्रपति के पास संघ की शक्तियों का उत्तरदायित्व किसी राज्य को सौंपने की शक्ति है (Power of the President to Vest Responsibility in Respect of Union Powers with the State): राष्ट्रपति, राज्य सरकार की सहमति से, उस राज्य की सरकार या उसके अधिकारियों को कुछ शर्तों सहित या शर्तों के बिना संघ की कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग के सम्बन्ध को आवश्यक तथा अनिवार्य उत्तरदायित्व सौंप सकता है।

7. राज्य अपने कुछ कार्य संघ को सौंप सकता है (A State can Entrust Some Functions to the Union): अनुच्छेद 258-ए में इस बात की व्यवस्था है कि राज्य सरकार की सहमति से राज्यपाल राज्य की कार्यकारी शक्ति के घेरे में पड़ते कुछ विषयों के सम्बन्ध में कोई कार्य भारत सरकार को या इसके अधिकारियों को शर्तों सहित या शर्तों के बिना सौंप सकता है।

8. अन्तर्राज्यीय नदियों या नदी घाटियों से सम्बन्धित झगड़ों के निपटारे की संघ की शक्ति (Union's Power of Adjudication of Disputes relating to Inter-state Rivers or River Valleys): अनुच्छेद 262 के अनुसार संसद अन्तर्राज्यीय नदी या नदी घाटी के जल का विभाजन, प्रयोग या नियंत्रण के झगड़े के लिए संघ सरकार कानून-निर्माण कर अपना निर्णय दे सकती है।

9. राज्य में केन्द्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा (Protection of Central Property in State): राज्य के क्षेत्र में केन्द्रीय सम्पत्तियों की रक्षा करने का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का होता है। संघ किसी राज्य में संघीय सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस या कोई अन्य अर्ध-सैनिक बल जैसा कि केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल भेज सकता है।

10. अखिल भारतीय सेवाओं से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ (Provisions regarding All India Services): भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों की भर्ती संघ लोक सेवा आयोग के द्वारा की जाती है, परन्तु इनको राज्यों में नियुक्ति किया जाता है।

> *नोट्स* अखिल भारतीय लोक सेवा के अधिकारी ही राज्य प्रशासन में सभी उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त होते हैं।

उनके व्यवहार को संघ के गृह मंत्रालय के द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

11. संघ के पास अखिल भारतीय सेवा स्थापित करने या समाप्त करने की शक्ति (Union's Power to Create or Abolish an All India Service): अनुच्छेद 312 के अनुसार राज्यसभा को कोई नई अखिल भारतीय सेवा स्थापित करने या किसी विद्यमान अखिल भारतीय सेवा को समाप्त की शक्ति दी गई है। राज्यसभा ऐसा 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पास करके कर सकती है।

12. संघ की तालमेल शक्तियाँ (Union's Co-ordination Powers): भारतीय संघ के सभी राज्यों के बीच तालमेल स्थापित करने के लिए राष्ट्रपति अनुच्छेद 263 के अधीन एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना कर सकता है। यदि किसी समय, भारत के राष्ट्रपति को यह लगे कि सार्वजनिक हित के लिए अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना के द्वारा सुरक्षा की जा सकती है तो राष्ट्रपति इस परिषद् को निम्नलिखित कर्तव्य सौंप सकता

है-(क) राज्यों के बीच पैदा हुए झगड़ों की जाँच करना और परामर्श देना, (ख) उन विषयों के बारे में जाँच-पड़ताल और विचार-विमर्श करना जिनमें कुछ या सभी राज्यों या संघ या एक या अधिक राज्यों का साझा हित हो, या (ग) किसी ऐसे विषय के लिए सुझाव देना और विशेष रूप में उस विषय के सम्बन्ध में नीति और कार्यवाही में श्रेष्ठ तालमेल के लिए सिफारिशें करनी। राष्ट्रपति के द्वारा ऐसी परिषद् की स्थापना करना कानून होता है और वह ही इसके द्वारा निभाए जाने वाले कर्तव्यों की प्रकृति और इसके संगठन और प्रक्रिया को परिभाषित कर सकता है।

13. सार्वजनिक अधिनियम, रिकार्डों और न्याय से सम्बन्धित कार्यवाहियाँ लागू करना (Application of Public Acts, Records and Judicial Proceedings): संविधान के अनुच्छेद 261 में दर्ज है कि "संघ और प्रत्येक राज्य के सार्वजनिक अधिनियमों, रिकार्डों और न्याय से सम्बन्धित कार्यवाहियों पर समस्त भारत में पूर्ण विश्वास किया जाएगा और उन्हें कानूनी मान्यता प्राप्त होगी।"

इसके साथ ही संसद कानून के द्वारा निश्चित करती है कि किस ढंग से कौन-सी शर्तों के अधीन ये अधिनियम, रिकार्ड और कार्यवाहियाँ सम्पन्न की जाएँगी और इनको प्रभावी बनाया जाएगा।

14. किसी राज्य में संवैधानिक संकटकाल की स्थिति का लागू होना और राष्ट्रपति राज्य की व्यवस्था (Constitutional Emergency in a State/States and Provison for President's Rule): अनुच्छेद 356 के अधीन, राष्ट्रपति अपने निर्णय और विवेक अथवा राज्य के राज्यपाल की सिफारिश पर राज्य में संवैधानिक मशीनरी के असफल रहने की स्थिति में ऐसे राज्य में संवैधानिक संकटकाल की स्थिति की घोषणा कर सकता है। ऐसी स्थिति में सम्बन्धित राज्य की कार्यपालिका भंग हो जाती हैं। राज्य राष्ट्रपति के शासन अधीन आ जाता है और राज्य का राज्यपाल वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करना आरंभ कर देता है। राज्य प्रशासन सीधा केन्द्र की निगरानी, निर्देशन और नियंत्रण के अधीन आ जाता है।

15. बाह्य आक्रमणों और आंतरिक विद्रोहों से राज्यों की सुरक्षा करना संघ का कर्तव्य है (Duty of the Union to Protect States against External Aggression and Internal Disturbances): अनुच्छेद 355 के अनुसार, "संघ का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक राज्य की बाहरी आक्रमण और आंतरिक विद्रोहों से सुरक्षा करे और यह विश्वसनीय बनाए कि प्रत्येक राज्य सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार चलती रहे।"

जब राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रीय संकटकाल की घोषणा कर देता है तो संघ की कार्यकारी शक्ति सभी राज्यों पर लागू हो जाती है और संघ किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति को प्रयोग करने के ढंग से सम्बन्धित निर्देश दे सकता है।

16. किसी राज्य के द्वारा संघ के कार्यपालिक निर्देशों का पालन करने से असमर्थ रहने पर उस राज्य में संवैधानिक संकटकाल स्थिति का घोषणा की जा सकती है (Failure to give Effect to the Union Executive's Directions by any State can Invite a Declaration of Constitutional Emergency in the State): संविधान के अनुच्छेद 365 के अनुसार, जब कोई राज्य, संघ की कार्यकारी शक्ति के अनुसार दिए निर्देश से सहमति रखने या इसको लागू करने से असमर्थ हो जाता है तो राष्ट्रपति कानूनी रूप में यह समझ लेता है कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जब राज्य सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुरूप नहीं चल सकती तथा उसमें धारा 356 के अधीन संकटकाल की स्थिति लागू की जा सकती है। इस व्यवस्था का प्रयोग संघ के द्वारा किसी असहयोगी राज्य के विरुद्ध किया जा सकता है।

17. मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध जाँच आयोग नियुक्त करने की शक्ति (Power to Appoint Inquiry Commissions against Chief Ministers): एक अन्य व्यवस्था जो संघ सरकार को राज्य प्रशासन पर समुचित रूप में प्रशासनिक नियंत्रण रखने का अधिकार देती है वह भ्रष्टाचार के आरोपित कार्यों की जाँच के लिए राज्यों के मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध जाँच आयोगों की नियुक्ति करने की व्यवस्था है। उदाहरणस्वरूप

1963 में पहली बार, संघ सरकार ने पंजाब के मुख्य मंत्री प्रताप सिंह कैरों के विरुद्ध कुछ दोषों की जाँच के लिए दास आयोग नियुक्त किया था। उसके पश्चात् कई ऐसे आयोग बनाए गए–पंजाब के मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल के विरुद्ध छंगानी आयोग (1972), तमिलनाडु के मुख्यमंत्री करुणानिधि के विरुद्ध सरकारिया आयोग 1976, आंध्र प्रदेश में वेंगल राव के विरुद्ध विमल दलाल आयोग, त्रिपुरा में एस.एम. सेन गुप्ता के विरुद्ध दुरमन आयोग (1979) इत्यादि। 1981 में संघ सरकार के द्वारा तमिलनाडु और केरल में स्पिरिट स्कैंडल की जाँच के लिए रे आयोग नियुक्त किया गया। इसी प्रकार संघ सरकार ने मुम्बई बम कांड और साम्प्रदायिक दंगे (1993) की जाँच-पड़ताल के लिए श्रीकृष्णा आयोग की स्थापना की। वास्तव में इस आयोग का कार्य था महाराष्ट्र की शिव सेना सरकार के इस सम्बन्ध में कार्य-व्यवहार की जाँच-पड़ताल। इस प्रकार राज्यों के मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध आरोपित दुर्व्यवहार और अनियमितताओं के किसी विशेष मामले/मामलों की जाँच के लिए आयोग नियुक्त करना संघ सरकार के हाथ में एक ऐसा लीवर है जिसका प्रयोग यह अपनी इच्छा से करता है तथा इसका प्रयोग किसी राज्य की सरकार के व्यवहार को प्रभावित करने के लिए कर सकता है।

ये सभी तथ्य इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं कि संविधान में संघ और राज्यों के मध्य प्रशासकीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भी संघ प्रशासन को अधिक महत्त्व प्राप्त है। यह विशेषताएँ भारतीय संविधान की एकात्मक भावना को प्रकट करती हैं। इन व्यवस्थाओं का प्रयोग संघ सरकार के द्वारा केवल केन्द्रीय नीतियों के द्वारा प्रभावशाली प्रशासन चलाने के लिए ही नहीं किया जाता बल्कि राज्यों पर कुछ नियंत्रण रखने के लिए नियमित ढंग से किया जाता है। राज्यों की स्वायत्तता की मांग का एक उद्देश्यों यह है कि प्रशासकीय क्षेत्र में संघ की अधिक भूमिका को कम किया जाए और राज्यों को आंतरिक प्रशासन की स्वायत्तता सौंपी जाए।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

4. राज्यपाल को नियुक्त करने, स्थानांतरण करने या उसे उसके पद से हटा देने की शक्ति किसके पास होती है?
   - (*a*) मुख्यमंत्री
   - (*b*) उच्च न्यायालय का न्यायाधीश
   - (*c*) प्रधानमंत्री
   - (*d*) राष्ट्रपति
5. संघ और राज्यों के मध्य प्रशासकीय संबंधों का वर्णन किन अनुच्छेदों में किया गया है?
   - (*a*) अनुच्छेद 257 से 264
   - (*b*) अनुच्छेद 256 से 263
   - (*c*) अनुच्छेद 258 से 269
   - (*d*) अनुच्छेद 270 से 275
6. पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरो के विरुद्ध दोषों की जाँच के लिए किस आयोग की स्थापना की गई थी?
   - (*a*) सरकारिया आयोग
   - (*b*) छंगानी आयोग
   - (*c*) दास आयोग
   - (*d*) रे आयोग

6.3 संघ और राज्यों में वित्तीय संबंध (Financial Relations between the Union and the States)

भारतीय संविधान के भाग XII, अध्याय 1 में विस्तार सहित संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों की व्यवस्थाओं का वर्णन किया गया है। इनमें इस अति महत्त्वपूर्ण विषय अथवा मुद्दे को सुलझाने और उसका निपटाने का एक साहसिक और विस्तृत प्रयास किया गया है। उन सभी विषयों कि, जो संघ तथा राज्यों के मध्य राजस्व के

विभाजन और अन्य वित्तीय सम्बन्धों से जुड़े हैं, में की गई है। संविधान के अनुसार राजस्व का विभाजन निम्नलिखित नियमों के अनुसार किया गया है:

1. केन्द्र के द्वारा लगाए गए कर और शुल्क (Taxes and Duties Levied by the Centre): संविधान के द्वारा संघ को कुछ विशेष शुल्क पूर्ण रूप से सौंपे गए हैं जिनमें आयात और निर्यात शुल्क, आय कर, तम्बाकू, पटसन आदि पर आबकारी शुल्क, निगम कर, सम्पत्ति की लागत पर कर, कृषि योग्य जमीन के अतिरिक्त अन्य सम्पति के सम्बन्ध में सम्पत्ति कर, रेलवे, डाक और तार, टेलीफोन, वायरलैस, प्रसारण और संचार के दूसरे ढंग, संघीय सम्पत्ति और इसकी आय, संघ का सार्वजनिक ऋण, विदेशी मुद्रा, सिक्का अर्थात् संघीय सूची में शामिल मदें और कर शामिल हैं।

2. राज्य के द्वारा लगाए गए और प्रयोग किए जाने वाले कर और शुल्क (Taxes and Duties Levied and Used by the States): राजस्व के कुछ स्रोत राज्यों के अधिकार क्षेत्र के अधीन आते हैं, इनमें भूमि लगान से होने वाली सरकारी आय, संघीय सूची में शामिल दस्तावेजों के अतिरिक्त स्टैंप शुल्क, उत्तराधिकारिता फीस और कृषि योग्य जमीन से सम्बन्धित कर, सड़कों और देश में समुद्री जहाजों के द्वारा सामान और यात्रियों पर लगाया गया कर, बिजली की खपत और बिक्री पर लगा कर और चुंगी कर, मानव प्रयोग के लिए शराब पर लगा शुल्क, मनोरंजन कर आदि पर लगे कर शामिल हैं।

3. संघ के द्वारा लगाए गए परन्तु राज्य के द्वारा एकत्रित और प्रयोग किए जाने वाले कर, अनुच्छेद 268 [Taxes levied by the Union but collected and Appropriated by States (Art. 268)]: निम्नलिखित स्रोतों से होने वाली सरकारी आय राज्यों के द्वारा एकत्रित और प्रयोग की जाती है:

(क) विनिमय बिलों, चैकों, परनोट, उधार देने के बिल, ऋण पत्र, बीमा नीतियों, शेयरों का हस्तांतरण आदि पर स्टैंप शुल्क।

(ख) डॉक्टरी, अल्कोहल, युक्तश्रृंगार वस्तुओं, पोस्त आदि पर आबकारी कर।

ऐसी सभी वस्तुओं पर कर संघीय सरकार लगाती है परन्तु इनकी वसूली राज्यों के द्वारा की जाती है और वह ही इससे होने वाली आय का प्रयोग करते हैं। राज्यों की आय का यह एक मुख्य वित्तीय स्रोत है।

4. संघ के द्वारा लगाए गए और एकत्रित किए जाने वाले कर परन्तु जो बाद में राज्यों को सौंप दिए जाते हैं (अनुच्छेद 269) [Taxes levied and collected by the Union but assigned to States (Art. 269)]: कुछ मदों पर कर संघ के द्वारा लगाए जाते और एकत्रित किये जाते हैं परन्तु यह उन राज्यों को ही सौंप दिए जाते हैं जहाँ कि ये एकत्रित किए गए हों। इनमें रेलवे से माल की ढुलाई और रेल यात्रा, समुद्री यात्रा या हवाई यात्रा के द्वारा सामान और यात्रियों पर लगा किराया कर, कृषि योग्य जमीन के अतिरिक्त किसी अन्य सम्पत्ति के सम्बन्ध में सम्पत्ति कर शामिल हैं।

5. संघ के द्वारा लगाए और एकत्रित किए जाने वाले कर परन्तु जो संघ और राज्यों के मध्य विभाजित कर दिए जाते हैं (अनुच्छेद 270) [Taxes levied and collected by the Union and Distributed between the Union and the States (Art. 270)]: कुछ विशेष अनुच्छेद ऐसे हैं जिन पर कर केन्द्र के द्वारा लगाए और एकत्रित किए जाते हैं, परन्तु यह राज्यों से बांट लिये जाते हैं। कर विभाजन की अनुपात का निर्णय नियमों और कानूनों के अनुसार किया जाता है। ऐसी कुछ मदें हैं: कृषि से होने वाली आय के अतिरिक्त शेष आय कर, डॉक्टरी और श्रृंगार वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरी मदों पर आबकारी कर। इस धारा में केन्द्र शासित प्रदेशों और संघ के वेतन की रकम की कटौती करने के पश्चात् शेष आय कर संघ और राज्यों और अलग-अलग राज्यों के मध्य वित्त आयोग की रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रपति के आदेशों के अनुसार बांट देने की व्यवस्था भी की गई है।

6. राज्यों को मिलने वाली केन्द्रीय सहायता (Central Grants-in-Aid to the States): राज्यों की सरकारी आय के स्रोत इनकी आवश्यकताओं पूर्ण करने के लिए काफ़ी नहीं होते। इसके लिए संविधान

नोट

में संघ के द्वारा राज्यों को सहायता प्रणाली अधीन सहायता देने की व्यवस्था की गई है। इसके अनुसार संसद कानून के द्वारा ज़रूरतमंद राज्यों को सहायता ग्रांट दी जा सकती है। सहायता राशि का निर्णय संसद् के द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त, राज्य अपने विशेष प्राजैक्टों के लिए ऋण लेने के लिए आवेदन दे सकते हैं। संविधान में अनुसूचित कबीलों और पिछड़े वर्गों के लोगों के कल्याण के लिए आरम्भ की योजनाओं के लिए सहायता देने की भी व्यवस्था है। असम, बिहार, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल, पटसन और पटसन से बनने वाले उत्पादों पर लगे निर्यात कर के एवज़ में सहायता प्राप्त करते हैं।

7. संघ सरकार के पास ऋण लेने की शक्ति होती है (Union Government's Power to Raise Loans): संघ सरकार के पास भारतीय संचित निधि की ज़मानत पर ऋण लेने की शक्ति है, परन्तु इस पर संसद के कानूनों (अनुच्छेद 292) के द्वारा समय-समय पर लागू प्रतिबन्ध लागू होते हैं। राज्य भी भारतीय क्षेत्र में अपनी संचित निधि की ज़मानत पर ऋण ले सकते हैं परन्तु राज्य विदेशों से ऋण नहीं ले सकते। भारत सरकार भी किसी राज्य को ऋण दे सकती है। अनुच्छेद 292 (3) के अंनुसार, ऋण लेने के सम्बन्ध में एक और प्रतिबन्ध लगाया गया है, "कोई भी राज्य उतनी देर तक भारत सरकार की सहमति के बिना ऋण नहीं ले सकता जब तक संघ के द्वारा राज्य को पहले दिए गऐ ऋण का बकाया देना अभी शेष हो।"

8. वित्तीय संकटकाल की स्थिति और संघ की शक्तियाँ (Financial Emergency and Powers of the Union): अनुच्छेद 360 के अधीन वित्तीय संकटकाल की स्थिति की घोषणा करते समय राष्ट्रपति संघ और राज्यों के मध्य राजस्व के विभाजन से सम्बन्धित और राज्यों को दी जाने वाली सहायता से सम्बन्धित व्यवस्थाओं को स्थगित कर सकता है। ऐसे संकटकाल के दौरान राज्यों के पास केवल राज्य सूची में शामिल करों से होने वाली सरकारी आय ही रह सकती है और शेष स्रोतों का नियन्त्रण केन्द्र की इच्छा के अनुसार किया जा सकता है। संघ, राज्य विधान सभाओं को अपने बजट के प्रस्ताव और दूसरे वित्तीय स्रोतों का ब्यौरा राष्ट्रपति के विचार के लिए भेजने के लिए कह सकता है। वित्तीय संकटकाल में समय राज्य के कर्मचारियों और न्यायाधीशों का वेतन भी राष्ट्रपति द्वारा कम किया जा सकता है।

9. भारतीय लेखा परीक्षक और कम्पट्रोलर के द्वारा राज्यों पर नियन्त्रण की व्यवस्था (System of Control over States through the Comptroller and Auditor General of India): भारतीय मुख्य लेखा परीक्षा अधिकारी और परीक्षक संघ और राज्यों दोनों के खातों की लेखा-पड़ताल और रख-रखाव के लिए उत्तरदायी होता है। वह केन्द्र सरकार का अधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है। उसकी शक्तियों और उत्तरदायित्वों का निर्णय संसद् के द्वारा किया जाता है। राज्यों के द्वारा अपने लेखा-खाते रखने के ढंग का निर्णय भारतीय मुख्य लेखा परीक्षक के द्वारा किया जाता है। राज्यों को खाते तैयार करने और इनकी लेखा-पड़ताल के लिए उसके आदेशों और निर्णय का पालन करना पड़ता है।

10. वित्तीय आयोग (The Finance Commission): संविधान के अनुच्छेद अनुसार 280 के द्वारा राष्ट्रपति को पांच वर्ष के अन्तराल के पश्चात् या फिर जब भी राष्ट्रपति उचित समझें, एक वित्तीय आयोग स्थापित करने की शक्ति दी गई है। आयोग के पास राज्यों और केन्द्र के मध्य करों से होने वाली आय की विभाजन के लिए सिफारिशें करने की शक्ति होती है। यह राज्यों को दी जाने वाली सहायता और वित्तीय सहायता के ढंग का निर्णय भी करता है। वित्त आयोग ही संघ और राज्यों में आय और करों के विभाजन के बारे निर्णय देता है।

11. केन्द्रीकृत नियोजन (Centralised Planning): भारत में प्रचलित केन्द्रीकृत नियोजन की प्रणाली भी राज्यों पर बढ़ते केन्द्रीय नियन्त्रण को दृढ़ तथा प्रकट करती है। योजना आयोग एक केन्द्रीय संस्था है जो राज्यों के लिए विकास योजनाएँ बनाता है और स्रोतों से सम्बन्धित योजनाएँ और लक्ष्य राज्यों के लिए निर्धारित करता है। राज्य अपने अधिकार क्षेत्र में भारी और पूंजी निवेश उद्योगों को स्थापित करने के लिए केन्द्र पर निर्भर होते हैं।

बैंकों, जीवन बीमा और साधारण बीमे के राष्ट्रीयकरण के पश्चात्, वित्तीय प्रबन्ध में संघ की भूमिका कई गुना बढ़ गई है।

पंचायती राज्य क़ानून के द्वारा संघ सरकार ने 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायती राज्य संस्थाओं को कुछ अधिक वित्तीय स्रोत और शक्तियाँ दी हैं। इससे जिला नियोजन बोर्ड भी शक्तिशाली हुए हैं।

वित्तीय सम्बन्धों का उपर्युक्त लेखा-जोखा भी वित्तीय सम्बन्धों के सम्बन्ध में संघ की राज्यों पर श्रेष्ठता प्रकट करता है। राज्य वित्तीय सहायता और ऋण लेने के लिए संघ पर निर्भर रहते हैं। संघ की आय के स्रोत राज्यों की आय के स्रोतों से अधिक हैं। अनुच्छेद 360 के द्वारा संघ को वित्तीय संकटकाल की स्थिति की घोषणा करने की शक्ति; वित्त आयोग नियुक्त करने की शक्ति, और संघ के वित्तीय स्रोतों सहित इनके नियोजन की शक्ति, संघ को भारत में राज्यों की तुलना में श्रेष्ठता प्रदान करता है। पश्चिमी बंगाल बनाम भारतीय संघ के मुकद्दमे में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "वित्तीय मामलों में, चाहे राज्यों और संघ के पास अपनी-अपनी संचित निधियां होती हैं परन्तु राज्यों को विभाजित किए गए करों में निधियों की प्राप्ति के लिए और वित्तीय सहायता के लिए संघ पर निर्भर करना पड़ता है।" राज्यों के वित्तीय क्षेत्र में संघ का कोई प्रत्यक्ष नियन्त्रण तो नहीं है परन्तु राज्यों पर इस क्षेत्र में सदैव ही अप्रत्यक्ष संघीय दबाव बना रहता है। संघ, वित्तीय मामलों में सदैव ही राज्यों को इसके परामर्श लेने के लिए विवश कर सकता है। यह स्पष्ट है कि राज्य वित्तीय सहायता के लिए संघ पर निर्भर करते हैं क्योंकि "कर लगाने की निश्चित सीमा के कारण उनके स्रोत अपर्याप्त होते हैं।"

इन तीन क्षेत्रों-वैधानिक, प्रशासकीय और वित्तीय क्षेत्रों में, संघ और राज्यों के सम्बन्ध भारतीय संघीय प्रणाली में एकात्मक भावना को प्रमुख रूप में प्रकट करते हैं। भूतकाल में संघीय प्रणाली का व्यवहार केन्द्रवाद के बढ़ती हुई प्रवृत्ति की ओर संकेत करता रहा है। राज्य सूची में प्रभावी मौलिक 66 विषयों की जगह अब केवल 61 विषय हैं। संघीय सूची में 97 विषय शामिल हैं और समवर्ती सूची, जिस पर संघ का प्रमुख अधिकार है, में भी वास्तविकता से 5 अधिक विषय अर्थात् कुल 52 विषय अब शामिल हैं। संघ सरकार कई बार राज्यों से 'बड़े भाई' (Big Brother) वाला व्यवहार करती है। राज्य, विशेषत: वित्तीय मामलों में स्वायत्तता की मांग करते रहे हैं। भारतीय संघात्मक व्यवस्था में संघ और राज्यों की स्थिति टकराव वाली भी बनी रही है। कई मुद्दों पर संघ और राज्यों के अलग-अलग और विरोधी विचार रहे हैं। समय की मांग यह है कि भारत को एक परस्पर सहयोगी संघ बनाया जाए। सरकारिया आयोग ने कुछ सुधारों की सिफ़ारिश करते हुए शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता को तो स्वीकार किया है, परन्तु साथ ही इसने संघ और राज्यों दोनों के द्वारा परस्पर सहयोगी ढंग से भारतीय संघीय प्रणाली का प्रबन्ध चलाने की सिफ़ारिश की है। स्वस्थ, शक्तिशाली तथा स्वायत्तता प्राप्त राज्यों का सक्रिय अस्तित्व भारतीय संघ की एकता एवं शक्ति के लिए आवश्यक है।

6.4 भारतीय संघीय प्रणाली के तनाव क्षेत्र (Tension Areas of Indian Federal System)

लगभग सात दशकों के समय से भारत में, 'एकात्मक संघवाद' या 'शक्तिशाली केन्द्र के अस्तित्व वाली संघीय संरचना' ही कार्य कर रही है। परन्तु इतना लम्बा समय बीतने पर भी भारत में परस्पर सहयोगी तथा आदर्श संघवाद प्रणाली विकसित नहीं हो सकी। संघ सरकार लगभग सदैव ही संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार अपनी श्रेष्ठ स्थिति स्थापित रखने और अपनी भूमिका को उत्तम ठहराने में यत्नशील रही है। कई बार, केन्द्र में सत्ताधारी दल ने अपने दल के हितों के लिए इस प्रणाली को अपनी इच्छानुसार प्रयोग करने का प्रयास किया है, विशेष रूप में उन राज्यों के सम्बन्ध में जिनमें किसी अन्य दल का शासन था। राज्यों ने भी कई बार अपने क्षेत्रीय हितों की प्राप्ति के लिए ईर्ष्या भरी तथा टकरावपूर्ण प्रवृत्ति अपनाई। ऐसे राज्यों ने जहाँ कि समय-समय पर क्षेत्रीय दल सत्ता में आए, राज्यों के लिए और अधिक अधिकारों की मांग की। भारतीय संघीय प्रणाली में राज्यों की स्वायत्तता की मांग भी सदैव विद्यमान रही है।

एक ओर संघ सरकार और शक्तिशाली केन्द्र की धारणाओं और दूसरी ओर, राज्य सरकारों की स्वायत्तता के समर्थकों में विवाद होने के कारण भारतीय संघीय प्रणाली का वातावरण कई बार टकराव वाला बना रहा है जिसमें कई तनाव क्षेत्र और मुद्दे विद्यमान रहे हैं। कुछ प्रमुख तनावपूर्ण मुद्दों या क्षेत्रों का संक्षिप्त विश्लेषण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है। राज्य मुख्य रूप में संघ और राज्यों के सम्बन्धों वाले सभी क्षेत्रों में केन्द्रीय पितृवाद (Central Paternalism) के विरुद्ध आवाज उठाते रहे हैं–

1. राजस्व के स्रोत और वित्तीय सम्बन्ध (Revenue Resources and Financial Relations): भारतीय संविधान के द्वारा किया गया वित्तीय स्रोतों का विभाजन और वित्तीय सम्बन्धों की प्रणाली तनाव पैदा करने वाले प्रमुख क्षेत्र रहे हैं। राज्य अपने कम स्रोतों के कारण और कर लागू करने के सीमित क्षेत्र के कारण अपने आप को संघ पर निर्भर समझते रहे हैं। वे सहायता राशि के लिए और करों से होने वाली आय की प्राप्ति के लिए संघ के द्वारा इकट्ठे किए गए करों पर निर्भर रहे हैं। यद्यपि संविधान के द्वारा निर्धारित राज्यों के वित्तीय स्रोतों पर संघ का कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता परन्तु संघ सदैव ही राज्यों पर अप्रत्यक्ष ढंगों से दबाव डालता रहा है। "संघ सदैव ही राज्यों को वित्तीय सम्बन्धों के मामले में इसको समर्थन लेने के लिए विवश करता रहा है।" जिस ढंग से राज्यों को सहायता राशि देते समय केन्द्रीय सरकार के द्वारा व्यवहार किया जाता रहा है, वह भी राज्यों में प्रतिक्रिया पैदा करने का महत्त्वपूर्ण स्रोत रहा है। राज्य इसको उनकी स्वायत्त पर गंभीर प्रतिबंध समझते रहे हैं। वे राज्य जहाँ केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के अतिरिक्त कोई अन्य दल सत्ता में होता है, वहाँ की सरकार प्रायः ही आय के विभाजन और सहायता राशि की प्राप्ति के मामले में केन्द्र की पक्षपातपूर्ण प्रवृत्ति और सौतेली माँ वाले व्यवहार की शिकायत करती है। भूतकाल में आंध्र प्रदेश में एन.टी. रामा राव, पश्चिमी बंगाल में ज्योति बसु, कर्नाटक में राम कृष्ण हेगड़े, तमिलनाडु में करुणानिधि ने सदैव ही कांग्रेस के द्वारा शासित केन्द्र के द्वारा उनके सम्बन्धित राज्यों में पक्षपातपूर्ण प्रवृत्ति अपनाने के विरुद्ध आवाज उठाई थी। राज्य सरकारों की यह निरन्तर शिकायत रही है कि केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के द्वारा दलीय हितों के लिए अपनी उत्तम वित्तीय शक्ति का प्रयोग किया जाता रहा है। योजना बनाने के क्षेत्र में राज्यों के पास कोई स्वायत्तता नहीं और इसके लिए इनको संघ पर निर्भर करना पड़ता है। राज्यों को स्रोतों और सहायता राशि का विभाजन करते समय योजना आयोग और वित्त आयोग सामान्य रूप में केन्द्रीय निर्देशों पर ही चलते रहे हैं। बाजारी ऋण से होने वाली अपनी आय का 80 से 90 प्रतिशत भाग केन्द्र द्वारा रखा जाता है और शेष 10 से 20 प्रतिशत भाग राज्यों के लिए छोड़ दिया जाता है। *श्रीमती अरुणा चालन* के अनुसार, "भारतीय संघ की राज्यों पर शक्तिशाली वित्तीय जकड़ है। देश के वित्तीय सम्बन्धों में केन्द्र ही आधारभूत निर्णय करता है और वही अन्तिम होते हैं।" राज्यों के द्वारा विकास योजनाओं को उचित और प्रभावशाली ढंग से लागू करने के लिए अधिक वित्तीय स्रोतों और अधिक वित्तीय स्वायत्तता की माँग की जाती रही है। वह संघ को करों से होने वाली कुल सरकारी आय में से राज्यों का केवल 25 प्रतिशत या इससे भी कम भाग होने से नाराज रहे हैं। दूसरी ओर, संघ सरकार वर्तमान व्यवस्था को उचित ठहराती रही है और राज्यों पर अपने स्रोत गैर-उत्पादनशील निवेशों पर लगाने और अपने स्रोतों के एकत्रीकरण में अयोग्यता के व्यवहार का आरोप लगाती है जो राज्यों के वित्तीय गैर-उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार को प्रकट करता रहा है। यह भी तर्क दिया जाता रहा है कि केन्द्र पर संघ के प्रशासन के अतिरिक्त आंतरिक सुरक्षा, आंतरिक और विदेशी ऋणों की व्यवस्था करने, भोजन और खादों पर दी जाने वाली छूटों सहित देश की रक्षा का उत्तरदायित्व होता है। इसी प्रकार संघ और राज्यों के मध्य सरकारी आय तथा वित्तीय स्रोतों के विभाजन में और वित्तीय सम्बन्धों में तनाव बना रहा है।

2. राज्यपाल की भूमिका (Role of Governor): संविधान के अनुसार, राज्यपाल की दोहरी भूमिका निश्चित की गई है राज्य में संघ के एजेंट के रूप में और राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में। अपनी पहली भूमिका के अनुसार राज्यपाल विश्वसनीय बनाता है कि राज्य सरकार संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार कार्य करे। इसके साथ-साथ वह केन्द्र के अधिकारों की रक्षा के लिए भी कार्य करता है। उसकी ऐसी भूमिका प्रायः उसको राज्य सरकार की दृष्टि में सन्देहशील बना देती है। राज्यपाल को नियुक्त करने और हटाने की व्यवस्था राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है और राष्ट्रपति इस सम्बन्ध में सदैव ही संघीय कैबिनेट के परामर्श पर व्यवहार करता है। इसके

परिणामस्वरूप राज्यपाल केन्द्र में अधिकृत दल का एजेंट बन जाता है। राज्यपाल के पद की राजनीतिक नियुक्तियाँ, केन्द्र में सरकार बदलने के पश्चात् राज्यपालों का हटाया जाना, राज्यपाल और राज्य के मुख्यमंत्री के मध्य टकराव, केन्द्र के द्वारा राजनीतिक व्यक्तियों को राज्यों का राज्यपाल बना देना और कुछ राज्यपालों की पक्षपातपूर्ण प्रवृत्ति यह सभी संघ और राज्यों के मध्य टकराव पैदा करने वाले कारक रहे हैं। राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में कार्य करते समय राज्यपाल प्राय: संघ सरकार और राज्य सरकार के मध्य राजनीतिक खेल में शामिल हो जाता रहा है। यह विशेषकर तब होता रहा है जब राज्य सरकार उस दल की हो जो केन्द्र में सत्ता में न हो। जम्मू-कश्मीर में श्री जगमोहन (1998), आंध्र प्रदेश में श्री राम लाल (1984), असम के राज्यपाल (1990), कर्नाटक के राज्यपाल (1990) और उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री रमेश भंडारी (1996) 2005 में झारखंड के तथा बिहार के राज्यपालों के व्यवहार सीमा तक पक्षपात पूर्ण वृत्ति दिखाई दी। 1984 में कश्मीर, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश के राज्यपालों के, 1989 में कर्नाटक के राज्यपाल व 2005 में झारखण्ड के राज्यपाल ने राज्यों में राज्यपालों की भूमिका के सम्बन्ध में फैले विवाद में जलती पर घी डालने का कार्य किया। राज्यों के कई बिलों के सम्बन्धों में राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करने (अनुच्छेद 200) में राज्यपाल की भूमिका भी कई बार पक्षपाती और गैर-उत्तरदायी रही है। तमिलनाडु की मुख्यमंत्री कुमारी जयललिता के विरुद्ध पुलिस कार्यवाही आरंभ करवाने के सम्बन्ध में वहाँ के राज्यपाल श्री चेन्ना रेड्डी की भूमिका बड़ी विवादग्रस्त रही थी। तमिलनाडु विधानसभा ने तो श्री रेड्डी को वापस बुलाने का प्रस्ताव ही पास कर दिया था। 1996-97 के दौरान उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रमेश भंडारी का आचरण भी विवाद-पूर्ण रहा। राज्यपालों के ऐसे व्यवहार संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों में तनाव का स्रोत रहे हैं।

कई बार राज्यपालों की नियुक्ति के मुद्दे पर संघ और राज्यों के मध्य विवाद पैदा हो जाता रहा है। राज्य सरकार किसी विशेष व्यक्ति को राज्यपाल स्वीकार करने में अपनी नाराजगी को प्रकट करती है। जैसा कि पश्चिमी बंगाल की साझे मोर्चे की सरकार कभी भी राज्यपाल धर्मवीर को स्वीकार करने और उसको सहन करने के लिए तैयार नहीं थी।

राज्यपाल की स्वैच्छिक शक्तियों (Discretionary Powers), जिनमें अनुच्छेद 356 की व्यवस्थाओं के अधीन राष्ट्रपति को राज्य सरकार भंग करने की सिफारिश करने की शक्ति शामिल है, भी संघ और राज्यों में विरोध का एक स्रोत रहा हैं। मई 2005 में बिहार के राज्यपाल श्री बूटा सिंह द्वारा राज्य विधान सभा को भंग किए जाने की सिफारिश ने भी काफी विवाद को जन्म दिया। अलग-अलग राज्यपालों ने राज्यों में सत्तारूढ़ दल/दलों के बहुमत के मुद्दे का निर्णय करने के लिए अलग-अलग मापदंडों का प्रयोग किया है। सामान्य रूप में राज्यपाल स्वतंत्र और निष्पक्ष रैफरी की भूमिका नहीं निभाते रहे। वे केन्द्रीय एजेंट के रूप में कार्य करते रहे हैं और अपनी बुद्धि को निष्पक्ष ढंग से नहीं प्रयोग करते रहे हैं। इस समस्त प्रक्रिया में वे स्वयं विवादग्रस्त हो जाते रहे हैं। बीते समय में राज्यों के राज्यपालों के द्वारा केन्द्र सरकार के द्वारा अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग ने भी राज्यपाल के पद को विवादग्रस्त बनाए रखा। कांग्रेस के द्वारा नियुक्त किए गए राज्यपालों ने संघ की सरकार के नेतृत्व में कई बार गैर-कांग्रेसी राज्य सरकारों के मुख्यमंत्रियों के विरुद्ध पक्षपाती प्रवृत्ति अपनायी। ऐसा कुछ केन्द्र में जनता सरकार के द्वारा नियुक्त किए गए राज्यपालों के द्वारा मार्च, 1977-1979 और नवम्बर, 1989 से जून, 1991 में किया। 1996-97 दौरान, उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री रमेश भंडारी का व्यवहार भी निष्पक्ष नहीं था। वास्तव में गुजरात और उत्तर प्रदेश के सम्बन्ध में प्रथम साझा मोर्चा सरकार ने प्रधानमंत्री श्री एच.डी. देवगौड़ा अधीन अनुच्छेद 356 का उचित प्रयोग नहीं किया। 1967 के चौथी आम चुनावों के पश्चात्, राज्यपाल राज्य के मुख्यमंत्रियों को सत्ता से हटाने की दौड़ में केन्द्रीय एजेंट बन गए थे। ऐसी परिस्थितियों में उन्होंने केन्द्र के द्वारा निश्चित किए गए या वांछित लक्ष्यों को पूर्ण करने के लिए भिन्न-भिन्न तरह से कार्य किया। राज्य में 'नापसंद पार्टी' की सरकार के विरुद्ध अनुच्छेद 356 के प्रयोग में संघ की सहायता करने में राज्यपाल की भूमिका ने और संवैधानिक संकटकाल के समय में उसके द्वारा राज्य के प्रशासन चलाने ने भी राज्यपाल के पद को विवादास्पद बना दिया। कई राज्यपालों के द्वारा राज्य विधान सभाओं को स्थगित करने/भंग करने के मुद्दे पर निभाई गई पक्षपातपूर्ण भूमिका ने जलती पर तेल डालने का कार्य किया। राज्य, सामान्य रूप में, राज्यपाल को 'बाहरी शक्ति से शासन करने वाला शासक' समझते रहे हैं और इसके लिए उसको थोपा गया

नोट

अनैच्छिक व्यक्ति समझा जाता रहा है। राज्य चाहते हैं कि राज्यपाल सदैव मुख्यमंत्री के परामर्श के अनुसार कार्य करे और राज्य के लोगों को अपने राज्यपाल का निर्वाचन करने का अधिकार होना चाहिए। कम-से-कम इस बात की व्यवस्था होनी चाहिए कि संघ सरकार की अपनी इच्छा के अनुसार राज्य के राज्यपालों को नियुक्त करने, उनका स्थानांतरण करने तथा उनको पद-मुक्त करने की शक्ति पर आवश्यक कुछ रोक होनी चाहिए। मई 2004 में सत्ता में आने के पश्चात् यू.पी.ए. सरकार का कई राज्यों के राज्यपालों को इकट्ठे पद-मुक्त करने का निर्णय उचित नहीं था। इससे यह स्पष्ट दिखाई दिया कि केन्द्र सरकार अपनी पसंद के राज्यपालों को ही नियुक्त करनी चाहती थी।

वास्तव में भारतीय संघीय प्रणाली में राज्यपाल का पद भी एक विवाद तथा तनाव का मुद्दा रहा है।

3. अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग (Misuse of Article 356): अनुच्छेद 356 के अनुसार, राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह राज्य में संवैधानिक मशीनरी असफल होने की परिस्थिति में किसी राज्य सरकार के भाग्य का निर्णय कर सकता है। राष्ट्रपति यह निर्णय अपनी इच्छानुसार या राज्य के राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर ले सकता है। वास्तव में, राष्ट्रपति को अपने सभी निर्णय संघ सरकार के परामर्श के अनुसार करने होते हैं और राज्यपाल की रिपोर्ट का महत्त्व कम ही होता है। कई बार संघ सरकार के द्वारा भी राज्यपाल से रिपोर्ट की माँग कर ली जाती है। कोई राज्य सरकार तब भंग कर दी जाती है जब राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य में संवैधानिक संकटकाल स्थिति का घोषणा कर दे। तब तक संघ ने लगभग 105 बार इस अनुच्छेद का प्रयोग किया है और अधिकतर मामलों में इस अनुच्छेद का प्रयोग राजनीतिक हितों के लिए किया जाता रहा है अर्थात् यह कि उस राज्य सरकार को स्थगित करने के लिए की जाती रही है जहाँ कि कोई विरोधी दल या कोई विरोधी नेता शासन चला रहा होता था या राज्य में सरकार गठन करने का प्रयास कर रहा होता था और जो केन्द्र में नेतृत्व वाले शासक दल के लिए अनैच्छिक और असहनीय दल या नेता माना जाता था। 11 मार्च, 1994 को सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि राष्ट्रपति घोषणा अधीन अनुच्छेद 356 का प्रयोग के अधीन 1988 में नागालैंड और 1989 में कर्नाटक और 1991 में मेघालय की राज्य विधान सभाएँ भंग करना गैर-संवैधानिक था। मई 2005 में बिहार के राज्यपाल बूटा सिंह का राज्य विधानसभा भंग करने का निर्णय निश्चय ही राजनीति से प्रभावित था। अनुच्छेद 356 राज्यों की स्वायत्तता पर निरन्तर विद्यमान खतरा प्रतीत होता है—यह संघ के हाथों में एक ऐसा शस्त्र है जिसके प्रयोग से संघ किसी राज्य सरकार को सत्ता से अलग कर सकता है। राज्य चाहते हैं कि संवैधानिक संशोधन के द्वारा इस 'सत्तावादी अनुच्छेद' को समाप्त किया जाना चाहिए क्योंकि जब तक यह अस्तित्व में रहेगा, राज्य कभी भी सच्चे अर्थों में स्वायत्तता प्राप्त नहीं कर सकते और वे स्वयं को केन्द्र के दबाव से स्वतंत्र अनुभव नहीं कर सकते। टी.डी.पी., डी.एम.के., ए.जी.पी., सी.पी.आई., सी.पी.एम., एस.ए.डी. और कुछ अन्य दल इस विवादग्रस्त और संघ विरोधी अनुच्छेद को समाप्त करने की वकालत करते रहे हैं।

4. संविधान में संशोधन करने की शक्ति का दुरुपयोग (Misuse of Power to Amend the Constitution): केवल संघ सरकार के पास ही संविधान संशोधन करने की व्यापक शक्ति है। केवल कुछ संशोधन करने के लिए कम-से-कम आधी राज्य विधान सभाओं की स्वीकृति आवश्यक होती है। संघ के पास अपनी शक्तियाँ बढ़ाने के लिए संविधान में संशोधन करने की शक्ति है और पिछले समय में कुछ ऐसे ही संशोधन करने के कारण राज्यों को उपलब्ध शक्तियों का क्षेत्र कुछ सीमित हो गया है। राज्य सूची में पहले 66 विषय शामिल थे, परन्तु अब इसमें प्रभावी रूप में 61 विषय रह गए हैं। समवर्ती सूची में 5 नए विषय किए गए हैं। संघ के 97 विषयों और समवर्ती 52 विषयों, जिन पर संघ को प्राथमिकता प्राप्त है, और कई अवशेष विषयों सहित संघ अधिक शक्तिशाली केन्द्र के रूप में भारतीय संघात्मक व्यवस्था में कार्य करता रहा है। संविधान के द्वारा संघ को संघ-राज्य सम्बन्धों के सम्बन्ध में तीनों क्षेत्रों—वैधानिक, प्रशासकीय और वित्तीय में अधिक महत्त्वपूर्ण और व्यापक भूमिका दी गई है। भारतीय संघीय प्रणाली के कार्य-व्यवहार ने संघ को राज्यों से अधिक शक्तिशाली बना दिया है और इस प्रक्रिया में संवैधानिक संशोधन, संसदीय कानून, केन्द्रीय नीतियों, केन्द्रीकृत नियोजन और न्यायिक निर्णयों ने संघ के लिए सहायक भूमिका निभाई है। राज्य, संघ को और अधिक शक्ति देने का विरोध करते रहे हैं। राज्य विकेन्द्रीकरण चाहते हैं और वे चाहते हैं कि राज्यों को अधिक स्रोत और शक्तियाँ दी जाएँ।

5. राज्यों में केन्द्रीय बलों को लगाया जाना (Deployment of Central Forces in the States): संघ और राज्यों में विवाद का एक अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दा संघ के द्वारा राज्यों में केन्द्रीय बलों-सी.आर.पी.एफ., बी.एस.एफ., आई.टी.बी.पी., पी.आई.एस.एफ., ब्लैक कैट कमांडोज आदि को लगाया जाना रहा है। राज्य में संकट के समय के दौरान जैसा कि साम्प्रदायिक दंगों या हड़तालों के समय राज्य स्वयं संघ से केन्द्रीय बलों की आवश्यक माँग करते हैं और प्राय: ही कम संख्या में या इनको देर से भेजे जाने की शिकायतें करते रहे हैं। परन्तु कई बार जब कभी संघ, केन्द्रीय सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए या सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्यों में केन्द्रीय बलों की नियुक्ति करता है तो राज्य सरकारें, विशेष रूप में उन राज्यों की जहाँ केन्द्र में सत्तारूढ़ दल के अतिरिक्त कोई अन्य दल के हाथ में नियंत्रण हो, इस निर्णय का दृढ़ विरोध करते हैं। पश्चिमी बंगाल जहाँ कि लम्बे समय से वामपंथी दल सत्ता में हैं, ने सदैव ही केन्द्रीय बलों की नियुक्ति का विरोध किया है। 1968 और 1969 में केरल सरकार के द्वारा रेलवे कर्मचारियों की हड़ताल के द्वारा पैदा हुई स्थिति से निपटने के लिए और केन्द्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए संघ के द्वारा सी.आर.पी.एफ. की नियुक्ति की जोरदार निंदा की गई थी। पंजाब में गुरनाम सिंह सरकार ने राज्य सरकार की सलाह के बिना सी.आर.पी.एफ. की नियुक्ति की निंदा की थी। कई नेताओं के द्वारा भी राज्यों में उग्रवाद पर नियंत्रण पाने के लिए केन्द्रीय बलों का प्रयोग करने की निंदा की जाती रही है। परन्तु केन्द्र राज्यों के परामर्श या सहमति से या इसके बिना राज्यों में सी.आर.पी.एफ. भेजने के अधिकार का निरन्तर प्रयोग करता रहा है। यह भी तनाव का एक क्षेत्र बना रहा है।

6. राज्यों के द्वारा संघ-कानूनों को लागू न करने का मुद्दा (The Issue of Non-implementation of Union Laws by the States): संविधान के अनुसार राज्य सरकारों का अपने-अपने राज्य के भू-क्षेत्रों में संघ के कानून लागू करने का उत्तरदायित्व होता है। इस उद्देश्य के लिए, संघ राज्यों को निर्देश भी जारी कर सकता है। राज्यों का यह संवैधानिक उत्तरदायित्व है कि वे अपनी शक्तियों का प्रयोग इस ढंग से करें जो संघ के कानून लागू करने में सहायक सिद्ध हो। कई बार राज्य सरकारें संघ के बनाए किसी विशेष कानून को लागू करने के पक्ष में नहीं होती जो उनके अनुसार इसकी नीतियों और कार्यक्रमों में बाधा पैदा करने वाला समझा जाता है। 1968 में, केरल सरकार के द्वारा केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के द्वारा की गई हड़ताल रोकने के लिए संघ के द्वारा जारी किया गया आवश्यक सेवाएँ अध्यादेश (Essential Services Ordinance) को लागू करने से इंकार कर दिया था। 1979 में बिहार, गुजरात, हरियाणा, हिमाचल, राजस्थान (सभी जनता पार्टी की सरकारें), तमिलनाडु (ए.आई.ए.डी.एम.के. सरकार), त्रिपुरा और पश्चिमी बंगाल (वामपंथी सरकारें) ने गुप्त धन और काला बाजारी रोकने के लिए केन्द्र में चरण सिंह सरकार के द्वारा जारी किया गया निवारक नजरबंदी अध्यादेश (Preventive Detention Ordinance) लागू करने से इंकार कर दिया था। राज्य सरकारों की ऐसी गतिविधियों से केन्द्र-राज्य विवाद और गहरे हो जाते रहे हैं। संघ सरकार के पास अनुच्छेद 365 के अधीन किसी राज्य में ऐसी स्थिति से और संवैधानिक मशीनरी की असफलता से निपटने की शक्ति होती है और इस प्रकार वह अनुच्छेद 356 के अधीन संवैधानिक संकटकाल की स्थिति लागू करने के लिए विवश हो जाता रहा है। 1990 में तमिलनाडु में डी.एम.के. सरकार के स्थगन का निर्णय इसी आधार पर किया गया था। यह अनुभव किया गया था कि डी.एम.के. सरकार श्रीलंका के उन तामिल उग्रवादियों के विरुद्ध केन्द्रीय कानून लागू नहीं कर रही थी जो तमिलनाडु में रह रहे थे। केन्द्र के ऐसे निर्णयों का सदैव राज्यों द्वारा विरोध किया जाता रहा है।

7. राज्यों के विरुद्ध भेदभाव (Discrimination against States): राज्य दो केन्द्रीय एजेंसियों-योजना आयोग और वित्त आयोग के द्वारा राजस्व के विभाजन और केन्द्रीय सहायता राशि देने के मुद्दे पर भी नाराज़ रहे हैं। संघ सरकार पर कुछ राज्यों के पक्ष में और कुछ राज्यों के विरुद्ध भेदभाव करने का आरोप लगाया जाता रहा है। उन राज्यों के विरुद्ध जहाँ 'विरोधी' दल शासन करते थे, यह दोष लगाया जाता है कि बड़े उद्योगों को स्थापित करने के निर्णय करते समय केन्द्र ने कुछ राज्यों जैसा कि पंजाब, हरियाणा, हिमाचल और जम्मू-कश्मीर को कथित रूप में उपेक्षित किया था। पंजाब में जहाँ कि प्रति व्यक्ति आय सबसे अधिक है, वहाँ केवल दो बड़े उद्योग-नंगल फर्टीलाइजर्स और रेल कोच फैक्टरी ही स्थापित किए गए हैं। राज्य में आतंकवाद से निपटने के लिए

नोट

पंजाब को दिए गए ऋण को माफ करने में की गई हिचकिचाहट और देरी की पंजाब की एस.ए.डी., बी.जे.पी. सरकार के द्वारा कड़ी आलोचना की गई और इसको केन्द्र का सौतेली माँ वाला व्यवहार कहा गया। दक्षिणी राज्यों, विशेष रूप में तमिलनाडु के द्वारा कई अवसरों पर, 1967, 1975 और 1982 में केन्द्रीय पूल के द्वारा भोजन (चावल) की कम सप्लाई की शिकायत की गई थी। पश्चिमी बंगाल सरकार (वाम मोर्चे की सरकार) के द्वारा 1980 के दशक में कार्य के प्रति भोजन प्रोग्राम के अधीन यहाँ की जनता को दिए जाने वाले भोजन में केन्द्रीय भेदभाव का दृढ़ विरोध किया गया था। वित्तीय आयोगों ने भी शायद ही कभी राज्यों को कुल सरकारी आमदनी के 30 प्रतिशत से अधिक की स्वीकृति दी हो। योजना आयोग ने सदैव ही संघ की लंबी बाजू बनकर कार्य किया है। राष्ट्रीय नियोजन द्वारा, संघ की भूमिका को सदैव बढ़ाया गया है और इससे राज्यों की भूमिका को घटाने का प्रयास किया गया है। इसने संघ का राज्यों पर नियंत्रण को बढ़ाया है। राज्य विषयों को राष्ट्रीय योजनाओं के द्वारा संघ द्वारा हड़प लिया गया है। उदाहरणस्वरूप, सामुदायिक विकास कार्यक्रम एक राज्य विषय है परन्तु इसको केन्द्र के द्वारा नियंत्रित कार्यक्रम के अधीन चलाया जाता रहा है। कई राज्यों की सरकारों ने यह भी दोष लगाया है कि 73वीं और 74वीं संशोधन के द्वारा संघ द्वारा पंचायतों और शहरी स्थानीय सरकारों की शक्तियों और वित्तीय साधन सौंपने ने राज्यों के अधिकार को सीमित किया है। *के. संथानम* कहते हैं, "नियोजन ने संघवाद पर अधिकार कर लिया है और हमारा देश कई तरह से एक एकात्मक व्यवस्था के रूप में कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय विकास कौंसिल भी अपनी भूमिका निभाने में असफल रही है। राज्यों को केन्द्रीय सहायता देने में सदैव भेदभाव किया जाता रहा है। भारतीय संघवाद में यह एक तनाव का क्षेत्र बना रहा है।"

8. राज्यों में होने वाले चुनावों और राज्य विधानसभा के उप-चुनावों को भेदभावपूर्ण ढंग से स्थगित करने का मुद्दा (Discriminatory Postponement of Elections and By-elections to State Assemblies)—भारत में निर्वाचन करवाने का उत्तरदायित्व निर्वाचन आयोग का होता है जो एक स्वतन्त्र संवैधानिक आयोग है जिस के पास संविधान के पास संविधान के द्वारा दी गई शक्तियाँ होती हैं। परन्तु, कई बार, संघ सरकार के द्वारा राज्यों में पक्षपाती आधार पर विधानसभा चुनाव और उप-चुनाव स्थगित करने के लिए निर्वाचन आयोग पर दबाव डाला जाता रहा है। निर्वाचन आयोग पश्चिमी बंगाल विधानसभा के उप-चुनाव 23 नवम्बर, 1980 को राज्य सरकार की प्रार्थना पर करवाने के लिए सहिमत था परन्तु कांग्रेस शासित केन्द्र के दबाव अधीन उप-चुनाव स्थगित करने पड़े थे। इसी प्रकार, संघ सरकार ने कई बार राज्यों में एक वांछित चुनाव कैलेण्डर के अनुसार चुनाव संगठित करवाने के लिए निर्वाचन आयोग पर प्रभाव डालने का प्रयास किया है। पंजाब में केन्द्र के दबाव अधीन ही निर्वाचन आयोग के द्वारा जून, 1991 को चुनाव स्थगित किए गए थे जिसका कई एक राजनीतिक दलों के द्वारा जोरदार विरोध किया गया था।

9. संघ के द्वारा रेडियो और टी.वी. का अधिक उपयोग (Over Use of Radio and T.V. by the Union)—रेडियो और टैलीविज़न संचार के दो शक्तिशाली साधन हैं जिन पर केन्द्र का नियन्त्रण है। संघ सरकार स्वयं तो इनका प्रयोग अपनी नीतियों का प्रचार करने के लिए कर सकती है, परन्तु यह किसी विशेष राज्य सरकार या सरकारों की नीतियों और कार्यक्रमों की ओर आलोचक प्रवृत्ति अपनाने या उनको निरुत्साहित करने के लिए भी इन साधनों पर प्रभाव डाल सकती है। राज्य के नेताओं, मुख्यमन्त्रियों और अन्य मन्त्रियों को समाचारों के बुलेटिन में उपेक्षित किया जा सकता है या उनको राज्य के क्षेत्र में सम्बन्धित राज्य के लोगों को रेडियो और टी.वी. स्टेशनों के द्वारा सम्बोधित करने का अवसर देने से इनकार किया जा सकता है। जून, 1983 में आल इंडिया रेडियो हैदराबाद ने मुख्यमन्त्री एन.टी. रामा राव को रेडियो भाषण देने की आज्ञा नहीं दी थी। रेडियो और टी.वी. स्टेशन राज्य के मन्त्रियों के द्वारा इन संचार साधनों पर दिए जाने वाले भाषण में कांट-छांट करनी या सैंसर लगाना चाहते हैं जबकि सम्बन्धित मन्त्री अपने भाषण में कांट-छांट स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होते। इस प्रकार संचार साधनों का प्रयोग भी संघ-राज्य सम्बन्धों में तनाव का क्षेत्र रहा है।

10. अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services)—अखिल भारतीय सेवाओं आई.ए.एस. और आई.पी.एस. के अधिकारी राज्य प्रशासन में सभी प्रमुख पदों पर कार्य करते हैं। उनकी भर्ती संघ लोक सेवा आयोग

के द्वारा की जाती है और संघ के गृह-मन्त्रालय के द्वारा उनको अलग-अलग राज्य बांटे जाते हैं। उनके व्यवहार (आचरण) पर केन्द्रीय कानूनों का नियन्त्रण होता है और राज्य सरकारें उनके विरुद्ध बहुत कम कार्यवाही कर सकती है। संघ सरकार उनको अपने निर्णय लागू करवाने के लिए निर्देश जारी कर सकती है। ऐसे निर्देशों का उस राज्य सरकार, जहाँ के वे प्रशासक होते हैं, की नीतियों/कार्यक्रमों/निर्देशों के द्वारा विरोध किया जा सकता है या कई बार किया गया है। 1968 में केरल सरकार ने जब आवश्यक सेवाएँ अध्यादेश लागू करने से इनकार कर दिया तो संघ सरकार के निर्देशों को कैबिनेट सचिव और आई.जी. पुलिस के द्वारा लागू करवाया गया और राज्य में सी.आर.पी. एफ. को तैनात किया गया था। इसी प्रकार जब तमिलनाडु सरकार हिंदी-विरोधी आन्दोलनों के समय उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए तैयार नहीं थी जिन्होंने हिन्दी में लिखे बोर्ड खराब कर दिए थे, तब संघ सरकार के निर्देशों को प्रभावशाली बनाने के लिए आई.ए.एस. और आई.पी.एस. अधिकारियों का प्रयोग किया गया था। इसके अतिरिक्त संघ सरकार के द्वारा राज्य के राज्यपाल का प्रयोग मुख्यमन्त्री पर नज़र रखने के लिए भी किया जाता रहा है। यह तथाकथित आरोप लगाया गया था कि उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डॉ. एम. एन. बहुगुणा और उसके दूसरे मन्त्रियों पर नज़र रखने का कार्य सौंपा गया था। इसके लिए संघ के द्वारा राज्यों में अपने निर्देशों के पालन के लिए अखिल भारतीय सेवाओं का प्रयोग भी संघ-राज्य सम्बन्धों में तनाव का बिन्दु रहा है।

11. मुख्यमन्त्रियों के विरुद्ध जाँच आयोगों की नियुक्ति (Appointment of Enquiry Commissions against the Chief Ministers)—एक अन्य विशेषता जिस पर राज्यों को आपत्ति रही है, वह यह है कि संघ सरकार के पास राज्यों के मुख्यमन्त्रियों के विरुद्ध उनके कार्यकाल के दौरान हुई त्रुटियों और संचालन के कार्यों में तथाकथित आरोपों की जाँच के लिए जाँच आयोग नियुक्त करने की शक्ति होती है। उदाहरणस्वरूप 1963 में संघ सरकार ने पहली बार पंजाब के मुख्यमन्त्री प्रताप सिंह कैरों के विरुद्ध कुछ आरोपों की जाँच के लिए दास आयोग नियुक्त किया था। उसके पश्चात् कई राज्यों के मुख्यमन्त्रियों के द्वारा की गई अनियमितताओं की जाँच के लिए ऐसे कई आयोगों की नियुक्ति की गई—श्री प्रकाश सिंह बादल (पंजाब) के विरुद्ध छंगानी आयोग 1972, श्री करुणानिधि (तमिलनाडु) के विरुद्ध सरकारिया आयोग 1976, श्री वेनेगल राव (आंध्र प्रदेश) के विरुद्ध विमल दलाल आयोग, श्री सेन गुप्ता (त्रिपुरा) के विरुद्ध दुरमन आयोग (1979) और कई अन्य। राज्य के प्रशासन में उच्च पदों पर कार्य कर रहे लोक सेवकों (IAS, IPS अधिकारियों) के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही संघ सरकार ही कर सकती है। ऐसे अधिकारियों के कार्यों की जाँच-पड़ताल भी केन्द्र सरकार करती है।

12. अन्तर्राज्यीय झगड़े और संघ (Inter-State Disputes and the Union)—संघ सरकार के द्वारा विशेष और बड़े अन्तर्राज्यीय झगड़ों के निपटारे में देरी करने या असफल रहने से भी संघ-राज्य सम्बन्धों में तनाव पैदा हो जाता रहा है। पंजाब और हरियाणा के मध्य चंडीगढ़ और हिन्दी भाषायी क्षेत्रों को हरियाणा को देने तथा पंजाबी भाषायी क्षेत्रों को पंजाब को सौंपे जाने के मुद्दे एक विवाद का क्षेत्र बना रहा है। महाराष्ट्र और कर्नाटक में, कर्नाटक और तमिलनाडु में और असम और मणिपुर में सीमाबंदी का झगड़ा, महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में कृष्णा और कावेरी के जलों, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में नर्मदा के जल, कर्नाटक और तमिलनाडु में कावेरी के जल, और पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में रावी-व्यास जल के विभाजन/वितरण सम्बन्धित अन्तर्राज्यीय झगड़े तनाव पैदा करने वाले कारण बने रहे हैं।

13. राज्यों की स्वायत्तता की मांग (Demand for State Autonomy)—राज्यों के अनुसार संविधान के द्वारा संघीय ढांचे की रूप-रेखा में संघ को दी गई अधिक शक्तियों और राज्यों को दी गई शक्तियों में एक वांछित सन्तुलन नहीं बनाया गया। संघीय ढांचा एकात्मक भावना से कार्य करता रहा है। संविधान लागू होने से लेकर आज तक कई बार केन्द्र सरकार ने संघ-राज्य सम्बन्धों को अपने पक्ष में प्रभावित करने के अनुचित प्रयास किए हैं। इसके विपरीत राज्य अधिक-से-अधिक स्वायत्तता की माँग करते हैं। कुछ क्षेत्रीय राजनीतिक दलों जैसा कि पंजाब में अकाली दल, तमिलनाडु में डी.एम.के., ए.डी.एम.के., असम में ए.जी.पी. और कुछ अन्य दल यह माँग करते हैं कि केन्द्र के पास केवल चार या पाँच प्रमुख विषय जैसे सुरक्षा, विदेशी मामले आदि ही होने चाहिए। जुलाई, 2000 में जम्मू और कश्मीर विधानसभा ने तो स्वायत्तता के पक्ष में एक प्रस्ताव ही पास कर दिया। कुछ अन्य राज्य

नोट

अपने लिए अधिक वित्तीय स्रोतों, विकास योजनाओं बनाने और लागू करने की शक्तियों और बैंकिंग पर नियन्त्रण आदि की माँग करते रहे हैं। उन के अनुसार भारत संघ में शक्तिशाली राज्यों का अस्तित्व समकालीन समय की बड़ी आवश्यकता है। 1947 में देश के बटवारे के समय संघीय ढांचे में बहुत शक्तिशाली केन्द्र को अपनाने की आवश्यकता थी परन्तु अब जबकि समय बदल गया है, राज्यों को अधिक शक्तियाँ और स्रोत देने के लिए इस प्रणाली में संशोधन किये जाने की आवश्यकता है।

14. केन्द्र में नई सत्ताधारी पार्टी के आने के पश्चात् राज्य विधान सभाओं का भंग किया जाना (Dissolution of State Assemblies after Change of Guards at the Centre)–संघ और राज्यों में एक अन्य तनाव का क्षेत्र केन्द्र में शासक पार्टी के बदलने के पश्चात् व्यापक स्तर पर राज्य विधान सभाओं को भंग करने की नीति रही है। 1977 में जनता पार्टी की सरकार केन्द्र में सत्ता में आई तो इसने 9 राज्य विधान सभाओं को व्यापक स्तर पर भंग करके एक उदाहरण कायम किया। 1980 में कांग्रेस ने पुनः सत्ता में आने के पश्चात् वही कुछ किया जो इस जनता पार्टी ने 1977 में किया था। केन्द्र ने 1988 में नागालैंड विधान सभा, 1989 में कर्नाटक विधानसभा और 1991 में मेघालय विधानसभा भंग की थी। बाद में अनुच्छेद 356 के अधीन ऐसी कार्यवाहियों को सर्वोच्च न्यायालय के 9 सदस्यीय संवैधानिक बैंच के द्वारा असंवैधानिक ठहराया गया।

अनुच्छेद 356 के अधीन राज्य विधान सभाओं को स्थगित करने या भंग करने की कार्यवाही राज्यों में तनाव पैदा करने का स्रोत रही है। इस कार्यवाही से राज्य समझते हैं कि केन्द्रीय स्तर पर सत्ता के संघर्ष में उलझे राष्ट्रीय दलों के मध्य राजनीतिक खेल में उनका प्रयोग मोहरों के रूप में किया जाता रहा है।

यह सभी मुद्दे संघ-राज्य सम्बन्धों के प्रमुख तनाव के मुद्दे हैं। ऐसे कई मुद्दों ने भारतीय संघ का स्वभाव विवादग्रस्त और टकराव वाला बनाए रखा। राज्यों के द्वारा अधिक वित्तीय स्रोतों तथा शक्तियों की माँग आज के वातावरण में उचित तो है परन्तु कुछ राज्यों के गैर-उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता, विशेष रूप में तब जब कोई स्थानीय दल शासन सत्ता का प्रयोग कर रहा हो। इसी प्रकार ऐसी कार्यवाहियों को केन्द्रीय शासन के द्वारा संवैधानिक व्यवस्थाओं के राजनीतिक और पक्षपाती प्रयोग को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता। संघ और राज्यों दोनों को ही परस्पर सहयोगी संघवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए और राष्ट्रीय और क्षेत्रीय महत्त्व वाले विषयों पर परस्पर सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए। भारतीय संघ के दोनों भागीदारों को अपनी माँगों और नीतियों का विरोध करने के स्थान पर अनुकूलता लाने का प्रयास करना चाहिए और सहयोग की भावना को सुदृढ़ करना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि बीते अनुभव के आधार पर राष्ट्र निर्माण, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय अखण्डता की आवश्यकताओं से किसी भी प्रकार का समझौता किए बिना संघात्मक व्यवस्था अधीन संघ तथा राज्यों के सम्बन्धों के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक संशोधन किया जाना चाहिए। शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता ऐतिहासिक आवश्यकता है परन्तु इसके साथ ही राज्यों को अधिक वित्तीय स्रोत और शक्तियों से राज्यों की इच्छाओं और आवश्यकताओं का पूर्ण करने और संघ के द्वारा राज्यों के विरुद्ध शक्तियों का दुरुपयोग न करने की भी आवश्यकता है। संघ तथा राज्यों को मिल कर सहयोगी संघवाद की भावना के आधार पर राष्ट्रीय हित की आवश्यकताओं को ध्यान रखते हुए अपने सम्बन्धों में एक सन्तुलन बनाए रखने का निरन्तर प्रयास करना चाहिए। वैसे साझी राजनीतिक के उद्भव ने यह आवश्यक बना दिया है कि सभी भारतीय दलों और उनके गठबन्धनों को एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर कार्य करना चाहिए। आज कोई भी राजनीतिक दल चुनावों में अकेला बहुमत प्राप्त करने की स्थिति में नहीं है। राष्ट्रीय स्तर के दलों को सत्ता प्राप्ति के लिए क्षेत्रीय स्तर के दलों के लगातार समर्थन और सहयोग की आवश्यकता है और क्षेत्रीय दल राष्ट्रीय स्तर के दलों के साथ जुड़ कर केन्द्र में सत्ता के भागीदार बन सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक है कि सभी राजनीतिक दल एक सहयोगी संघवाद की भावना को अपनाएँ और इसके अनुसार ही अपने व्यवहार को नियमित करें।

6.5 संघ-राज्य संबंधों की पुनर्रचना के लिए प्रस्ताव (Proposal for Centre-State Reformation)

भारतीय संविधान में संघीय व्यवस्था के साथ-साथ एकात्मकवाद की विशेष व्यवस्था की गई है। इसमें संघीय प्रणाली में बहुत शक्तिशाली केन्द्र की व्यवव्था की गई है। केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के सभी क्षेत्रों-वैधानिक, प्रशासनिक और वित्तीय क्षेत्रों में संविधान (भाग XI और XII) में ऐसी प्रणाली की व्यवस्था है जो संघ को राज्यों से अधिक शक्ति और श्रेष्ठता प्रदान करती है।

भारतीय संघीय प्रणाली में केन्द्र की शक्तिशाली स्थिति 'सच्चे संघवाद' या 'स्वायत्त राज्य' या 'शक्तिशाली केन्द्र सहित शक्तिशाली राज्यों' के समर्थकों के लिए आलोचना का विषय रही है। कई क्षेत्रीय राजनीतिक दलों जैसे पंजाब में अकाली दल, तमिलनाडू में डी.एम.के., असम में ए.जी.पी., आंध्र प्रदेश में तेलुगु देशम आदि और वामपंथी दलों के कुछ भाग भी राज्यों के लिए अधिक शक्तियों, विशेष रूप में वित्तीय और नियोजन के क्षेत्र में अधिक शक्तियों की माँग करते रहे हैं। इन्होंने इस दिशा में कुछ दृढ़ प्रयत्न भी किए हैं। राजमन्नार रिपोर्ट 1972, आनन्दपुर साहिब का प्रस्ताव (1973) और केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर पश्चिमी बंगाल सरकार का याद-पत्र इस दिशा में मील-पत्थर सिद्ध हुए हैं। 1983 में भारत सरकार के द्वारा संघराज्य सम्बन्धों के पूर्ण क्षेत्र की समीक्षा के लिए सरकारिया आयोग नियुक्त किया गया। इसकी सिफारिशों ने भी सभी का ध्यान अपने ओर आकर्षित किया है।

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में संभव संशोधन की प्रकृति का विश्लेषण करने के लिए इन सभी प्रयत्नों का संक्षेप में अध्ययन करना आवश्यक है।

I. राजमन्नार समिति रिपोर्ट, 1972 (Rajmannar Committee Report, 1972)

1969 में तमिलनाडू में डी.एम.के. सरकार ने संघ-राज्य सम्बन्धों के पूर्ण क्षेत्र की समीक्षा के लिए एक समिति राजमन्नार समिति नियुक्त की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में संविधान की कई व्यवस्थाओं अनुच्छेद 249, 257, 275, 282, 352, 360 और 365 की पुनः रचना करने की सिफ़ारिशें निम्नलिखित थीं:

1. एक अन्तर्राज्यीय परिषद् स्थापित करने की सिफारिश की गई और यह कहा गया कि संघीय संसद् को एक से अधिक राज्यों के हितों के सम्बन्ध में इस परिषद् से परामर्श करना चाहिए।
2. वित्त आयोग एक स्थायी संस्था होनी चाहिए और राज्य केन्द्र पर कम निर्भर होने चाहिए। राज्यों को वित्तीय स्वायत्तता प्राप्त होनी चाहिए और यह शक्तिशाली होने चाहिए।
3. राज्यों को शक्तिशाली बनाने के लिए संघीय सूची के कई विषयों को राज्य सूची में शामिल किया जाना चाहिए।
4. योजना आयोग एक स्वायत्तता प्राप्त संस्था होनी चाहिए। योजना आयोग में केन्द्र की भूमिका घटाई जानी चाहिए।
5. राज्य में राज्यपाल के पद के सम्बन्ध में राजमन्नार रिपोर्ट ने सिफारिश की कि राज्यपाल की नियुक्ति राज्य कैबिनेट की सहमति से होनी चाहिए। यदि यह संभव न हो तो एक उच्च शक्ति वाली संस्था की स्थापना की जानी चाहिए और यह उत्तरदायित्व उसको सौंप देना चाहिए। राज्यपालों के व्यवहार को निष्पक्ष बनाने के लिए, राज्यपाल के रूप में उनकी सेवा मुक्ति के पश्चात् उनको अन्य पदों पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।
6. राज्यपाल की इच्छा तक राज्य मन्त्रिमंडल के बने रहने की व्यवस्था समाप्त की जानी चाहिए।
7. सभी राज्यों को चाहे वह बड़े या छोटे, राज्यसभा में वास्तविक शुद्ध संघीय सिद्धान्त के आधार पर एक समान प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए।

8. प्रत्येक राज्य के उच्च न्यायालय को अपने राज्य से सभी मुकद्दमों के सम्बन्ध में अन्तिम अधिकार प्राप्त होना चाहिए। केवल संवैधानिक मुकद्दमे ही इसके अपवाद होने चाहिए।
9. अंग्रेज़ी को केन्द्र और राज्यों के मध्य सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

नोट

10. सर्वोच्च न्यायालय को सभी अन्तर्राज्यीय जल विवाद निपटाने की शक्ति दी जानी चाहिए।
11. भारत संघ में जम्मू और कश्मीर का विशेष स्तर स्थापित रखा जाना चाहिए।

डी.एम.के. सरकार ने यह रिपोर्ट केन्द्र सरकार को प्रस्तुत की। परन्तु इसकी सिफारिशें केन्द्रीय नेताओं को स्वीकृत नहीं हुई। यह अनुभव किया गया कि भारत जैसे बहुलवादी राज्य के लिए संविधान में निश्चित किए अनुसार शक्तिशाली केन्द्र का अस्तित्व बहुत आवश्यक था। राष्ट्रीय योजनाओं के द्वारा सामाजिक-आर्थिक विकास की आवश्यकता के लिए और देश की एकता और अखण्डता स्थापित रखने की आवश्यकता के लिए भारतीय राजनीति में शक्तिशाली केन्द्र का होना पूर्णतया उचित था।

II. आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव, 1973 (The Anandpur Sahib Resolution, 1973)

राज्यों को स्वायत्तता देने की आवश्यकता के लिए आवाज़ उठाने के लिए शिरोमणि अकाली दल ने एक प्रस्ताव तैयार किया और पास किया। 1973 में आनन्दपुर साहिब में 18वें अखिल भारतीय कान्फ्रेंस में पास किए गए प्रस्वाव के वास्तविक स्वरूप के बारे में कुछ तत्वों की स्पष्ट जानकारी नहीं है क्योंकि अलग-अलग अकाली नेताओं और उनके गुटों द्वारा अलग-अलग दस्तावेज़ और विचार प्रकाशित किए गए। हम यहाँ वह हिन्दी रूपांतरण दे रहे हैं जिसकी पुष्टि श्री लौंगोवाल के द्वारा 23-10-82 को की गई थी (हिंदोस्तान टाइम्ज़ के द्वारा 11 नवम्बर, 1982 को प्रकाशित किए अनुसार)।

अक्तूबर, 16-17, 1973 को अपनाए गए श्री आनन्दपुर साहिब प्रस्ताव की नीति और कार्यक्रम (Policy and Programme of Sri Anandpur Sahib Resolution adopted on October 16-17, 1973)

(क) सिद्धान्त (Principles)

1. शिरोमणि अकाली दल सिख पंथ की सबसे शीर्ष संस्था है और इसको उनका प्रतिनिधित्व और नेतृत्व करने का पूर्ण अधिकार है। इस संगठन का आधार परस्पर सम्बन्ध, मनुष्य की आकांक्षाओं और दर्शन से उसके सम्बन्ध हैं।
2. यह सिद्धान्त श्री गुरु नानक देव जी के दर्शन नाम जपो (परमात्मा की पूजा करो), किरत करो (कठिन परिश्रम करो) और वंड छको (अपने भाग की रोटी दूसरों से बांट कर खाओ) में दर्ज हैं।

(ख) उद्देश्य (Aims)

शिरोमणि अकाली दल निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयास करेगा:

1. धर्म और सिख मत का प्रचार और नास्तिकता की निंदा।
2. पंथ का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित रखना और ऐसे वातावरण का निर्माण करना जहाँ सिखी भावनाएँ पूर्णतया विकसित हो सकें।
3. समान आर्थिक ढांचे-सम्पत्ति में वृद्धि और सभी प्रकार के शोषण का अन्त करके निर्धनता और भूख को समाप्त करना।
4. सिख धार्मिक ग्रंथों पर चलते हुए निरक्षरता, छूत-छात और जातिवाद की समाप्ति।
5. बीमारी और रोगों की समाप्ति, नशों पर प्रतिबन्ध ताकि लोगों को राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रेरित किया जा सके।

भाग-I (Part-I)

शिरोमणि अकाली दल के विचार अनुसार सिखों में धार्मिक भावना पैदा करना उनका प्रमुख कर्तव्य है जिस पर कि वे मान कर सकें। इस मनोरथ की प्राप्ति के लिए, अकाली दल निम्नलिखित कार्यक्रम आरम्भ करेगा:

1. परमात्मा एक है, के सिद्धान्त का प्रचार, दस गुरुओं और श्री गुरु ग्रंथ साहिब में विश्वास और उनके दर्शन का प्रचार करना और सिखों में उनको लागू करना।
2. सिख धर्म, दर्शन मत (सिद्धान्त) और लंगर आदि के सफलतापूर्ण प्रचार के लिए सिख मिशनरी कॉलेजों के द्वारा अच्छे प्रचारक, गायक, ढाडी और कवि पैदा किए जाए ताकि प्रचारक भारत में और विदेशों में, गांवों और शहरों में, स्कूलों और कॉलेजों आदि में स्वतन्त्र रूप में प्रचार कर सकें।
3. अमृत प्रचार का कार्य बड़े स्तर पर, विशेष रूप में स्कूलों और कॉलेजों में, आरम्भ किया जाएगा। इस उद्देश्य के लिए अध्ययन के लिए कॉलेजों के प्रोफैसरों और विद्यार्थियों को संगठित किया जाएगा।
4. सिखों में दसवंध की भावना (आय का दसवां भाग दान करने की भावना) विकसित की जाएगी।
5. सिख-ऐतिहासिकारों, बुद्धिजीवियों, लेखकों, प्रचारकों, ग्रंथियों आदि को आदर और सम्मान दिया जाएगा और उनके जीवनस्तर को ऊँचा उठाने के लिए, प्रशिक्षण और कार्य के लिए सुविधाएँ प्रदान की जाएंगी।
6. गुरुद्वारा प्रशासन को सर्व और एक स्वरूप बनाने के लिए कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए प्रबन्ध किए जाएंगे, गुरुद्वारों के भवनों का रख-रखाव किया जाएगा और इसके लिए शिरोमणि गुरुद्वारा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति के सदस्यों को आवश्यक निर्देश जारी किए जाएंगे।
7. ग्रंथों की उचित छपाई, पुराने और नए सिख इतिहास की खोज, ग्रंथों का अनुवाद और सिखी सिद्धान्तों के साफ और स्पष्ट साहित्य की रचना की जाएगी।
8. एक नया अखिल भारतीय गुरुद्वारा ऐक्ट बनाने के लिए संघर्ष किया जाएगा, जिसके अधीन देश में सभी गुरुद्वारों का व्यवस्थित प्रबन्ध किया जाएगा और यह प्रयास किया जाएगा कि उदासियों, निर्मलों आदि प्राचीन मर्यादाओं को सिख समाज का अटूट अंग बनाया जाए।
9. धार्मिक प्रचार के साझे साधनों से लाभ प्राप्त करने के लिए संसार के सभी गुरुद्वारों के प्रबन्धकों को एक सूत्र में संगठित किया जाएगा।
10. श्री ननकाना साहिब और अन्य गुरुद्वारे, जो पंथ से अलग किए गए हैं, के 'खुले दर्शन दीदार' की व्यवस्था की जाएगी।

भाग-II (Part-II)

पंथ के राजनीतिक उद्देश्य दशम गुरु के निर्देशों पर आधारित हैं जो सिख इतिहास के पन्नों पर और खालसा पंथ के मन में अंकित हैं। इसका उद्देश्य है: 'खालसा जी का बोल बाला'।

इन सभी लक्ष्यों को सामने रख कर, शिरोमणि अकाली दल निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए संघर्ष करेगा:

1. (क) वे क्षेत्र जोकि पंजाब से जान-बूझ कर अलग किए गए हैं जैसा कि गुरदासपुर जिले से डलहौजी, चंडीगढ़, पिंजौर, कालका और अम्बाला जिले में से अम्बाला शहर, होशियारपुर जिले से ऊना तहसील, नालागढ़ का गाँव 'देश', करनाल जिले का शाहबाद ब्लॉक, गूहला और टोहाना सब तहसीलें, हिसार जिले का रतिया ब्लॉक और सिरसा तहसील, राजस्थान के गंगानगर जिले की 6 तहसीलें और पंजाबी बोलने सिख रिहायशी क्षेत्रों को तुरंत पंजाब में शामिल किया जाए और इनका प्रशासन एक इकाई के अधीन चलाया जाए।

(ख) पंजाब और दूसरे राज्यों में केन्द्रीय सुरक्षा, विदेशी मामले, डाक और तार, मुद्रा और रेलवे तक ही सीमित रखे जाने चाहिए। शेष सभी विभाग पंजाब के प्रत्यक्ष नियन्त्रण के अधीन होने चाहिए।

(ग) पंजाब से बाहर निवास कर रहे अल्प-संख्यक सिख समुदाय के हितों की सुरक्षा के लिए प्रभावशाली प्रबन्ध किए जाने चाहिए ताकि वे किसी भेदभाव का शिकार न हों।

नोट

2. शिरोमणि अकाली दल भारतीय संविधान को उचित अर्थों में संघीय बनाने का प्रयास करेगा और यह भी प्रयास करेगा कि केन्द्र में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।
3. शिरोमणि अकाली दल के अनुसार कांग्रेस सरकार की विदेश नीति देश और समस्त राष्ट्र के लिए बेकार और हानिकारक थी। यह सभी पड़ौसी राज्यों, विशेष रूप में वे जहाँ सिख रहते हैं या जहाँ सिखों के धार्मिक स्थान हैं, से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए संघर्ष करेगी। हमारी विदेश नीति किसी अन्य देश की विदेश नीति की नकल नहीं होनी चाहिए।
4. केन्द्र और राज्यों में सिख कर्मचारियों के लिए न्याय विश्वसनीय बनाया जाएगा और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठानी शिरोमणि अकाली दल के कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण भाग होगा। विशेष रूप में सुरक्षा सेवाओं में, सिखी परम्पराएँ स्थापित रखने के प्रयत्न किए जाएंगे और सिख सैनिकों की मांगों को निरन्तर ध्यान में रखा जाएगा। शिरोमणि अकाली दल यह भी प्रयत्न करेगा कि कृपाण सिख सैनिकों की वर्दी का एक अखण्ड भाग बन जाए।
5. भूतपूर्व सैनिकों की पुनर्स्थापना के लिए आवश्यक और उत्पादक वातावरण निर्मित किया जाएगा और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक सुविधाएँ और अधिकार दिए जाएंगे ताकि वे स्वाभिमान वाला जीवन व्यतीत कर सकें।
6. शिरोमणि अकाली दल के अनुसार प्रत्येक पुरुष या महिला को, जिसको न्यायालय के द्वारा दण्ड न दिया गया हो, लाइसेंस के बिना एक शस्त्र रखने की आज्ञा होनी चाहिए।
7. शिरोमणि अकाली दल के अनुसार सार्वजनिक स्थानों पर तम्बाकू पीने और खाने पर रोक और नशाबंदी की नीति लागू होनी चाहिए।

इस प्रस्ताव में की गई सिफारिशें मुख्य रूप में पंजाब और सिखों से सम्बन्धित थीं।

III. केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर पश्चिमी बंगाल सरकार का स्मरण-पत्र (1977) (West Bengal Memorandum on Centre-State Relations (1977))

दिसम्बर, 1977 में, पश्चिमी बंगाल मन्त्रिमण्डल ने केन्द्र-राज्य सम्बन्धों पर एक स्मरण-पत्र जारी किया और यह केन्द्र के द्वारा राज्य सरकारों, विशेष रूप में गैर-कांग्रेसी सरकारों के द्वारा शासित राज्यों, को पूँजी और दूसरे स्रोत देने से इनकार करके दबाव डाला गया। इसकी रूप-रेखा राज्य-प्रशासन में केन्द्रीय हस्तक्षेप का विरोध करने और संविधान की कई व्यवस्थाओं के दुरुपयोग के विरोध में तैयार की गई। यद्यपि इसमें राज्यों के लिए अधिक स्वायत्तता की माँग प्रत्यक्ष रूप में नहीं की गई, परन्तु स्मरण-पत्र के स्वरूप तथा भाषा में यह माँग स्पष्ट दिखाई देती है।

इस स्मरण-पत्र की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

प्रस्तावना (Preamble): "भाषायी, सांस्कृतिक और अन्य विभिन्नताओं के ढांचे में भारत की एकता और अखण्डता को सुरक्षा केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। भारत में निवास कर रहे कई भाषायी और सांस्कृतिक समूह विदेशी जंजीरों से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए स्वतन्त्रता से पहले ही अपनी इच्छा के अनुसार साझे लक्ष्यों के लिए इकट्ठे हो गए थे। आज भी वे साम्राज्यवादी हस्तक्षेप से मुक्त रह कर प्राकृतिक स्रोतों के पूर्ण विकास के लिए और समृद्ध जीवन व्यतीत करने के लिए और सामाजिक-आर्थिक, भाषायी और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साझे लक्ष्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया में इकट्ठे हैं। इन साझे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए राजनीतिक दलों और जनता अनेकता में एकता की आवश्यकता की पहचान कर केन्द्र और राज्य सरकारों पर आश्रित हैं।"

मुख्य विशेषताएँ (Main Features)

1. केन्द्र राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप कर रहा है (Centre is Building in Roads into State's Sphere)–भारतीय संविधान मुख्य रूप में एकात्मक प्रकृति का है। इसके अनुसार

नोट

केन्द्र को राज्यों की स्वायत्तता के मूल्य पर अधिक शक्तियाँ दी गई हैं। इसी कारण ही 'समवर्ती सूची' में 47 मदें शामिल की गई हैं। संविधान लागू होने के पश्चात् यही प्रयास जारी रहा है कि राज्यों की शक्तियों के मार्ग में अधिक हस्तक्षेप करने का दोषी रहा है और आज भी है।

2. केन्द्र अधिक शक्तिशाली बन रहा है (Centre has been becoming unusually more powerful)–पिछले दो दशकों के दौरान एक ओर तो राज्यों को अधिक स्वायत्त बनाने के लिए उचित और प्रभावशाली शक्तियाँ देने की माँग बढ़ रही है तो दूसरी ओर राज्यों को दी गई शक्तियों की सीमाबंदी करने और वहाँ की सरकारों की लोकतन्त्रीय कार्यशीलता को समाप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्न किए जा रहे हैं। इस उद्देश्य के लिए गैर-कांग्रेसी सरकारों और प्रत्येक ढंग से केन्द्र की शक्ति के द्वारा औपचारिक दबाव डालकर, या धन और दूसरे स्रोत देने से इनकार करके अप्रत्यक्ष ढंग से दबाव डाला गया और कांग्रेस पार्टी के मुख्यमन्त्रियों और संगठन और शासन के द्वारा दबाव डाला गया। पिछले दस वर्षों के दौरान, केन्द्र की राज्यों के कानून और व्यवस्था, राज्य विषय पर केन्द्रीय पुलिस बल, सीमा सुरक्षा बल, औद्योगिक सुरक्षा बल आदि की स्थापना के द्वारा पकड़ बढ़ी है। संविधान के 42वें संशोधन के द्वारा शिक्षा के राज्य विषय को समवर्ती सूची में शामिल कर दिया गया। यह प्रक्रिया अब इस सीमा तक पहुँच चुकी है कि राज्यों को केन्द्र के एक मन्त्रालय अधीन विभागों के समान दर्जा देने का खतरा पैदा हो गया है।

3. वास्तविक संघवाद की आवश्यकता (Need for True Federalism)–परिवर्तित राजनीतिक वातावरण में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के मुद्दे को नया महत्त्व प्राप्त हुआ है। केन्द्र में और अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग दल सत्ता में हैं। लोगों की लोकतन्त्रीय इच्छाओं की पूर्ति के लिए संघीय सिद्धान्तों को उचित अर्थों में समझा और लागू किया जाना चाहिए ताकि बहु-दलीय लोकतन्त्रीय प्रथा जीवित रह सके।

4. शक्तिशाली राज्य व्यवस्था शक्तिशाली केन्द्र के अनुकूल हैं (Strong States are Compatible with Strong Centre)–भारत जैसे देश में, जहाँ नसल, धर्म, भाषा और संस्कृति में कई विभिन्नताएँ हैं, राष्ट्रीय अखण्डता केवल सचेत, स्वैच्छिक यत्नों के द्वारा ही स्थापित रखी जा सकती है। शक्तियाँ सौंप देने से विखण्डित करने वाली प्रवृत्तियाँ उत्साहित होने की अपेक्षा रुक जाती हैं। एक शक्तिशाली और एकीकृत भारत में अलग-अलग राज्यों के लोगों की लोकतन्त्रीय इच्छाओं का आदर किया जाना चाहिए और उन से घृणा नहीं की जानी चाहिए। निश्चय ही हमें शक्तिशाली राज्यों की आवयकता है, परन्तु हम कमज़ोर केन्द्र भी नहीं चाहते। शक्तिशाली राज्यों की धारणा आवश्यक नहीं कि शक्तिशाली केन्द्र के विरोध में ही हो परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि सत्ता के क्षेत्रों को स्पष्ट रूप में निश्चित कर लिया जाए।

5. अवशेष शक्तियाँ राज्यों को सौंप देनी चाहिए (Residuary should be Transferred to States)–संघ की अवशेष शक्तियाँ केन्द्र की अपेक्षा राज्यों के पास होनी चाहिए, केन्द्र के पास नहीं। इस उद्देश्य के लिए अनुच्छेद 248 में संशोधन किया जाना चाहिए।

6. अनुच्छेद 249 की समाप्ति (Abolition of Article 249)–अनुच्छेद 249, जिस के अधीन संसद् को राष्ट्रीय हित के लिए राज्य सूची के विषय पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है; को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

7. केन्द्र का मुख्य कार्य महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय विषयों का प्रशासन और सामंजस्य पैदा करना है (Co-ordination as the Chief Function of the Centre along with the Administration of Important National Subjects)–राज्यों के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि करते हुए हमें संघ सत्ता को दृढ़ बनाने और इसको सुरक्षित करने का भी प्रयास करना चाहिए क्योंकि कई विषय ऐसे हैं जिनको केवल संघ सत्ता ही नियन्त्रित कर सकती है इनको नियन्त्रित करना किसी एक राज्य के बस की बात नहीं। इन विषयों में सुरक्षा, विदेशी मामले, विदेशी व्यापार, मुद्रा, संचार साधन और आर्थिक सामंजस्य आते हैं। केन्द्र की भूमिका तालमेल बिठाने की होनी चाहिए। नियोजन, कीमतें, वेतन आदि निश्चित करने के मामले में केन्द्र को केवल सामंजस्य ही नहीं करना चाहिए बल्कि आम निर्देश भी जारी करने चाहिए।

8. वित्तीय ढांचे में परिवर्तन (Changes in the Financial Structure)–नियोजन और आर्थिक सामंजस्य के मामले में केन्द्र को राष्ट्रीय विकास परिषद् के द्वारा दिए आम दिशा-निर्देशों पर चलना चाहिए और इसमें केन्द्र के साथ-साथ राज्यों को भी प्रतिनिधित्व का अवसर मिलना चाहिए। इस मामले में न ही परिषद् और न ही नियोजन आयोग को संविधान के द्वारा विशेष अधिकार दिया जाना चाहिए। इस अन्तर को एक अलग धारा की रचना करके भरा जा सकता है जिसमें यह स्पष्ट बताया हो कि योजना आयोग की रचना का निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद् के द्वारा किया जाना चाहिए। विकास उद्देश्यों के लिए ऋण और ग्रांटें देना इस समय योजना आयोग का एकमात्र अधिकार है। इसके लिए यह और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि राज्य आयोग के प्रबन्ध के ढंग के बारे कोई विचार प्रस्तुत किया जाए। परन्तु विदेशी सम्बन्ध, सुरक्षा, संचार, मुद्रा, और सम्बन्धित मामले अनिवार्य रूप में केन्द्र के अधिकार क्षेत्र के अधीन ही होने चाहिए। केन्द्र को राज्यों के अपने ढंग से विकास करने में सहायता करनी चाहिए और उनको अधिक शक्तियाँ और स्रोत प्रदान करवाने चाहिए।

औद्योगिक और बिजली या सिंचाई योजनाएँ जो एक राज्य से अधिक राज्यों से सम्बन्धित हों, को संघीय सूची में रखा जाना चाहिए ताकि इन बहु-राज्य प्राजैक्टों के सम्बन्ध में साझी नीति अपनाई जा सके और साझा अंतिम निर्णय किया जा सके। इन योजनाओं की संरचना संघ की सरकार के द्वारा हो परन्तु इनको लागू करने और सम्पूर्ण करने का कार्यव्यवहार राज्य सरकारों के द्वारा होना चाहिए।

9. कानून व्यवस्था का अधिकार केवल राज्यों के पास होना चाहिए (Law and Order should be the Exclusive Concern of States)–संघ सरकार के द्वारा राज्यों के प्रबन्ध के लिए केन्द्रीय सुरक्षा बल या अन्य पुलिस बलों को भेजे जाने का अधिकार समाप्त कर देना चाहिए। कानून और व्यवस्था और पुलिस प्रकरण विषय पूर्ण रूप से राज्य के अधिकार क्षेत्र में होने चाहिए और केन्द्र को अपने द्वारा बनाए गए विशेष बलों से राज्यों के प्रबन्ध में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

10. सरकारी आय के विभाजन में वांछित परिवर्तन और वित्त आयोग (Changes involving the Distribution of Revenues and Finance Commission): वित्त आयोग और सरकारी आय के विभाजन से सम्बन्धित धाराओं में संशोधन किया जाना चाहिए और वित्त आयोग के द्वारा अलग-अलग राज्यों को केन्द्र के द्वारा सभी स्रोत से एकत्रित की गई सरकारी आय का 75 प्रतिशत भाग बांट देना चाहिए। राज्यों की भिखारियों जैसी आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि:

(क) केन्द्र और राज्यों के मध्य सरकारी आय की आनुपातिक बांट का निर्णय करने का उत्तरदायित्व वित्त आयोग का नहीं होना चाहिए बल्कि इसका कार्य केवल केन्द्र के द्वारा कुल वित्तीय प्राप्ति जिसका 75 प्रतिशत भाग राज्यों को बांटा जाना चाहिए में से प्रत्येक राज्य के भाग का अनुपात निश्चित करना ही होना चाहिए।

(ख) अनुच्छेद 280 की धारा 3, उप-धारा (ए) जिसमें "करों से होने वाली कुल आय को संघ और राज्यों के मध्य वितरित करने" की व्यवस्था दर्ज है, को समाप्त कर देना चाहिए और पूर्ण धारा को पुनः तैयार करना चाहिए। नई धारा में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि राज्यों के मध्य उनके व्यवस्थित और आनुपातिक भागों की सिफ़ारिश राष्ट्रपति को करना ही, इस आयोग का कर्तव्य होना चाहिए।

(ग) प्रत्येक राज्य को अपने अधिकार क्षेत्र में कर लगाने की अधिक शक्ति दी जानी चाहिए और इसके पास सम्बन्धित मामलों में ऋण लेने की सीमा निश्चित करने की भी शक्ति होनी चाहिए। संघ सरकार के द्वारा अनुच्छेद 280, धारा 2 और 3 के अनुसार विशेष विषयों में राज्यों की सम्पत्ति और आय और कर लगाने का अधिकार समाप्त होना चाहिए। इसके साथ ही संघ के वित्त मन्त्रालय के द्वारा धारा 302 में दर्ज प्रावधान के अनुसार राज्य के अपने अंदर कहीं भी व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाने और हस्तक्षेप करने का अधिकार समाप्त कर देना चाहिए। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, संघ, राज्य और समवर्ती सूचियों वाली सातवीं अनुसूची को उचित ढंग से संशोधित किया जाना चाहिए।

11. अनुच्छेद 356, 357, 360, 200, और 201 की समाप्ति (Deletion of Articles 356, 357, 360, 200, and 201): अनुच्छेद 356 और 357 जो राष्ट्रपति को राज्य सरकार या राज्य विधानसभा या दोनों को स्थगित करने का अधिकार देती हैं, को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

(क) अनुच्छेद 360 जो राष्ट्रपति को वित्तीय अस्थिरता या भारतीय वित्तीय अस्थिरता के खतरे के आधार पर प्रशासन में वित्तीय संकटकाल के नाम पर हस्तक्षेप करने का अधिकार देता है, को भी समाप्त किया जाना चाहिए।

(ख) अनुच्छेद 200 और 201 जिसके अनुसार राज्यपाल राज्य विधानसभा के द्वारा पास किए गए कुछ बिलों को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित रख सकता है, को भी समाप्त कर देना चाहिए।

12. राज्य सभा में सभी राज्यों को प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा समान प्रतिधित्व प्राप्त होना चाहिए (Equal Representation to all States in Rajya Sabha through Direct Election): संघ की संघटक इकाइयों में समानता के सिद्धान्त को लागू करने के लिए और राज्यों की स्वायत्तता स्थापित रखने के लिए यह सिफ़ारिश की जाती है कि राज्यसभा के चुनाव जनता के द्वारा प्रत्यक्ष ढंग से लोकसभा चुनावों के समय ही करवाए जाने चाहिए और राज्यसभा में सभी राज्यों को एक समान प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिए। केवल तीन मिलियन (तीस लाख) से कम जनसंख्या वाले राज्य अपवाद होंगे। दोनों सदनों को एक समान शक्तियाँ प्राप्त होना चाहिए।

13. संघ सेवाओं को राज्य सेवाओं से अलग रखना चाहिए (Separation of Union Services from State Services): अखिल भारतीय सेवाओं जैसा कि आई.ए.एस., आई.पी.एस. आदि, जिसके अधिकारी राज्यों में नियुक्त किए जाते हैं, परन्तु जो केन्द्र सरकार के निरीक्षण और अनुशासनिक नियन्त्रण के अधीन होते हैं, को समाप्त कर देना चाहिए। केवल संघ सेवाएँ ही विद्यमान रहनी चाहिए। और इनकी भर्ती क्रमश: संघ सरकार और सम्बन्धित राज्य सरकार के द्वारा की जानी चाहिए।

14. संशोधन प्रक्रिया में परिवर्तन (Changes in the Amendment Procedure): अनुच्छेद 368 में ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि संविधान में किसी भी संशोधन को संसद् के प्रत्येक सदन के 2/3 सदस्यों के वोट सहित बहुमत प्राप्त हो। दो-तिहाई समर्थन के बिना कोई संशोधन करना संभव न हो।

15. राज्यों की सीमाओं को परिवर्तित करने के संसद् के अधिकार में संशोधन होना चाहिए (Parliament's Right to change the Boundaries of States should be Amended): संविधान के अनुच्छेद 3 जिसके अनुसार संसद् किसी राज्य के क्षेत्र में स्वयं ही परिवर्तन कर सकती है, में उचित संशोधन किया जाना चाहिए और यह विश्वसनीय बनाया जाना चाहिए कि किसी भी राज्य का नाम और क्षेत्र सम्बन्धित राज्य विधानसभा की विशेष सहमति के बिना संसद् के द्वारा परिवर्तन न किया जा सके। सीमाबंदी के मामले में दो या अधिक राज्यों में पैदा हुए विरोध के मामले में, संविधान में राज्यों के मध्य दूसरे विरोधों को निपटाने के लिए पहले बनाई गई व्यवस्थाओं के अनुसार ही निपटारा किया जाना चाहिए।

16. अंग्रेज़ी और दूसरी भाषाओं का प्रयोग (Use of English as well as Other Languages): आठवीं अनुसूची में दर्ज की गई भाषाओं में केन्द्र और राज्य स्तर सरकारों को कार्य करने की आज्ञा होनी चाहिए। किसी भी भारतीय नागरिक को सरकार की किसी भी शाखा में उच्चतम स्तर पर अपने व्यवहार और लेन-देन के लिए अपनी मातृ-भाषा का प्रयोग करने का अधिकार होना चाहिए। 'अंग्रेज़ी को संघ के सभी कार्यालयीय उद्देश्यों के लिए हिन्दी के साथ-साथ प्रयोग करना जारी रखा जाना चाहिए परन्तु केवल तब ही जब गैर-हिन्दी क्षेत्र ऐसा करने की इच्छ रखते हों। इसके साथ ही आठवीं सूची में संशोधन करके कुछ अन्य विशेष भाषाओं जैसा कि नेपाली को इसमें शामिल किया जाना आवश्यक है।

संविधान के अनुच्छेद 370 में वर्णित भारतीय संघ में जम्मू और कश्मीर को दिया गया विशेष स्तर स्थापित रखना चहिए।

इस स्मरण-पत्र का मुख्य उद्देश्य था राज्य प्रशासन में केन्द्रीय हस्तक्षेप पर प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता और राज्यों को अधिक शक्तियों के भारतीय संघीय प्रणाली को शुद्ध रूप में संघीय बनाने की आवश्यकता पर प्रकाश

डालना था। इस स्मरण-पत्र तथा राजमन्नार रिपोर्ट से कई समानताएँ थीं। केन्द्र सरकार ने इस स्मरण-पत्र को भी स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

निम्नलिखित में सत्य/असत्य बताइए

7. कुछ विशेष अनुच्छेद ऐसे हैं, जिन पर कर राज्य और केन्द्र के द्वारा लगाए और एकत्रित किए जाते हैं।
8. संघ सरकार के पास संचित निधि की जमानत पर ऋण लेने की शक्ति है, परन्तु इस पर संसद के कानूनों (अनुच्छेद 292) के द्वारा समय-समय पर लागू प्रतिबंध लागू होते हैं।
9. संविधान के अनुसार राज्यपाल की दोहरी भूमिका निश्चित की गई है, राज्य में संघ के एजेंट के रूप में और राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में।

6.6 सरकारिया आयोग (1983-88) की सिफारिशें [The Recommendations of Sarkaria Commission (1983-88)]

राज्यों की बढ़ती हुई स्वायत्तता की माँग को देखते हुए और केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की समीक्षा के लिए संघ सरकार ने 1983 में सरकारिया आयोग नियुक्त किया। श्री आर. एस. सरकारिया (सेवानिवृत्त) इस आयोग के चेयरमैन नियुक्त किए गए और श्री बी. शिवारमान, मन्त्रिमण्डल सचिव, श्री एस.आर.सेन, आई.बी.आर.डी. भूतपूर्व कार्यकारी निर्देशक और रामा सुब्रह्मण्यम (सदस्य सचिव), इसके मनोनीत किए गए सदस्य थे।

सरकारिया आयोग का कार्य संघ और राज्यों के मध्य शक्तियों, कार्यों और सभी क्षेत्रों में उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में वर्तमान प्रबन्धों के व्यवहार का परीक्षण और समीक्षा करना और ऐसी परिवर्तनों या दूसरे प्रस्तावों की सिफ़रिश करना था जोकि उपयुक्त और आवश्यक हों। इस कार्य में आयोग से यह आशा रखी गई कि वह वर्षों तक किए गए सामाजिक और आर्थिक विकासों को ध्यान में रखेगा और संविधान की रूप-रेखा और मौलिक संरचना को उचित सम्मान देगा जिसकी रचना संविधान निर्माताओं ने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा, और देश की एकता और अखण्डता, जो लोगों के कल्याण के लिए अति महत्त्वपूर्ण थी, के लिए बड़े परिश्रम से की थी।

सरकारिया आयोग की रिपोर्ट (Report of Sarkaria Commission): सरकारिया आयोग न दिए गए निर्देशों के अनुसार केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के सभी पहलुओं की समीक्षा करने के पश्चात् अपनी एक रिपोर्ट तैयार करके अक्तूबर, 1987 में संघ सरकार को सौंप दी। इसकी मुख्य सिफारिशों के बारे में जनवरी 1988 में ही पता लगा। इस आयोग की कुछ मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थीं:

1. शक्तिशाली केन्द्र जारी रहना चाहिए (Strong Centre should continue): सरकारिया आयोग ने शक्तिशाली केन्द्र के अस्तित्व की वकालत की। इस आयोग ने राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के हित में केन्द्र को दी गई शक्तियों में कटौती करने की माँग को दृढ़ता से रद्द कर दिया। "हमें प्रमुख रूप में शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता है और इसके बारे कोई आशंका नहीं है। इसके बिना सभी कुछ समाप्त हो जाएगा।" (We absolutely need to have a strong centre and there is no doubt about it. Without that everything will wither away.) आयोग संविधान की व्यवस्थाओं में गम्भीर परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं था। इसने स्वीकार किया कि संविधान ने कष्टदायक परिस्थितियों में भी भिन्नताओं वाले समाज के दबावों और प्रतिकूल शक्तियों का सामना करते हुए उचित और अच्छे ढंग से कार्य किया था। परन्तु इसके साथ ही रिपोर्ट में अनावश्यक केन्द्रवाद पर रोक के महत्त्व को भी स्वीकार किया गया।

2. राज्य सूची के कुछ विषयों को समवर्ती सूची में शामिल करने की मांग रद्द कर दी गई (Rejection of demand for the Transfer of Some Subjects of the State List to the Concurrent List): आयोग ने कुछ राज्य विषयों को समवर्ती सूची में शामिल करने की माँग रद्द कर

दी। दूसरी ओर, इसने यह कहा कि समवर्ती विषयों पर केन्द्र को राज्यों से परामर्श करना चाहिए। आयोग केन्द्र की राज्यों में सशस्त्र बलों की नियुक्ति करने की शक्तियों पर प्रतिबन्ध लगाने के पक्ष में नहीं था चाहे कि आयोग किसी राज्य अथवा कुछ राज्यों में इन बलों की नियुक्ति से पहले सम्बन्धित राज्य सरकारों से परामर्श करने के पक्ष में था।

3. सहयोग संघवाद का समर्थन (Support for Co-operative Federalism): रिपोर्ट में केन्द्र और राज्यों के मध्य अधिक सहयोग भरा वातावरण पैदा करने का समर्थन किया गया। आयोग भारतीय केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में पिछले कई वर्षों से चले आ रहे विरोध का अन्त चाहता था। यह केवल केन्द्र और राज्यों के मध्य निरन्तर परामर्श के द्वारा और केन्द्र के द्वारा अपने-आप निर्णय न लिए जाने पर ही संभव हो सकता था। आयोग योजनाएँ बनाने और उनको लागू करने के मामले में भी केन्द्र और राज्यों के मध्य अधिक सहयोग उत्पन्न करना चाहता था। आयोग उस ढंग का आलोचक था, जिसके द्वारा बीते समय की सरकारों ने लोकतन्त्रीय प्रवृत्तियों और परम्पराओं से खिलवाड़ किया था और अपनी संकीर्णताओं को कई बार समझदारी से ऊँचा स्थान दिया था और थोड़े समय के लाभों को लम्बे समय तक चलने वाले लाभ देने वाली नीतियों से ऊपर रखा गया था।

4. राज्यपाल के पद से सम्बन्धित सिफ़ारिश (Recommendation regarding the Office of Governor): रिपोर्ट में राज्यपाल के पद को समाप्त करने की माँग को रद्द किया गया। इसने यह सुझाव भी रद्द कर दिया कि राज्यपालों का चुनाव राज्यों के द्वारा दिए गए नामों की सूची में से होना चाहिए। इस आयोग के विचार के अनुसार, सक्रिय राजनीतिक नेताओं को राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। जब राज्य और केन्द्र में अलग-अलग दल सत्तारूढ़ हों तो उस स्थिति में राज्यपाल केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही, राज्यपाल को सेवा-मुक्ति के पश्चात् किसी लाभ प्राप्त करने वाले पद पर नियुक्त करने की आज्ञा नहीं होनी चाहिए।

5. मुख्यमन्त्री की नियुक्ति के मुद्दे से सम्बन्धित सिफ़ारिश (Recommendation regarding the Issue of Appointment of Chief Minister): सरकारिया रिपोर्ट के अनुसार राज्य विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल के नेता को मुख्यमन्त्री नियुक्त किया जाना चाहिए। यदि राज्य विधानसभा में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो वह व्यक्ति जो विधानसभा में बहुमत प्राप्त कर सके, को राज्यपाल के द्वारा मुख्यमन्त्री नियुक्त किया जाना चाहिए। ऐसे मामलें में मुख्यमन्त्री के लिए 30 दिनों के भीतर-भीतर विधानसभा में अपना बहुमत सिद्ध करके विश्वास मत प्राप्त करना आवश्यक होना चाहिए।

6. राज्य विधानपालिका का अधिवेशन बुलाने से सम्बन्धित सिफ़ारिश (Recommendation Regarding Summoning of the Sessions of the State Legislature): सामान्य रूप में राज्यपाल को केवल राज्य सरकार की सिफारिशों पर राज्य विधानसभा के अधिवेशन बुलाने चाहिए परन्तु विशेष स्थितियों के अधीन वह राज्य विधानपालिका के अधिवेशन बुलाने में अपनी इच्छा से भी निर्णय कर सकता था।

7. वित्तीय योजना में परिवर्तन (Changes iu Financial Schemes): रिपोर्ट के अनुसार आयोग संविधान के द्वारा वित्तीय स्रोतों के विभाजन की योजना में बड़े परिवर्तन करने की मांग से सहमत नहीं था। परन्तु यह निगमित कर और खेप कर (साथ भेजने पर कर) और विज्ञापन और ब्राडकास्टिंग पर लगे कर में भागीदारी के मामले आवश्यक सुधार करने के पक्ष में था।

8. अनुच्छेद 356 से सम्बन्धित सिफ़ारिश (Recommendation regarding Article 356): सरकारिया रिपोर्ट के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 356, जो राज्य में संवैधानिक सरकार के असफल रहने के आधार पर राष्ट्रपति राज्य लागू करने की व्यवस्था करता है, को रद्द करने की माँग अनुचित है। परन्तु साथ ही, केन्द्र के द्वारा इसके दुरुपयोग पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए निम्नलिखित पग उठाए जाने चाहिए:

(*i*) अनुच्छेद 356 का प्रयोग बहुत कम किया जाना चाहिए।

(*ii*) राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने के कारणों को संकटकाल की स्थिति के घोषणा में स्पष्ट रूप में लिखा जाना चाहिए।

(*iii*) राज्य विधानसभा तब तक स्थगित या निष्कासित नहीं की जानी चाहिए जब तक कि संकटकाल घोषणा संसद् के द्वारा स्वीकार न हो जाए।

(*iv*) अनुच्छेद 356 के अधीन केन्द्र के द्वारा संकटकाल की स्थिति लागू करने से पहले वैकल्पिक सरकार बनाने की सभी संभावनाओं को जाँच लेना चाहिए।

नोट

9. तीन-भाषायी फार्मूले का समर्थन (Three-Language Formula Favoured): सरकारिया आयोग की रिपोर्ट में समस्त भारत में तीन-भाषायी फार्मूला लागू करने का समर्थन किया गया। इसके अनुसार भाषायी अल्पसंख्यक आयोग (Linguistic Minorities Commission) को सक्रिय बनाने के लिए विशेष कदम उठाए जाने चाहिए।

10. अखिल भारतीय सेवाओं का अस्तित्व कायम रहना चाहिए (Retention of All India Services): रिपोर्ट में अखिल-भारतीय सेवाओं पर रोक लगाने की माँग इस आधार पर रद की गई है कि इससे देश की एकता और अखण्डता को भारी चोट पहुंचेगी।

11. संचार साधनों की स्वायत्तता (Autonomy of Mass Media): इस आयोग की रिपोर्ट के अनुसार रेडियो और टी. वी. पर केन्द्रीय नियन्त्रण में छूट दी जानी चाहिए और दैनिक व्यवहार में सत्ता का अधिक विकेन्द्रीकरण की इच्छाओं में समायोजन के लिए प्रयास करना चाहिए। एक साझे शब्द-संग्रह की रचना के लिए इनको ब्राडकास्ट के लिए साधारण हिंदोस्तानी और क्षेत्रीय भाषा के आम प्रयोग किए जाने वाले शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

12. फुटकल सिफारिशें (Miscellaneous Recommendations): सरकारिया रिपोर्ट में कई अन्य सुझाव भी प्रस्तुत किए गए जैसा कि: (*i*) इसमें सिफ़ारिश की गई कि किसी भी न्यायधीश का स्थानांतरण उसकी सहमति से किया जाए, (*ii*) किसी भी राज्य के मुख्यमन्त्री के विरुद्ध या राज्य सरकार के किसी भूतपूर्व मन्त्री के विरुद्ध तब तक जाँच आयोग नियुक्त न किया जाए जब तक संसद् के दोनों सदन ऐसी मांग न करें, (*iii*) किसी राज्य मन्त्री के व्यवहार की जाँच के लिए कोई जाँच आयोग नियुक्त न किया जाए जब तक कि ऐसे प्रस्ताव की स्वीकृति अन्तर्सरकारी परिषद् न दे दे।

संघ सरकार को सरकारिया आयोग के द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट की ये प्रमुख विशेषताएँ हैं। भारत सरकार ने अभी तक रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही नहीं की है। ग़ैर-कांग्रेसी नेताओं ने इस रिपोर्ट को जनवरी, 1988 में नई दिल्ली में हुई बैठक में रद् कर दिया था। क्षेत्रीय दलों ने भी इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को स्वीकार नहीं किया क्योंकि यह उनकी स्वायत्तता की माँग पूर्ण करने से असमर्थ थी।

अलग-अलग रिपोर्टों की समीक्षा और वे सुझाव जिन पर आम सहमति प्राप्त हो सकती है (Review of Various Reports and Suggestions on which there can be a Consensus)

केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की वर्तमान संरचना में किए जा सकने वाले संभव और वांछित परिवर्तनों की प्रकृति पर विचार-विमर्श के लिए राजमन्नार रिपोर्ट, आनंदपुर साहिब का प्रस्ताव, पश्चिमी बंगाल सरकार का स्मरण पत्र और सरकारिया आयोग की रिपोर्ट को आधार बनाया जा सकता है। क्योंकि बहुत-से राज्य अधिक शक्तियों की माँग कर रहे हैं और कई राजनीतिक दलों ने राज्यों की अधिक स्वायत्तता दिए जाने का समर्थन किया है, इसके लिए केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के मुद्दे की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। कोई भी ऐसी माँग के लिए सहमत नहीं हो सकता जिससे भारत को राष्ट्र के रूप में एकता और अखण्डता को कोई चोट पहुंचे और न ही कोई संघ सरकार के द्वारा इन उद्देश्यों के नाम पर शक्तियों का दुरुपयोग करने पर सहमत हो सकता है। इसके साथ ही यद्यपि संघ की शक्तियों को 4 या 5 विषयों तक ही सीमित करने की माँग को कोई स्वीकार नहीं कर सकता, तथापि राज्यों को अधिक शक्तियाँ देने की माँग को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्र

और राज्यों के मध्य सहयोग, उत्तरदायित्व और समझौते की भावना पैदा की जाए। शक्तिशाली राज्यों के साथ-साथ शक्तिशाली केन्द्र का सिद्धान्त उचित प्रतीत होता है, परन्तु आज के समय में केन्द्रीय सरकार का अधिक शक्तिशाली होना प्रत्येक संघात्मक राज्य की स्वाभाविक आवश्यकता बनी हुई है।

मित्रतापूर्ण तथा सहयोगी केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को उत्साहित करने के लिए पुर्नरचना करने के लिए संविधान में संशोधन करने के लिए, कुछ व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में अलग-अलग रिपोर्टों और प्रस्तावों की साझी विशेषताओं के आधार पर निम्नलिखित सुझावों पर विचार किया जा सकता है:

(1) राज्यों के मध्य सीमाएँ निर्धारित करने के सम्बन्ध में संघ की शक्ति में संशोधन करने की आवश्यकता है। सम्बन्धित राज्यों में समझौते की भावना विकसित करने के लिए सभी प्रयास किए जाने चाहिए और सभी राज्यों के राष्ट्रीय हित की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर ही कार्य करना चाहिए।

(2) अनुच्छेद 356 में परिवर्तन किए जाने चाहिए ताकि केन्द्र के द्वारा इसको बार-बार और आसान प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जा सके।

(3) राज्यपाल के लिए उसके कार्यों से सम्बन्धित दिशा-निर्देश तैयार किए जाने चाहिए। राज्यपाल को मुख्य मन्त्री की नियुक्ति, और राज्य विधानसभा स्थगित करने और अन्य इच्छित शक्तियों को व्यावहारिक रूप देते समय इन दिशा-निर्देशों के अनुसार चलना चाहिए।

(4) करों के विभाजन में राज्यों को अधिक भाग दिया जाना चाहिए।

(5) योजना आयोग के अतिरिक्त संवैधानिक अधिकार की सीमाबंदी और योजना आयोग की तुलना में राष्ट्रीय विकास परिषद् की भूमिका को सुदृढ़ बनाना चाहिए।

(6) करों के विभाजन करने वाली सूची में निगम कर भी शामिल किए जाने चाहिए।

(7) संघ और राज्य सरकारों के मध्य विचार-विमर्श के लिए एक संस्था की स्थापना की जानी चाहिए। राष्ट्रीय विकास परिषद् को दृढ़ और सक्रिया बना कर इसको कानूनी दर्जा दिया जा सकता है या निश्चित शक्तियों और कानूनी दर्जे वाली अन्तर्राज्यीय तालमेल परिषद् की स्थापना की जा सकती है या फिर केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में अनुकूल विस्तारित भूमिका वाली राष्ट्रीय अध्यक्षात्मक परिषद् (National Presidential Council) की स्थापना की जा सकती है। दूसरे शब्दों में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में सहयोग और सामंजस्य पैदा करने के लिए एक नई संस्था की स्थापना की जानी चाहिए।

(8) राज्यपाल का पद मनोनीत किया नहीं बल्कि निर्वाचित होना चाहिए ताकि संघ के कठोर नियन्त्रण से यह पद से स्वतन्त्र हो। वैकल्पिक रूप में उसकी नियुक्ति की राज्य मन्त्री परिषद् के द्वारा पुष्टि की जानी चाहिए।

(9) राज्यपाल के पद पर राजनीतिक नियुक्तियाँ करने की कुप्रथा समाप्त होनी चाहिए। कोई व्यक्ति जो राज्यपाल के रूप में एक बार सेवा कर चुका हो, उसको राज्य में दोबारा किसी पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।

(10) राष्ट्रपति के द्वारा राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है परन्तु यह संघीय मन्त्रिपरिषद् के परामर्श पर नहीं बल्कि निर्णय में राष्ट्रपति की भागीदारिता के द्वारा लागू किया जाना चाहिए।

(11) अनुच्छेद 356 के सम्बन्ध में, राष्ट्रपति राज्यपाल या संघीय मन्त्री परिषद् के मन्त्रियों की सिफ़ारिश से संतुष्ट नहीं होता तो वह मामला परामर्श के लिए सर्वोच्च न्यायालय को या किसी अन्य परामर्शकारी समिति को सौंप सकता है।

(12) हिन्दी या अंग्रेज़ी या किसी अन्य क्षेत्रीय भाषा सहित केन्द्र और राज्यों के मध्य संचार का निश्चित माध्यम होनी चाहिए।

(13) सार्वजनिक निगमों और राष्ट्र की आमदनी का 40% भाग राज्यों को सौंपा जाना चाहिए।

(14) संघ सरकार को अखिल भारतीय नीतियाँ बनानी चाहिए और फिर संघीय दिशा-निर्देशों और निगरानी अधीन इनको लागू करने के लिए राज्य सरकारों को उचित शक्तियाँ दी जानी चहिए।

नोट

ये कुछ सुझाव हैं जिन पर संवैधानिक व्यवस्थाओं के अधीन ही केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में सामंजस्य पैदा करने के लिए विचार किया जा सकता है। बहुत अधिक शक्तिशाली केन्द्र और कमजोर राज्य या कमजोर केन्द्र और शक्तिशाली राज्य दोनों ही हानिकारक प्रस्ताव हैं। इन दो चरम सीमाओं को छोड़ कर सुधार किए जाने चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि सहयोगी संघवाद विकसित किया जाए और विवादग्रस्त और टकराव वाले संघवाद पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।

साझी राजनीति के इस युग में जहाँ कि अब कई एक राजनीतिक दल केन्द्र और राज्यों में सत्ता का प्रयोग कर रहे हैं और विशेषत: केन्द्र में राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दलों के साथ-साथ क्षेत्रीय राजनीतिक दल भी सत्ताधारी बने हुए हैं। इस बात की आवश्यकता है कि विद्यमान राजनीतिक वातावरण का लाभ लेकर सभी राजनीतिक दल मिलकर विद्यमान केन्द्र और राज्यों के मध्य सम्बन्धों के बारे में एक आम सहमति बना लें और इसके आधार पर भारतीय संविधान की मौलिक संरचना का सम्मान करते हुए संघ-राज्य सम्बन्धों का पुनर्निर्धारण किया जाना चाहिए। शक्तिशाली केन्द्र के साथ-साथ शक्तिशाली राज्य मिलकर ही भारत का तेज़ी से सामाजिक-आर्थिक विकास करने का स्रोत बन सकते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

रिक्त स्थान भरें (Fill in the blanks)

10. सरकारिया आयोग की नियुक्ति ········ में की गई थी।
11. सरकारिया रिपोर्ट के अनुसार राज्य विधानसभा में बहुमत दल के नेता को ········ नियुक्त किया जाना चाहिए।
12. सरकारिया आयोग के अनुसार, राज्यपाल का पद मनोनीत किया नहीं, बल्कि ········ होना चाहिए।

6.7 सारांश (Summary)

- संविधान के भाग XI में संघ और राज्यों के मध्य वैधानिक शक्तियों के विभाजन का विस्तृत वर्णन किया गया है।
- संघीय संसद और प्रत्येक राज्य विधानसभा समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। परन्तु किसी समवर्ती विषय पर संघ के एक कानून और किसी राज्य के एक कानून में झगड़ा पैदा हो जाने की स्थिति में संघ के कानून को राज्य कानून की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है।
- जब राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के अधीन राष्ट्रीय संकटकाल की घोषणा कर देता है तो संघ की कार्यकारी शक्ति सभी राज्यों पर लागू हो जाती है और संघ किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति को प्रयोग करने के ढंग से सम्बन्धित निर्देश दे सकता है।
- संघ सरकार के पास भारतीय संचित निधि की जमानत पर ऋण लेने की शक्ति है, परन्तु इस पर संसद के कानूनों (अनुच्छेद 292) के द्वारा समय-समय पर लागू प्रतिबन्ध लागू होते हैं। राज्य भी भारतीय क्षेत्र में अपनी संचित निधि की जमानत पर ऋण ले सकते हैं परन्तु राज्य विदेशों से ऋण नहीं ले सकते। भारत सरकार भी किसी राज्य को ऋण दे सकती है।
- भारतीय संघात्मक व्यवस्था में संघ और राज्यों की स्थिति टकराव वाली भी बनी रही है। कई मुद्दों पर संघ और राज्यों के अलग-अलग और विरोधी विचार रहे हैं।

6.8 शब्दकोश (Keywords)

- सिफारिश (Recommendation): संस्तुति, खुशामद, चापलूसी (जैसे नौकरी के लिए सिफारिश करना।) योग्यता आदि का बखान करना।
- आयोग (Commission): नियुक्ति, कमीशन, काम देना।

6.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. "भारत का संविधान न पूर्णतया एकात्मक है, न पूर्णयता संघात्मक है बल्कि दोनों का मिश्रण है" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? विवेचना कीजिए।
2. सहकारी संघवाद क्या है? इसके कौन-कौन से तल है।
3. संघ और राज्यों के मध्य वैधानिक और वित्तीय सम्बन्धों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखें–
   (1) राजमन्नार रिपोर्ट 1972
   (2) आनन्दपुर साहिब का प्रस्ताव 1973
   (3) सरकारिया आयोग की सिफारिशें 1988

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

1. राज्य	2. राज्य
3. 8	4. (*d*)
5. (*b*)	6. (*c*)
7. असत्य	8. सत्य
9. सत्य	10. 1983
11. मुख्यमंत्री	12. निर्वाचित

6.10 सन्दर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. *भारतीय राजनीतिक प्रणाली* – यू.आर.घई।
2. *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था* – एन. छाबरा।

नोट

पाठ 7: स्थानीय शासन (Local Governance)

संरचना (Structure)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
7.1 स्थानीय स्वशासन का अर्थ (Meaning of Local Government)
7.2 भारत में स्थानीय शासन का विकास (Development of Local Governance in India)
7.3 स्थानीय स्वशासन का महत्त्व (Importance of Local Government)
7.4 नगर निगम (Municipal Corporation)
7.5 पटना नगर निगम (Patna Municipal Corporation)
7.6 चेन्नई नगर निगम (Chennai Municipal Corporation)
7.7 दिल्ली नगर निगम (Delhi Municipal Corporation)
7.8 नगरपालिका (Municipality)
7.9 पंचायती राज (Panchayati Raj)
7.10 बिहार में पंचायती राज योजना (Panchayati Raj Scheme in Bihar)
7.11 पंचायत समिति के अधिकार एवं कार्य (Powers and Functions of the Panchayat Samiti)
7.12 पंचायत समिति का वित्तीय आधार (Financial Basis of the Panchayat Samiti)
7.13 ग्राम पंचायत का संगठन (The Organisation of Village Panchayat)
7.14 ग्राम पंचायत का कार्य (Functions of Village Panchayat)
7.15 ग्राम पंचायत के आर्थिक साधन (Financial Basis of the Gram Panchayats)
7.16 ग्राम पंचायतों पर राज्य सरकार का नियंत्रण (Governmental Control over the Gram Panchayats)
7.17 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
7.18 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

उद्देश्य (Objectives)

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- स्थानीय शासन का भारत में विकास समझने हेतु।
- स्थानीय स्वशासन का अर्थ एवं महत्व समझने में।
- नगर निगम का उद्देश्य समझने में।
- पंचायती राज का महत्व समझने में।

नोट

प्रस्तावना (Introduction)

स्वतन्त्र भारत में प्रारंभिक असफल प्रयासों के बाद स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को संवैधानिक रूप से सशक्त बनाया गया है। विश्व के अन्य देशों में भी स्थानीय शासन मौजूद है। फ्रांस में इसे स्थानीय प्रशासन, अमेरिका में म्यूनिसिपल शासन और भारत में स्थानीय शासन कहा जाता है।

उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश काल में लिये 'स्थानीय स्वशासन' और 'स्वायत्त शासन' नामक दो शब्दों का प्रयोग किया जाता था। भारतीय संविधान में स्थानीय शासन शब्द का प्रयोग किया गया है।

स्थानीय शासन जनता द्वारा अपने लिए किया जाना स्वयं निर्देशित शासन है। यह लोकतन्त्र की आधारभूत होती है, जिसकी मान्यता है कि सत्ता जनता में होती है। भारत में प्राचीनकाल से स्थानीय स्वशासन की नागरिक प्रबन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जो अब स्वतन्त्र भारत में संवैधानिक रूप से लागू है।

7.1 स्थानीय स्वशासन का अर्थ (Meaning of Local Government)

स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र का प्राण है। प्रजातंत्र जनता के लिए जनता द्वारा तथा जनता का शासन है। स्थानीय स्वशासन से ऐसी स्थानीय संस्था की कल्पना की जाती है। जिसे बाह्य नियंत्रण से स्वतंत्र होकर कार्य करने का अधिकार प्राप्त हो तथा उसके अपने क्षेत्रों में प्रशासन के मामले में स्थानीय समुदाय भी हाथ बँटाता हो। यद्यपि प्रत्येक स्थानीय संस्था के अपने क्षेत्र, कानूनी अधिकार एवं आवश्यक संगठन होते हैं, फिर भी इसे संप्रभुता नहीं मिली रहती और देश के अन्य उच्च पदाधिकारियों के अधीन रहना पड़ता है। इसके अधिकार एवं कार्य क्षेत्र सीमित होते हैं और सीमाओं के अंतर्गत ही उन्हें अधिकार एवं कार्य करने की स्वतंत्रता रहती है।

गिलक्राइस्ट ने स्थानीय संस्थाओं के बारे में लिखते हुए कहा है, *"ये अधीनस्थ संस्थाएँ हैं लेकिन एक सीमित क्षेत्र में इन्हें कार्य करने की स्वतंत्रता है।"* [1]

जी.डी.एच. कोल के अनुसार, *"स्थानीय स्वशासन का तात्पर्य है–ऐसे शासन जो एक सीमित क्षेत्र के लिए काम करता है तथा हस्तांतरित अधिकारों का प्रयोग करता है।"* [2]

गिलक्राइस्ट का कहना है कि, *"स्थानीय स्वशासन का वर्णन किया जा सकता है, उसकी परिभाषा नहीं की जा सकती, क्योंकि परिभाषा के लिए कुछ सीमाओं की आवश्यकता है और केंद्रीय एवं स्थानीय स्वशासन में स्पष्ट क्षेत्र विभाजन नहीं किया जा सकता।"* [3]

गोल्डिंग के अनुसार, *"स्थानीय सरकार की सबसे सरल परिभाषा यही है कि यह एक बस्ती के लोगों द्वारा अपने मामलों का स्वयं ही प्रबंध है।"* [4]

एक दूसरे विद्वान के अनुसार, *"वे स्थानीय समस्याओं को सुलझाने तथा स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिए स्थानीय प्रकृति की शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं।"* [5]

इस प्रकार स्थानीय स्वशासन से हमारा अभिप्राय ऐसी सरकार से है जो एक स्थानीय क्षेत्र का प्रबंध करती हो।

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज के अनुसार, *"स्थानीय स्वशासन उस क्षेत्रीय और असंप्रभु समाज को कहते हैं जिसे कुछ वैध अधिकार प्राप्त होते हैं और अपने कार्यों को सँभालने के लिए जिसका एक आवश्यक संगठन या व्यवस्था होती है।"*

1. "These organs are essentially subordinate bodies but they have independence of action within certain stated limits."
2. "By local Government we usually mean some from of Government that serves only a small area and exercises only delegated powers."
3. "It can be described but not defined, for a definition requires limit, and local Government and Central Government can not always be demarcated."
4. "Local Government has been defined in various ways, but perhaps the simplest definition is the management of their own affairs by the people of a locality."
5. "They are local organs created in local areas with powers local in character to solve problems to fulfil local needs."

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक देश की सरकार अपनी स्थानीय समस्याओं के समाधान के लिए स्थानीय व्यवस्था करती है। अतः यह स्पष्ट है कि "स्थानीय स्वशासन वह शासन प्रणाली है जिसमें स्थानीय जनता के प्रतिनिधि अपने स्वविवेक से स्थानीय समस्याओं के समाधान के लिए स्थानीय विषयों का प्रबंध एक निर्धारित सीमा के अंतर्गत करते हैं।"

नोट

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्थानीय संस्थाएँ राज्यतंत्र से बिल्कुल अलग होती हैं किंतु उनका निर्माण राज्य सरकारों के अधिनियमों के द्वारा ही होता है अतः वे पूर्णतः स्वतंत्र नहीं होते हैं। किंतु जी.डी.एच. कोल ने दो बातों पर विशेष बल दिया है- स्थानीयता और सीमित स्वतंत्रता। यह स्थानीय महत्त्व के कार्यों जैसे-सफाई, रोशनी, जल-आपूर्ति आदि कार्यों का संपादन पूर्णतः स्वतंत्र ढंग से करता है। उसी प्रकार सीमित स्वतंत्रता का तात्पर्य है कि वे राज्य सरकारों द्वारा गठित होते हैं, अतः उन पर राज्य सरकार का नियंत्रण भी बना रहता है।

इस प्रकार लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की भावना को सरकारी रूप प्रदान करने में स्थानीय स्वायतन संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संविधान के 74वें संवैधानिक संशोधन 1992 द्वारा स्थानीय नगर संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई। सभी राज्यों में इस संशोधन के अनुसार अपने-अपने राज्य की इन संस्थाओं के लिए आवश्यक कानून पारित किए हैं।

74वें संशोधन द्वारा स्थानीय नगर संस्थाओं को पहली बार संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। संविधान में भाग 9 A शामिल किया गया तथा 12वीं सूची इसमें जोड़ी गई जिसमें 18 विषय शामिल हैं। संविधान के इस भाग में शहरी संस्थाओं की संरचना, कार्य शक्तियों आदि का उल्लेख है। इस संशोधन ने प्रत्येक नगर के लिए तीन स्तरीय शहरी स्थानीय संस्थाओं की व्यवस्था की है।

1. विशाल शहरी क्षेत्रों के लिए नगर निगम।
2. छोटे शहरी क्षेत्रों के लिए नगरपालिका परिषद्।
3. परिवर्तनीय क्षेत्रों के लिए नगर पंचायत।

स्थानीय शासन की अन्य संस्थाएँ--(1) नोटी फाइड एरिया कमेटी, (2) नगर क्षेत्र कमेटी, (3) सुधार न्यास, (4) छावनी बोर्ड, (5) पोर्ट ट्रस्ट।

स्थानीय नगर संस्थाओं पर जहाँ अनुदान द्वारा नियंत्रण बढ़ता है वहाँ सरकार की शक्तियों के कारण भी उन पर नियंत्रण रहता है। सरकार उनके साधारण से साधारण कार्यों में हस्तक्षेप करती है। इससे इन संस्थाओं को कार्य करने की कोई स्वतंत्रता नहीं रहती। वह एक प्रकार से सरकार की एजेंट बन जाती है। नगरपालिका संवैधानिक संशोधन, 1992 इस कमी को दूर करने में कहाँ तक सफल होगा। इसका निर्णय भविष्य ही करेगा। फिर भी इन संस्थाओं में लोकतंत्रीय अवधारणा की जड़ें मजबूत नहीं हो सकी हैं।

7.2 भारत में स्थानीय शासन का विकास (Development of Local Governance in India)

एक स्वतंत्र, सुसंगठित एवं शक्तिशाली राष्ट्र के लिए स्थानीय स्वायतन संस्थाएँ अनिवार्य अंग की भाँति विकसित हुई हैं। आज भारत में ही नहीं अपितु विश्व के सभी विकसित राष्ट्रों में इन संगठनों के माध्यम से स्थानीय प्रशासन का कार्य होता है। लगभग 2000 वर्षों से भी अधिक समय से ग्राम पंचायत ग्रामीण भारत का एक अविभाज्य भाग बन चुकी हैं। 'ग्रामिणी' शब्द ऋग्वेद में मिलता है। अनेक राजघराने उठे और गिरे, बने और बिगड़े, परंतु आत्मनिर्भर ग्रामीण जीवन चलता रहा। अधिकांशतः ग्राम पंचायतें ही बहुत-सी चीजों की देखभाल करती थीं। जैसे--तालाब, नदियाँ, चरागाह, बाजार और मंदिर गाँव की गतिविधियों में राजा की ओर से बहुत कम दखलअंदाजी की जाती थी।

ब्रिटिश शासन की शुरुआत से स्थिति धीरे-धीरे बदलने लगी। नए कानूनों और नए न्यायालयों की स्थापना से पंचायतों का महत्त्व घट गया। सर्वप्रथम भारतवर्ष में East India Company के आगमन काल में मध्य कालीन युग में स्थानीय संस्थाओं का महत्त्व शिथिल पड़ गया था किंतु अंग्रेजों ने ब्रिटिश स्वायत संस्थाओं के आधार पर यहाँ भी स्वायतन संस्थाओं के स्वरूप में परिवर्तन करके क्रियाशील बनाया। इस अवधि में इसके विकास को हम चार भागों में बाँटकर अध्ययन कर सकते हैं।

प्रथम चरण (1600-1881 ई.)—भारतवर्ष में 1687 ई. में 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' ने ईस्ट इंडिया कंपनी को मद्रास शहर की व्यवस्था के लिए 'मद्रास नगर निगम' की स्थापना की गई।

द्वितीय चरण (1882-1919 ई.)—1907 ई. में भारत सरकार ने 'विकेंद्रिकरण आयोग' का गठन किया। 1915 ई. में भारत सरकार ने ग्राम पंचायतों एवं स्वायतन संस्थाओं में निर्वाचन प्रणाली को अपनाया।

नोट

तृतीय चरण (1919-1947 ई.)—भारत सरकार अधिनियम 1919 के द्वारा केंद्र शासन की स्थापना की गई जिसमें स्थानीय शासन को प्रांतों का एक हस्तांतरित विषय बनाया गया और इसे एक मंत्री की देख-रेख में सौंप दिया गया।

चतुर्थ चरण (15 अगस्त 1947 से-वर्तमान)—भारत की आजादी के उपरांत 1948 में पं. जवाहरलाल नेहरू ने सभी राज्यों के मंत्रियों का सम्मेलन बुलाकर जिसमें भारतीय संविधान की धारा 40 के अनुसार प्रत्येक राज्य में ग्राम पंचायत का गठन करने की आवश्यकता बताई।

स्थानीय स्वशासन के कार्य—स्थानीय स्वशासन स्वतंत्र राष्ट्रों की आधारशिला है। आधुनिक युग में स्थानीय स्वायत संस्थाएँ विविध प्रकार के कार्यों का निपटारा करती हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. **नागरिक कार्य**—आधुनिक युग में स्थानीय संस्थाएँ नागरिकों को अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करती हैं, जैसे सफाई और रोशनी की व्यवस्था करना आदि।

2. **सामाजिक और सांस्कृतिक कार्य**—स्थानीय संस्थाएँ सामाजिक तथा सांस्कृतिक कार्यों का भी प्रबंध करती हैं, जैसे—सिनेमा, नाटक, कलाकेंद्र, पुस्तकालय और वाचनालयों की स्थापना, क्लब अजायबघर इत्यादि की स्थापना करता है।

3. **शैक्षणिक कार्य**—स्थानीय संस्थाएँ नागरिकों की शिक्षा के लिए स्थानीय शैक्षणिक संस्थाओं का निर्माण एवं रात्रि पाठशाला एवं पुस्तकालय की व्यवस्था करती हैं।

4. **आर्थिक कार्य**—स्थानीय संस्थाओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के आर्थिक कार्यों का भी संपादन किया जाता है। उदाहरण के लिए, खाद्य पदार्थ और साग-सब्जियों के मूल्यों का निर्धारण, खेतों और पशु-पालन के विकास का कार्य, टाम, बस तथा सिंचाई और उत्तम बीज तथा खाद का प्रबंध करती है।

5. **विकास कार्य**—स्थानीय संस्थाओं के द्वारा नागरिकों के विकास संबंधी विभिन्न प्रकार के कार्यों का संपादन किया जाता है, इसके लिए अस्पताल, स्कूल, स्नानगृह, शौचालय, घाट, उद्यान, क्रीड़ा स्थल आदि बनवाती है।

6. **प्रशासकीय कार्य**—स्थानीय संस्थाओं के द्वारा प्रशासकीय कार्यों का भी संपादन किया जाता है। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार के करों की वसूली एवं प्रशासकीय कार्यक्रमों के लिए नियमों का निर्धारण करना।

7. **पुलिस कार्य**—स्थानीय संस्थाएँ नागरिकों के जानमाल की रक्षा का प्रबंध करती हैं। भारतीय गाँवों में ग्राम रक्षादल की स्थापना कर सुरक्षात्मक कार्यों का संपादन करती है।

8. **न्यायिक कार्य**—विश्व के कई देशों की स्थानीय संस्थाओं के हाथ में न्यायिक कार्यों का संपादन करने का भार सौंपा गया है। उदाहरण के लिए, भारतीय गाँवों में ग्राम कचहरी न्यायपालिका का एक प्रमुख अंग है।

9. **विविध कार्य**—आधुनिक प्रजातांत्रिक युग में स्थानीय संस्थाओं को अन्यान्य विविध कार्यों का भी संपादन करना पड़ता है, जैसे बाढ़, आगजनी एवं बुखार से रक्षा की व्यवस्था, धर्मशाला एवं सराय बनवाना, अपाहिजों की रक्षा का भार, बाँध का निर्माण आदि।

इस प्रकार स्थानीय स्वशासन का कार्य आधुनिक युग में काफी व्यापक और विस्तृत हो गया है। वह नागरिकों के गर्भ-स्थल से लेकर मरघट तक (From Cradle to Grave) और जन्म से मृत्यु तक के कार्यों का संपादन करता है।

7.3 स्थानीय स्वशासन का महत्त्व (Importance of Local Government)

श्री जवाहरलाल नेहरू ने स्थानीय स्वशासन के महत्त्व पर कहा था कि, *"स्थानीय स्वशासन लोकतंत्र की सच्ची पद्धति का आधार है और होना भी चाहिए। हमें प्राय: लोकतंत्र को ऊपरी तरफ से सोचने की आदत पड़ गई*

हैं और हम नीचे की तरफ से लोकतंत्र के बारे में कुछ सोचते नहीं हैं। लोकतंत्र ऊपर से शायद सफल न हो जब तक कि आप उसे नीचे से इस बुनियाद पर न बनाएँ।" संक्षेप में स्थानीय स्वशासन की आवश्यकता एवं महत्त्व निम्नलिखित हैं–

नोट

1. स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र का आधार है–स्थानीय स्वशासन प्रजातंत्र की सीढ़ी है। यहाँ नागरिकों को प्रजातंत्र का प्रारंभिक पाठ मिलता है।

2. स्थानीय स्वशासन, स्थानीय समस्याओं का हल–स्थानीय संस्थाओं से लाभ यह है कि इससे सारा स्थानीय कार्य कुशलता, ईमानदारी, शीघ्रता और जनहित की दृष्टि से चलता है।

3. स्वतंत्रता का पोषक–स्थानीय स्वशासन स्वतंत्रता का पोषक माना जाता है। इस संबंध में फाइनर ने ठीक ही लिखा है, *"स्थानीय स्वशासन का सबसे बड़ा गुण है स्थानीय स्वतंत्रता का विकास करना।"*

4. स्थानीय स्वशासन में अर्थबचत होता है–स्थानीय स्वशासन में स्थान विशेष के ही लोग भाग लेते हैं। उन लोगों को राजकीय कोष से वेतन और भत्ता नहीं दिया जाता है। अधिकांशत: लोग अवैतनिक रूप से कार्य करते हैं। इस प्रकार के स्थानीय स्वशासन से राज्य सरकार की आर्थिक बचत होती है।

5. सरकार के कार्यों में सहायक–आधुनिक समय में जनसंख्या की अपार वृद्धि के कारण राज्य एवं सरकार की राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याएँ जटिल होती जा रही हैं। नागरिकों को सबसे पहले लोकतंत्र का प्रशिक्षण इन्हीं संस्थाओं में मिलता है। स्थानीय स्वशासन से ही वास्तविक लोकतंत्र का स्वप्न साकार हो सकता है।

बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट–1957 में पंचायतों के गठन के बारे में विभिन्न राज्यों द्वारा पारित कानूनों की समीक्षा के लिए श्री बलवंत राय मेहता के नेतृत्व में गठित कमेटी ने 1958 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस समिति ने योजना आयोग के उस प्रस्ताव को जिसमें यह कहा गया है कि जिलों में प्रजातांत्रिक शासन के ऐसे ढाँचे कायम किए जाएँ जिनमें ग्राम पंचायतों को ऊँचे स्तर की जनतांत्रिक समस्याओं से संबद्ध रखने की पूरी व्यवस्था हो, मानकर अध्ययन आरंभ किया।

समिति ने सिद्धांत रूप में प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण के सिद्धांत को स्वीकार किया। फलस्वरूप सरकार का कार्य सिर्फ पथ प्रदर्शन, पर्यवेक्षण एवं योजना बनाने तक रखा जाए। प्रखंड के स्तर पर पंचायत समिति का गठन हो जिसका गठन ग्राम पंचायतों द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन के माध्यम से हो। इसका कार्यकाल पाँच वर्ष का हो।

समिति के प्रतिवेदन के द्वारा पंचायत समितियों की आय के साधन मालगुजारी, भूमि राजस्व पर शेष, पेशाकर, अचल संपत्ति के हस्तांतरण के शुल्क, पथकर, तीर्थ यात्रा कर, मोटरगाड़ी कर का हिस्सा स्वेच्छा से सार्वजनिक अंशदान, सरकारी अनुदान संपत्ति से आने वाला किराया तथा मुनाफा आदि।

7.4 नगर निगम (Municipal Corporation)

शहरी स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में नगर निगम शीर्ष स्थान रखता है। नगर निगम, नगरपालिका का बड़ा रूप है। बड़े-बड़े शहरों में नगर निगम की स्थापना होती है। इसकी तुलना इंग्लैंड के काउंटी बोरो (County Borough) से की जा सकती है। बड़े शहरों की आवश्यकताएँ और समस्याएँ कठिन होती हैं, जब उन सबों का समाधान नगरपालिका से नहीं हो पाता है, तो वहाँ नगर-निगम की स्थापना होती है। नगरपालिका की तुलना में नगर निगम के कार्य एवं आय के साधन भी अधिक होते हैं, इस पर नगरपालिका की अपेक्षा सरकारी नियंत्रण भी कम रहता है। प्रत्येक नगर निगम की स्थापना राज्य सरकार के अलग-अलग अधिनियम द्वारा होती है, लेकिन राज्य की सभी नगरपालिकाओं के लिए राज्य सरकार एक ही अधिनियम की व्यवस्था करती है जिस शहर में नगरपालिका में अंतर देखा जा सकता है।

संगठन और विधान के दृष्टिकोण से सभी नगर निगम एक ही श्रेणी में रखे जा सकते हैं, लेकिन कार्य प्रणाली, शक्ति एवं समितियों के दृष्टिकोण से भारत के नगर निगमों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। बंबई, कलकत्ता, मद्रास, प्रेसिडेंसी शहर के नगर निगम एक श्रेणी के हैं तो पूना, अहमदाबाद, नागपुर, जबलपुर, पटना तथा कुछ अन्य शहरों के नगर निगम दूसरी श्रेणी के हैं। हमारे देश में बड़े-बड़े महानगरों में इस संस्था की स्थापना की गई है।

वर्तमान समय में भिन्न-भिन्न राज्यों में जनसंख्या के आधार पर नगर निगम की स्थापना की गई है। यह व्यवस्था राज्यों के कानून द्वारा की गई है। सभी राज्यों ने 74वें संशोधन के अनुसार इस संस्था के लिए आवश्यक

नोट

कानूनों में संशोधन किया है। वर्तमान समय में चेन्नई, कोलकाता और मुंबई के अलावा अनेक राज्यों में नगर निगम की स्थापना की गई है। दिल्ली में संसद के एक अधिनियम 1958 के अनुसार नगर निगम की स्थापना की गई थी जिसमें 74वें संशोधन के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किया गया है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश में कानपुर, लखनऊ, आगरा, इलाहाबाद आदि में नगर निगम हैं।

संगठन (Composition)–देश के अंतर्गत अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग नगर निगमों के लिए नगर निगम के अधिकतम सदस्यों की संख्या निश्चित होती है। इनमें संबंधित राज्यों के वरिष्ठ सदस्य भी शामिल हैं। 74वें संविधान संशोधन के अनुसार सभी नगर निगमों में महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लिए आरक्षित स्थानों की व्यवस्था है। नई व्यवस्था के अनुसार नगर निगम का कार्यकाल 5 वर्ष निश्चित किया गया है। यह भी प्रावधान है कि यदि नगर निगम किसी कारण से भंग हो जाती है, तो उसके चुनाव राज्य आयोग द्वारा छह महीने के अंदर करवाना आवश्यक है।

7.5 पटना नगर निगम (Patna Municipal Corporation)

नगर निगम, नगरपालिका का बड़ा रूप है। बड़े-बड़े नगरों में नगर निगम की स्थापना होती है। पटना बिहार की राजधानी है। ब्रिटिश शासन काल में संपूर्ण पटना के लिए दो प्रकार की स्थानीय संस्थाएँ थीं। एक थी, प्राचीन नगर तथा व्यावसायिक क्षेत्रों के लिए पटना सिटी नगरपालिका तो दूसरी थी, खास पटना तथा नए विकसित क्षेत्रों के लिए पटना प्रशासकीय समिति। फिर भी, नगर की अवस्था अत्यंत दयनीय थी। अत: इन संस्थाओं के कार्यों से असंतुष्ट होकर सरकार ने सन् 1937 ई. में शहर का प्रबंध अपने हाथों में ले लिया। सन् 1951 में बिहार विधानमंडल ने **पटना नगर निगम अधिनियम** पास किया। इसी अधिनियम के आधार पर 15 अगस्त, 1952 ई. पटना नगर निगम की स्थापना हुई। सन् 1953 में मूल अधिनियम में कुछ संशोधन भी किए गए। अत: वर्तमान पटना नगर निगम मूल कानून और संशोधित कानून के आधार पर संगठित एवं संचालित किया जा रहा है।

प्रत्येक संस्था में उसके शासन के विभिन्न अंग होते हैं। पटना नगर निगम के शासन के चार प्रमुख अंग हैं–

(*i*) निगम परिषद् (Corporation Council)

(*ii*) निगम समितियाँ (Corporation Committees)

(*iii*) प्रमुख प्रशासकीय पदाधिकारी (Chief Executive Officer)

(*iv*) पदाधिकारी एवं अन्य कर्मचारीगण (Officials and Others Servants)

आज के शहरी जीवन की आवश्यकताएँ अनेक हैं और इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति नगर निगम करता है। चूँकि बड़े-बड़े शहरों में ही नगर निगम की स्थापना की गई है। इसलिए इनके कार्य नगरपालिका के कार्यों से अधिक विस्तृत एवं व्यापक हैं। लेकिन जैसा कि मुंबई नगर निगम में कार्यों का बँटवारा अनिवार्य और वैकल्पिक रूपों में हुआ है, इस प्रकार का विभेद पटना, नगर निगम में नहीं है। अधिनियम में कार्यों की एक लंबी सूची दी गई है, जिसमें 53 कार्यों की चर्चा है। इस तरह इंग्लैंड की काउंटी बोरो की तरह इसके कार्य संग्राहात्मक हैं। सुविधा के विचार से इसके, अनेकानेक कार्यों को निम्न मुख्य शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है–

(क) लोक-शिक्षा संबंधी कार्य–पटना नगर निगम के लोक शिक्षा संबंधी कार्यों के अंतर्गत ये विषय आते हैं–प्राथमिक, अपर एवं माध्यमिक स्कूलों का प्रबंध करना, सरकार द्वारा सहायता प्राप्त विद्यालयों को चलाना, विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने का प्रबंध करना, पुस्तकालयों, चिकित्सा संस्थाओं, शिक्षण-संस्थाओं और शारीरिक शिक्षण संस्थाओं को अच्छी तरह चलाने के लिए समय-समय पर अनुदान देने का प्रबंध करना। अभी वर्तमान समय में पटना नगर निगम के अंतर्गत प्राइमरी एवं मिडिल स्कूल हैं।

(ख) जन स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सहायक संबंधी कार्य–पटना नगर निगम जन-स्वास्थ्य तथा चिकित्सा संबंधी सहायता का कार्य भी करता है। इसके अंतर्गत ये कार्य आते हैं–स्वच्छता तथा सफाई, जलापूर्ति, मिश्रित खाद्य पदार्थों की बिक्री पर पाबंदी, आपत्तिजनक एवं खतरनाक व्यवसायों पर रोक लगाना, साधारण अस्पताल एवं औषधालयों का प्रबंध करना, पशु-चिकित्सा का प्रबंध करना, चिकित्सा सहायता प्रदान करने वाली संस्थाओं को सहायता देना।

(ग) जन-सुरक्षा संबंधी कार्य–पटना नगर निगम सार्वजनिक सुविधा एवं सुरक्षा के लिए सड़कों पर रोशनी की व्यवस्था करता है, जंगली तथा खतरनाक मकानों तथा स्थानों को हटाने का प्रबंध करता है। आग बुझाना तथा जान-माल की सुरक्षा करना आदि कार्य इसके अंतर्गत आते हैं।

नोट

(घ) जन-कल्याण संबंधी कार्य–पटना नगर निगम के द्वारा जनकल्याण संबंधी कार्यों में मातृ-शिशु-कल्याण-केंद्रों का निर्माण तथा इसकी व्यवस्था करना, कुष्ठ रोगों को दूर करने की व्यवस्था करना, सराय, धर्मशाला, अनाथालय आदि का निर्माण और उसकी व्यवस्था करना।

(ङ) सार्वजनिक सुविधा संबंधी कार्य–नगर निगम सार्वजनिक सुविधा के लिए सड़कों का निर्माण तथा उसका उचित प्रबंध करता है। नालियों, शौच गृहों, मूत्रालयों की व्यवस्था करना, नगर योजना से संबंधित विभिन्न विषय इसके अंदर आते हैं। सार्वजनिक सुविधा हेतु पुल, पार्क, तालाब, घाट एवं कुएँ आदि का प्रबंध करना होता है। इस तरह सार्वजनिक सुविधा के अनेक कार्य पटना नगर निगम के द्वारा किए जाते हैं।

(च) विकास संबंधी कार्य–पटना नगर निगम अधिनियम में इसके कुछ विकास संबंधी कार्यों की भी चर्चा की गई है। आदर्श गृहों का निर्माण तथा व्यवस्था, शहरों को उचित ढंग से बसाना, गाय, बैल, घोड़े खच्चर आदि जानवरों की नस्ल सुधार की व्यवस्था, मछली उद्योग को प्रोत्साहन देना तथा साग-सब्जी को उपजाना आदि कार्य इसके अंतर्गत आते हैं। निगम कर्मचारियों के लिए आवास गृह का प्रबंध करना तथा इसके लिए कर्ज देने की व्यवस्था आदि कार्य भी हैं।

(छ) प्रशासन संबंधी कार्य–पटना नगर निगम के कुछ प्रशासन संबंधी कार्य भी होते हैं। जीवन-मरण का लेखा-जोखा रखना, श्मशानों तथा कब्रिस्तानों का नियंत्रण करना, नए बाजारों का प्रबंध करना, बूचड़खानों का बनवाना, निगम के कार्यालय तथा सार्वजनिक स्मारकों की रक्षा, नगर निगम की चौहद्दी निश्चित करना, जमीन और मकानों की पैमाइश करना, विवाहों का पंजीकरण, नगर का नक्शा बनवाना आदि कार्य इसके अंतर्गत आते हैं।

पटना नगर निगम के कार्य बहुत विस्तृत हैं। 53 विषयों की जो लंबी सूची दी गई है उनमें वह किन कार्यों को कर सकता है और किन कार्यों को नहीं, यह उसके आय के साधन पर निर्भर करता है। आय के पर्याप्त साधन के अभाव में पटना नगर निगम सभी कार्यों को करने में अब तक समर्थ न रहा है।

पटना नगर निगम के आय के साधन–कार्यों के संपादन के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार ईंधन के लिए लकड़ी, कोयला एवं तेल की आवश्यकता होती है उसी प्रकार किसी भी संस्था के कार्यों को करने तथा उसे सुचारु रूप से चलाने के लिए आय की आवश्यकता होती है। पटना नगर निगम की आय के साधन मुख्यतः पाँच प्रकार के हैं–

(क) म्युनिसिपल टैक्स (Municipal Tax)

(ख) विशेष सेवाओं के लिए कर (Taxes for the Special Services)

(ग) शुल्क (Fees)

(घ) सरकारी अनुदान (Grants-in-Aid)

(ङ) कर्ज (Loans)

(क) म्युनिसिपल टैक्स–पटना नगर निगम को कर लगाने का अधिकार प्राप्त है। लेकिन किसी प्रकार का कर लगाने के पूर्व राज्य सरकार से अनुमति ले लेनी पड़ती है। ऐसे करों में मकान कर, गाड़ियों, घोड़ों तथा अन्य जानवरों पर कर, पेशाकर, बाहर से आने वाले जानवरों, सामानों तथा गाड़ियों पर कर, अखबारों को छोड़कर विज्ञापनों पर कर आते हैं।

(ख) विशेष सेवाओं के लिए कर–पटना नगर निगम के द्वारा विशेष प्रकार की सेवाएँ भी की जाती हैं। जैसे–जल, पाखाना, रोशनी, नाली आदि की व्यवस्था करना और इन सेवाओं पर कर लगाने का अधिकार प्राप्त है। अधिनियम के अनुसार इन सेवाओं के कर का मूल्यांकन मकानों के वार्षिक मूल्य पर निर्भर करता है। लेकिन जल कर मकानों के वार्षिक मूल्य के अधिक-से-अधिक 12.5% तक लगाया जा सकता है। किंतु कृषि के लिए व्यवहार में आने वाली जमीन या सार्वजनिक तालाब पर ये कर नहीं लगाए जा सकते। जेल, पागलखानों को जहाँ पाखाने, मूत्रालयों की सफाई का अपना इंतजाम है। पाखाना कर से छूट दी जा सकती है।

(ग) शुल्क–राज्य सरकार से अनुमति प्राप्त कर नगर निगम रजिस्ट्रेशन शुल्क अथवा लाइसेंस शुल्क ले सकता है। इस तरह के शुल्क के अंतर्गत गाड़ियों, भाड़े पर चलाई जाने वाली विभिन्न सवारियों तथा उन्हें खींचने

नोट

वाले जानवर, पटना की सीमांतर्गत निगम द्वारा बनाए गए घाटों पर लगने वाले जहाजों तथा नावों पर, कुत्ता तथा प्लेटफार्म पर के शुल्क आते हैं। पटना नगर निगम इन सवारियों और वस्तुओं पर पथ कर लगा सकता है, जो पटना के अंतर्गत बिक्री, उपभोग या व्यवहार के लिए लाए जाते हैं। उन सवारियों, गाड़ियों तथा जानवरों पर भी पथ कर लगाया जा सकता है जो पटना में प्रवेश करते हैं, किंतु जिन पर किसी प्रकार का कर या शुल्क लगाया गया है। उस पर दुबारा कर नहीं लगाया जा सकता है।

(घ) सरकारी अनुदान–नगर निगम के आय के साधनों में सरकारी अनुदान एक प्रमुख साधन है। नगर निगम के करों से प्राप्त आय पर्याप्त नहीं होती है। साथ-ही-साथ भारतीय जनता में कर देने की प्रवृत्ति अभी नहीं जग पाई है। जिसके कारण अधिकांश नगर निगम की हालत अच्छी नहीं है। अत: राज्य सरकार की सहायता आवश्यक हो जाती है। दूसरी तरफ राज्य सरकार भी सहायता देना इसलिए पसंद करती है कि इसके द्वारा उसे नगर निगम पर नियंत्रण रखने का अवसर मिलता है। सरकारी अनुदान किस रूप में तथा कितना दिया जाएगा, इसके संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं है।

(ङ) कर्ज–राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति लेकर तथा उसके द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के अंतर्गत, पटना नगर निगम कर्ज भी ले सकती है। यद्यपि कर्ज कभी भी आय का साधन नहीं हो सकता है फिर भी इसके कार्यों के संपादन में इसका बहुत बड़ा हाथ होता है। अधिनियम के अनुसार वर्णित कार्य के संपादन तथा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए।

7.6 चेन्नई नगर निगम (Chennai Municipal Corporation)

चेन्नई नगर निगम (पुराना नाम: मद्रास नगर निगम) भी अन्य निगमों की तरह एक पुराना नगर निगम है। इसके प्रारंभिक अधिनियम में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। मद्रास नगर निगम के शासन के चार अंग हैं–

***(i)* निगम कौंसिल (Corporation Council)**–निगम कौंसिल में 80 कौंसिलर और 4 एल्डर मैन होते हैं। 66 डिविजनल कौंसिलरों में 50 सामान्य सीट के लिए चुने जाते हैं। पाँच स्थान अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित रहते हैं। 4 स्थान मुसलमानों, 2 स्थान भारतीय ईसाइयों, 1 स्थान श्रमिकों के लिए सुरक्षित रखे गए हैं जो कारखाना, कपड़े के मिल, मद्रास बंदरगाह तथा नगर के कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों द्वारा चुने जाते हैं।

राज्य सरकार कुछ विशेष कौंसिलरों को जो नगर प्रशासन का विशेष ज्ञान रखते हैं, नियुक्त कर सकती है। ये विशेष प्रकार के कौंसिलरों नगर प्रशासन से संबंधित किसी खास विषय के लिए नियुक्त किए जाते हैं और वे उसी विषय में ही कौंसिलर के अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं। किंतु अपना मतदान नहीं कर सकते। 5 एल्डर मैन जिनमें एक महिला रहती है, का चुनाव 80 कौंसिलरों द्वारा होता है। निगम कौंसिल का कार्यकाल 3 वर्ष का है।

***(ii)* स्थाई समितियाँ (Standing Committees)**–मद्रास नगर निगम में 6 स्थाई समितियाँ हैं जो निम्नलिखित हैं–

(क) लेखा (Account) (ख) शिक्षा (Education)

(ग) स्वास्थ्य (Health) (घ) कर एवं वित्त (Tax and Finance)

(ङ) नगर योजना और सुधार (Town Planning and Improvement)

(च) जन कार्य (Public Works)

इसके अतिरिक्त सरकार की पूर्व अनुमति से अन्य स्थाई समिति का निर्माण भी हो सकता है।

***(iii)* म्युनिसिपल कमिश्नर (Municipal Commissioner)**–राज्य सरकार कौंसिलर को छोड़कर किसी को भी नगर कमिश्नर नियुक्त कर सकती है। सर्वप्रथम इसकी नियुक्ति 3 वर्षों के लिए होती है परंतु यह अवधि बढ़ाई जा सकती है। कमिश्नर की छुट्टी की मंजूरी केवल राज्य सरकार कर सकती है। कमिश्नर के अतिरिक्त एक डिप्टी कमिश्नर का भी स्थान है जिसकी नियुक्ति निगम कौंसिल के द्वारा होती है। राज्य सरकार कमिश्नर की अयोग्यता, अध्यक्षता और कार्य की उपेक्षा के आधार पर इसे हटा सकती है। निगम कौंसिल भी अपने कुल सदस्य संख्या 50-60% बहुमत से कमिश्नर को हटा सकती है।

कमिश्नर मुख्य कार्यपालक अधिकारी होता है। उसे अपने अधिकारों और कर्तव्यों के पालन में निगम कौंसिल द्वारा बनाए गए नियमों को ध्यान में रखना होता है। आकस्मिक दुर्घटना या प्राकृतिक विपत्ति के समय वह कोई भी

आवश्यक कार्रवाई कर सकता है किंतु उसकी सूचना तुरंत कौंसिल और स्थाई समिति को दे देनी होती है। वह नगर निगम के सही बही-खाते को रखने का जिम्मेदार है।

(iv) मुख्य पदाधिकारी गण (Main Officials)–मद्रास नगर निगम में अलग-अलग पद और मासिक वेतन पर निम्नलिखित मुख्य पदाधिकारी हैं–

नोट

(क) स्वास्थ्य अधिकारी (ख) अभियंता

(ग) विद्युत अभियंता (घ) राजस्व अधिकारी।

साधारणतया इन पदाधिकारियों की बहाली निगम के द्वारा की जाती है लेकिन कुछ पदों के लिए राज्य सरकार की अनुमति लेना आवश्यक है। नगर निगम के नियम द्वारा ही इन अधिकारियों की योग्यता, वेतन, भत्ता, प्रशैक्षणिक अवधि, कार्यकाल, पेंशन आदि का निर्णय होता है। अधिनियम के अनुसार इनके वेतन वहाँ की सरकार निर्धारित करती है।

7.7 दिल्ली नगर निगम (Delhi Municipal Corporation)

दिल्ली भारत की राजधानी है। शहर की महत्ता एवं शहर संबंधी अनेक समस्याओं के निदान के लिए सन् 1954 ई. में भारतीय संसद ने दिल्ली नगर अधिनियम पास किया, जिसके आधार पर वहाँ पर नगर-निगम की स्थापना हुई। दिल्ली नगर निगम और देश के अन्य नगर निगमों में यहाँ एक अंतर स्पष्ट मालूम पड़ता है। जहाँ देश के अन्य नगर निगम अपनी-अपनी विधानसभाओं से शासित होते हैं, वहाँ दिल्ली नगर निगम भारतीय संसद से शासित है।

वर्तमान समय में दिल्ली नगर निगम के सदस्यों की कुल संख्या 272 हैं। जिसमें से 226 स्थान सामान्य श्रेणी (जिसमें से 114 स्थान महिलाओं के लिए) तथा 46 अनुसूचित जाति (जिसमें से 24 स्थान महिलाओं के लिए) के लिए है। दिल्ली नगर निगम के भी चार प्रमुख अंग हैं। (1) निगम कौंसिल, (2) स्थाई समितियाँ, (3) म्युनिसिपल कमिश्नर, (4) मुख्य पदाधिकारीगण।

1. **निगम कौंसिल**–निगम कौंसिल प्रत्येक साल अपनी पहली बैठक में अपने सदस्यों में से एक मेयर तथा एक डिप्टी मेयर का चुनाव करती है।

2. **स्थाई समितियाँ**–प्रत्येक आम चुनाव के बाद निगम कौंसिल की पहली बैठक में स्थाई समितियों में छह स्थाई समितियों का चुनाव होता है।

3. **म्युनिसिपल कमिश्नर**–इसकी नियुक्ति केंद्रीय सरकार 5 वर्ष के लिए करती है। सरकार कमिश्नर को अयोग्यता और कार्य उपेक्षा के आधार पर हटा सकती है।

4. **मुख्य पदाधिकारीगण**–ये पदाधिकारीगण साधारणतया निगम द्वारा बहाल किए जाते हैं। जैसे–मुख्य अभियंता, नगर अभियंता, शिक्षा पदाधिकारी आदि।

अभ्यास-प्रश्न

1. भारत में नगरीय स्थानीय संस्थाओं के गठन और कार्यों का वर्णन कीजिए।
2. नगर निगम की संरचना और कार्य-प्रणाली का वर्णन कीजिए।
3. नगरीय स्वशासन संस्थाओं की आय के विभिन्न स्रोत क्या हैं?
4. नगर निगमों की आय के प्रमुख साधनों का वर्णन कीजिए।
5. नगर निगम के गठन की संक्षेप में व्याख्या कीजिए। इसके कोई दो अनिवार्य कार्य बताइए।
6. नगर निगम के दो अनिवार्य तथा दो ऐच्छिक कार्यों का वर्णन कीजिए।
7. नगर निगम की आय के किन्हीं चार स्रोतों का वर्णन कीजिए।
8. नगर निगम आयुक्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. नगर निगम द्वारा किए जाने वाले चार कार्यों की चर्चा कीजिए।
10. महापौर/मेयर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

7.8 नगरपालिका (Municipality)

नोट

भारत में नगर निगम की स्थापना बड़े-बड़े और इने-गिने शहरों में ही की गई है। सामान्यतः भारत के शहरों में स्थानीय स्वशासन की इकाई नगर पालिका को ही माना गया है। अतः हम यह कह सकते हैं कि स्थानीय स्वशासन की दृष्टि से भारत के नगरों या शहरों की देख-रेख नगरपालिका करती है। नगरपालिका की भी स्थापना राज्य के विधानमंडल द्वारा बनाए गए अधिनियम के अनुसार होती है। लेकिन प्रत्येक नगरपालिका के लिए अलग-अलग अधिनियम का निर्माण नहीं किया जाता है, बल्कि राज्य की सभी नगरपालिकाओं के लिए एक ही अधिनियम का निर्माण किया जाता है और सभी नगरपालिकाएँ उसी अधिनियम से अपने संगठन, कार्य, अधिकार प्राप्त करते हैं।

संविधान के 74वें संशोधन 1992 के अनुसार सभी राज्यों ने अपने नगरपालिका अधिनियम में आवश्यक संशोधन किए हैं। इस प्रकार नगरपालिका को वर्तमान में संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। यह संस्था नगर क्षेत्र की स्थानीय स्वायत शासन की महत्वपूर्ण इकाई है। महानगरों को छोड़कर जहाँ नगर निगमों की स्थापना की गई है, अन्य नगरों में नगरपालिकाएँ पाई जाती हैं। राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा किसी नगर-क्षेत्र में नगरपालिका की स्थापना कर सकती है।

संगठन (Composition)—नगरपालिका का गठन वैसे नगरों में किया जाता है जहाँ की जनसंख्या कम-से-कम 20,000 हो। नगरपालिका के सदस्यों की संख्या जनसंख्या के आधार पर राज्य सरकार द्वारा निश्चित की जाती है—इसलिए भिन्न-भिन्न नगरपालिकाओं के सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। राज्य सदस्यों की निम्नतम संख्या भी निश्चित करता है। इसके गठन में इस बात पर ध्यान रखा जाता है कि उस शहर की आबादी 20,000 हो, प्रतिवर्ग मील जनसंख्या एक हजार व्यक्ति तथा वयस्क नागरिकों की जनसंख्या का 3/4 भाग कृषि कार्य छोड़कर जीविकोपार्जन के अन्य साधन में लगा हो।

आरक्षण (Reservation)—भारत में नगरपालिका में वर्तमान आरक्षण व्यवस्था निम्न प्रकार है।

1. एक-तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।
2. एक-तिहाई भाग वैसे महिलाओं के लिए जो अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के जो उनकी जनसंख्या के स्थान पर निश्चित किए गए हैं उसी वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित हैं।
3. नगरपालिका की वर्तमान आरक्षण व्यवस्था के अंतर्गत पिछड़े वर्ग के लोगों को भी शामिल किया गया है।

नगरपालिका के सदस्य होने की योग्यता
(Qualifications of the Members of Municipal Committee)

नगरपालिका का सदस्य होने के लिए एक व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएँ आवश्यक हैं—

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. नगरपालिका की मतदाता सूची में उसका नाम होना अनिवार्य है।
3. वह 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
4. वह कोई गैर-कानूनी कार्य करने में संलिप्त नहीं रहा हो।

चुनाव (Election)—नगरपालिका के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है।

अवधि (Tenure)—संविधान के 74वें संशोधन के अनुसार नगरपालिका की अवधि पाँच वर्ष निर्धारित की गई है। यदि वह इस समय से पूर्व भंग की जाती है तो छह माह के अंदर चुनाव कराना आवश्यक है।

नगरपालिका संबंधी समस्याएँ एवं उनके सुझाव
(Problems and Suggestion Relating to Municipality)

भारत के अधिकांश शहरों का प्रबंध नगरपालिकाएँ करती हैं। शहर से यहाँ मतलब है उन स्थानों से जहाँ बाजार, स्कूल, कॉलेज, कचहरी हो और जहाँ पर व्यापार का थोड़ा बहुत कार्य होता है। नगरपालिकाओं की निम्नलिखित कुछ मुख्य समस्याएँ हैं जिनका उचित निदान आवश्यक है।

नोट

1. नगरपालिका के स्थापना-संबंधी प्रश्न--बिहार में नगरपालिका की स्थापना संबंधी कुछ शर्तें रखी गई हैं। वे शर्तें हैं वैसे शहर जहाँ की जनसंख्या का कम-से-कम 3/4% भाग कृषि को छोड़कर अन्य किसी व्यवसाय में लगे हों और जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील 1,000 हो, वहाँ नगरपालिका की स्थापना की जा सकती है। लेकिन इन सब शर्तों के बावजूद भी बिहार में बहुत से ऐसे शहर हैं जिनकी जनसंख्या 10,000 और 20,000 के बीच में है, पर वहाँ नगरपालिका की स्थापना अब तक नहीं हो पाई है। जैसे--फतुहा, तेघरा, झरिया आदि शहर हैं।

2. कौंसिल का दोषपूर्ण गठन--कौंसिल के आकार का प्रश्न भी विवादास्पद है। भिन्न-भिन्न नीति अपनाई गई है। इंग्लैंड बड़ी कौंसिल के पक्ष में है और यही कारण है कि लिवरपुर सिटी कौंसिल के सदस्यों की संख्या 157 है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका सिर्फ छोटी कौंसिल के पक्ष में है जिस कारण शिकागो जैसे मेट्रोपोलियन शहर में कौंसिल के सदस्यों की संख्या सिर्फ 50 है। भारत में कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाने के पक्ष में प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है। बिहार में नगरपालिका कौंसिल में कम-से-कम 10 और अधिक से अधिक 40 सदस्य संख्या निश्चित की गई है। कौंसिल के सदस्यों को किसी प्रकार का वेतन भी नहीं मिलता है जिससे होता यह है कि निर्वाचित हो जाने के बाद वे नगरपालिका के कार्यों को कुशलता और ईमानदारी से न कर अपने व्यक्तिगत आर्थिक तथा राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति में लग जाते हैं।

3. दोषपूर्ण समितियाँ--नगरपालिका की विभिन्न समितियों में, जिन्हें नगरपालिका के कार्यों को करना पड़ता है, बहुत प्रकार की खामियाँ पाई जाती हैं। चेयरमैन के द्वारा समितियों के सदस्यों का चुनाव होता है, लेकिन वह बहुमत दल का नेता होने के कारण, सदस्यों का चुनाव दलगत आधार पर करता है न कि संबंधित कार्यों के ज्ञान के आधार पर। इस तरह चेयरमैन समितियों के संगठन में मनमाने ढंग को अपनाता है। इसके अतिरिक्त चेयरमैन इन समितियों के कार्यों में सदैव कुछ-न-कुछ हस्तक्षेप करता ही रहता है, जिसका परिणाम होता है कि समितियों के सदस्यों में काम करने की प्रेरणा और दिलचस्पी नष्ट हो जाती है। इस तरह स्थानीय शासन में समितियों की महत्ता नष्ट हो जाती है। इस तरह स्थानीय शासन की सफलता बहुत अंशों में समितियों की सफल कार्य कुशलता का ही परिणाम है। तभी तो **बारेन** ने उन्हें स्थानीय शासन का *"वास्तविक कारखाना"* कहा है।

4. चेयरमैन की असंतोषजनक स्थिति--नगरपालिका के दोषपूर्ण कार्यकरण के लिए चेयरमैन की स्थिति भी कुछ अंशों में कम उत्तरदाई नहीं है। नगरपालिका परिषद् के सदस्यों द्वारा बहुमत से चुने जाने के कारण तथा परिषद् के किसी भी विशेष अधिवेशन में कुल सदस्य संख्या के 2/3 बहुमत से किसी भी समय अपदस्थ किए जा सकने के कारण चेयरमैन के लिए दलगत राजनीति के फंदे से निकल सकना संभव नहीं है। चेयरमैन को अपने पद की स्थिरता में विश्वास नहीं रहता उसे बुरी से बुरी दलगत राजनीतिक चाल चलने के लिए बाध्य किया जाता है।

अत: उपर्युक्त स्थिति में सुधार लाने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं–

(1) सर्वप्रथम चेयरमैन का चुनाव कौंसिल के द्वारा न होकर बल्कि प्रत्यक्ष रूप में किया जाए। पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र ने भी जोरदार शब्दों में चेयरमैन के प्रत्यक्ष चुनाव के पक्ष में कहा है। प्रत्यक्ष चुनाव के द्वारा इस पद पर योग्य व्यक्ति आ सकेंगे। इससे देश का मजबूत और सुसंगठित राजनीतिक दल चुनाव में भाग ले सकेगा। चेयरमैन जनता के द्वारा प्रत्यक्ष मत द्वारा चुने जाने के कारण उसके पद में स्थिरता आ सकेगी एवं उसे अधिक बल मिल सकेगा। वह आसानी से अपने को गुटबंदियों से अलग रख सकेगा। चेयरमैन जनता के द्वारा होने वाले चुनावों में दबाव और मतदाताओं को प्रलोभनों में फँसाकर मत लेने की बात अधिक न हो सकेगी।

(2) दूसरी बात यह है कि चेयरमैन के अवैतनिक होने के कारण भी नगरपालिका के कार्यों में बाधा पहुँचती है। चेयरमैन के पद पर आसीन व्यक्तियों को अपने जीवन-निर्वाह के लिए कोई-न-कोई धंधा या कार्य करना ही पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि विरले अपवादों को छोड़कर सभी चेयरमैन अपना पूरा समय नगरपालिका के कार्यों के संपादन में नहीं लगा पाता है।

(3) तीसरी बात यह है कि चेयरमैन तथा कौंसिल के बीच शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत का न होना भी इन दोनों के बीच झगड़े का एक कारण है। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि चेयरमैन कौंसिल के कार्यों में हस्तक्षेप करता रहता है। अत: दोनों के बीच स्पष्ट रूप से अधिकारों और कार्यों का विभाजन किया जाना चाहिए जिससे झगड़े का अंत किया जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि चेयरमैन, जो नगरपालिका का सर्वोच्च अधिकारी तथा प्रमुख प्रबंधकर्ता है, की स्थिति अत्यंत ही असंतोषजनक है।

नोट

5. अयोग्य, निष्प्राण एवं भ्रष्ट कर्मचारीगण–निर्वाचित, अस्थाई तथा अवैतनिक उच्च प्रशासकीय अधिकारियों के रहने के कारण नगरपालिका के कार्यों के संपादन का अधिकतर भार वास्तविक रूप में निम्न पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों की योग्यता और कर्मठता पर निर्भर करती है। वारेन के अनुसार–*इंग्लैंड की स्थानीय संस्थानों की सफलता कर्मचारियों की कार्यकुशलता पर ही आधारित है। लेकिन बिहार की नगरपालिकाओं के कर्मचारियों की स्थिति अत्यंत शोचनीय है।* इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे लोग हैं जो चेयरमैन तथा अन्य प्रभावशाली म्युनिसिपल कमिश्नरों के सगे-संबंधी हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे भी लोग हैं जिनकी नियुक्ति दलगत राजनीति के आधार पर हुई है। साथ ही साथ इन कर्मचारियों के वेतन, पेंशन, नियुक्ति और बरखास्तगी आदि संबंधी नियमों में निश्चितता नहीं रहने के कारण योग्य व्यक्ति नगरपालिका के कर्मचारी बनना पसंद नहीं करते।

6. कर्तव्य एवं अधिकारों का एकीकरण–नगरपालिका के अंतर्गत कार्यकारिणी एवं विधायिनी अधिकारों का पृथक्करण नहीं किया गया है। नगरपालिका परिषद् के द्वारा ही नगरपालिका के कार्य संबंधी निर्णय तथा आदेश दिए जाते हैं। किंतु इन निर्णयों तथा आदेशों का कार्यान्वयन चेयरमैन और विभिन्न समितियाँ ही करती हैं न कि इससे अलग कोई अन्य अधिकारीगण। वास्तविकता तो यह है कि ये सभी लोग अस्थाई और अवैतनिक रहते हैं। इस तरह नगरपालिका की विधायिनी और कार्यकारिणी शक्तियों और कार्यों का एक ही वर्ग के लोगों द्वारा संपादित होना और उसके लिए स्थाई तथा अलग उच्च पदाधिकारियों का न होना भी नगरपालिका के दोषपूर्ण कार्यकरण का एक कारण है।

7. आय की अपर्याप्तता–नगरपालिका के कार्यों की लंबी सूची पर ध्यान देने के फलस्वरूप यह कहा जा सकता है कि इन कार्यों के हेतु आय के पर्याप्त साधन नहीं हैं। आय के पर्याप्त साधन के अभाव में ही अधिकांश शहरों की व्यवस्था अत्यंत दयनीय है। गंदगी और महामारी का प्रकोप नगरपालिका के अंतर्गत पाया जाता है। चेयरमैन और अन्य म्युनिसिपल कमिश्नरों का दलगत राजनीति पर आधारित रहने के कारण तथा हमारे देशवासियों में नागरिक भावना की कमी रहने के कारण कर देने में इधर-उधर करने की प्रवृत्ति (Tax-evasion mentality) एवं नगरपालिका के कर्मचारियों में घूसखोरी और भ्रष्टाचार के रहने से नगरपालिका की वर्तमान आय के जो भी साधन हैं, उनका भी ठीक रूप से उपयोग न हो पाता है। सरकारी अनुदान का सवाल है, यह कोई निश्चित सिद्धांत पर आधारित नहीं है। जिस नगरपालिका का बोलबाला राज्य सरकार में रहता है, उसे काफी अनुदान मिल जाता है और जिसका बोलबाला नहीं रहता है, उसे अनुदान नहीं के बराबर मिलता है। *"सरकारी अनुदान कानूनी तौर पर निश्चित नियम के आधार पर दिया जाए। साथ-ही-साथ सरकारी अनुदान नगरपालिका की क्षमता और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए दिया जाए।"*[1] **–डॉ. ज्ञानचंद।**

8. नकारात्मक राजकीय नियंत्रण–इसमें कोई संदेह नहीं है कि नगरपालिकाओं पर राजकीय नियंत्रण अत्यधिक मात्रा में है। राजकीय नियंत्रण में समय-समय पर वृद्धि हुई है, कमी नहीं। इस वृद्धि का कारण खोजने में कठिनाई नहीं है। स्वतंत्रता के पूर्व हमारे यहाँ ऐसी सरकार थी जिसका स्वभाव रक्षात्मक था। इस प्रकार की प्रवृत्ति में केंद्रीयकरण की भावना अधिक काम करती है। दूसरी बात यह है कि कई विधायकों की साधारणतया ऐसी प्रवृत्ति रहती है कि नगरपालिकाओं के प्रशासन में राज्य सरकार द्वारा हस्तक्षेप किया जाए और इसके लिए वे अवसर की तलाश में रहते हैं। अंत में, यह भी कहा जा सकता है कि कार्यपालिका शासन को इस बात की चिंता रहती है कि नगरपालिकाओं के प्रशासन का सब काम सुचारुरूपेण चले।

जहाँ तक नियंत्रण की व्यवस्था का प्रश्न है, यह अवश्य कहा जा सकता है कि नियंत्रण की व्यवस्था इसलिए की गई है कि नगरपालिकाओं को एक वांछित कार्य पद्धति एवं प्रगति की दिशा में ले जाया जाए। यह दूसरी बात है, इसमें उन्हें अभी तक सफलता नहीं मिल पाई है। असफलता का कारण साधारणतया राज्य सरकार के विधायकों तथा असैनिक सेवकों द्वारा समुचित नियंत्रण नहीं होता है और यही कारण है कि राज्य सरकार की शक्ति में धीरे-धीरे वृद्धि हो रही है। दूसरी तरफ कुछ लोग ऐसे हैं कि जिनका विचार है कि अत्यधिक सरकारी नियंत्रण के कारण ही नगरपालिकाओं का विकास नहीं हो पाया है। यह ठीक है कि अत्यधिक मात्रा में नियंत्रण की व्यवस्था की गई है। किंतु यह नियंत्रण ठीक समय और ठीक जगहों पर व्यवहृत न होने के कारण ही वर्तमान में सोचनीय परिस्थिति पैदा हो पाई है।

---

1. "Grant-in-Aid should really be a levelling up device by which each local authority has to contribute according to its capacity and receive according to its needs." —**Dr. Gyan Chand**

7.9 पंचायती राज (Panchayati Raj)

नोट

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में पंचायती राज के उद्भव और विकास में अनेक कारकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी, जिसमें गाँधी जी की विचारधाराएँ, राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्व, पंचवर्षीय योजनाएँ तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम आदि थे।

गाँधी जी गाँवों की आत्मनिर्भरता पर बल देते थे। उन्होंने गाँवों की ओर वापस चलो का संदेश देकर सत्ता का विकेंद्रित रूप लोगों के सामने प्रस्तुत किया था। वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित पंचायतों का ही पूर्ण रूप देखने चाहिए।

संविधान के अनुच्छेद 40 के उपबंध के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था को राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत के अंतर्गत रखा गया है। इस अनुच्छेद के तहत राज्य से अपेक्षा की जाती है कि वह ग्राम पंचायतों को स्वशासित इकाई के रूप में कार्य करने की योग्यता प्राप्त हो।

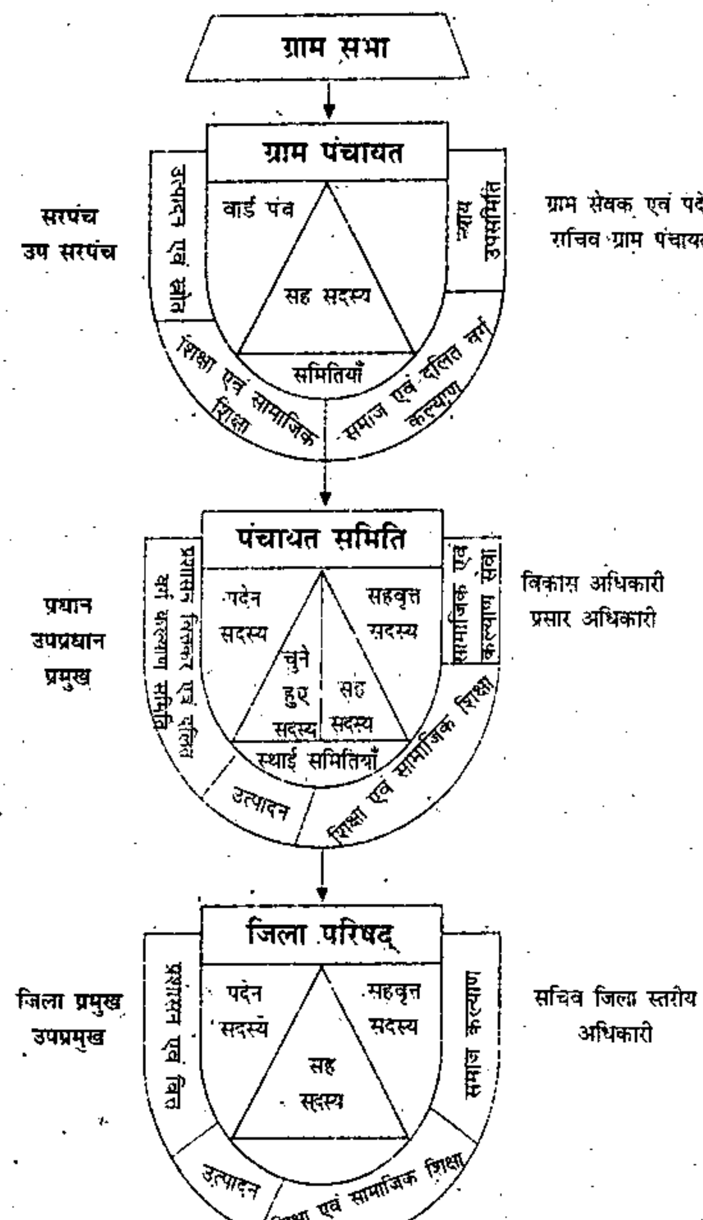

आजादी के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों की जनता का सक्रिय सहयोग एवं उनकी सहभागिता सुनिश्चित करना जरूरी था। कृषि संबंधी योजनाओं में हरित क्रांति लाने के संदर्भ में एक ऐसे संगठन की आवश्यकता महसूस की गई, जो ग्रामीणों से सीधे संपर्क में हो। इससे ग्रामीण जनता और सरकार के बीच संपर्क सूत्र स्थापित करने का मौका मिला।

इतना ही नहीं भारत में सामुदायिक विकास की शुरुआत 2 अक्टूबर, 1952 से प्रारंभ हुई। प्रारंभ में यह कार्यक्रम प्रत्यक्षत: जनता से नहीं जुड़ सका किंतु बाद में चलकर बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिश पंचायती राज के विकास में 'मील का पत्थर' साबित हुआ। इस समिति ने सामुदायिक परियोजनाओं तथा विकास के लिए राज्य के निचले स्तरों पर उत्तरदायित्वों एवं शक्ति के विकेंद्रीकरण का सुझाव दिया। इसके साथ ही राज्य सरकारों को यह सुझाव दिया कि वे पथ प्रदर्शन, पर्यवेक्षण आदि का कार्य अपने पास सुरक्षित रखें तथा आवश्यकता पड़ने पर स्थानीय संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करें। इस प्रकार **बलवंत राय मेहता** समिति के ग्रामीण स्वशासन के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था का सुझाव अर्थात् ग्राम पंचायत ग्राम स्तर पर, पंचायत समिति प्रखंड स्तर पर और जिला परिषद् जिला स्तर पर काम करे। इन सिफारिशों के अनुसार राजस्थान के नागौर में 2 अक्टूबर 1959 को जवाहरलाल नेहरू ने पंचायती राज का उद्घाटन किया। उसके बाद भारत के विभिन्न राज्यों में पंचायती राज योजना को लागू किया गया। लेकिन समय पर पंचायती राज संस्थाओं का चुनाव नहीं होने पर, वित्तीय साधनों का अभाव, संसाधनों का अहस्तांतरण, नौकरशाही, विरोधात्मक रवैया एवं जनसाधारण की निष्क्रियता ने पंचायती राज योजना को असफल बना दिया।

पंचायती राज योजना की असफलता के बाद 1977 में **अशोक मेहता समिति** गठित की गई। इस समिति ने पंचायती राज व्यवस्था का पक्ष लेते हुए जिला एवं निम्न स्तर के निकायों की शक्तियों के विकेंद्रीकरण का सुझाव दिया। इस सिफारिश को देश की अस्थिरता के कारण लागू नहीं किया जा सका।

1986 ई. **एल.एम. सिंघवी** समिति गठित की गई जिन्होंने पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने की सिफारिश की थी। 1989 में 64वाँ संवैधानिक संशोधन विधेयक पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा प्रदान करना चाहती थी किंतु किसी कारणवश यह संवैधानिक संशोधन विधेयक कानून का रूप नहीं ले सका।

अशोक समिति की सिफारिशों के अनुसार 1992 में संविधान का 73वाँ संशोधन हुआ। इस अधिनियम के तहत ग्राम व अन्य स्तरों पर पंचायतों का गठन, प्रत्यक्ष चुनाव, अनुसूचित जातियों-जनजातियों के लिए आरक्षण तथा पंचायतों के लिए 5 वर्ष का कार्यकाल निर्धारित करने का निर्णय लिया गया। इस अधिनियम के अनुसार पंचायतों के 1/3 पद महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे। 24 अप्रैल 1993 से व्यावहारिक बने इस अधिनियम के तहत सभी राज्यों को संवैधानिक संशोधन के उपबंधों के साथ सामंजस्य के लिए 1 वर्ष के भीतर नया विधान लाना था अथवा जारी किए गए पंचायती राज अधिनियम में संशोधन करना था। 73वाँ संविधान संशोधन जम्मू-कश्मीर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड व कुछ अन्य क्षेत्र में लागू नहीं होता।

7.10 बिहार में पंचायती राज योजना (Panchayati Raj Scheme in Bihar)

1961 ई. में बिहार राज्य विधानमंडल ने बिहार पंचायत समिति और जिला परिषद् कानून पास किया। इसके अनुसार बिहार में 569 पंचायत समितियाँ और 17 जिला परिषदों की स्थापना की गई। यह अधिनियम 2 अक्टूबर, 1962 को लागू होने वाला था किंतु कुछ खास कारणों के चलते यह 15 अगस्त, 1963 ई. को राज्य के चार जिलों (पटना, राँची, भागलपुर और मुजफ्फरपुर) में लागू करने की बात सोची गई थी किंतु कुछ खास कारणों के कारण यह 2 अक्टूबर, 1964 ई. को गाँधी जी के जन्म दिवस पर राँची और भागलपुर में इसे लागू किया गया और पंचायती राज योजनाओं को कार्यान्वित कराने के लिए एक स्थाई कार्यक्रम राज्य सरकार के द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार पटना और मुजफ्फर जिलों में, जनवरी 1965 में पलामू और सिंहभूम जिलों में अप्रैल 1965 में, हजारीबाग और धनबाद जिले में अक्टूबर 1965 में और बिहार के अन्य जिलों में सन् 1966 में लागू किया गया।

बिहार में पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था को माना गया है, जिसके अनुसार गाँव के स्तर पर ग्राम पंचायत, प्रखंड के स्तर पर पंचायत समिति और जिला के स्तर पर जिला परिषद् की स्थापना की गई है। यहाँ पर पंचायत समिति और जिला परिषद् के संगठन, पदाधिकारी, कार्य आय के साधन एवं नियंत्रण पर संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

नोट

24 अप्रैल, 1993 से लागू पंचायत राज (73वाँ संविधान संशोधन) अधिनियम

लगभग चार वर्ष के बाद संसद ने शहरी और ग्रामीण स्तर पर सत्ता में जनता की सीधी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए पंचायतों एवं शहरी संस्थाओं से संबंधित दो ऐतिहासिक विधेयक सर्वसम्मति से पारित कर दिए। इस संबंध में संविधान में दो संशोधन करने को भी लोकसभा ने अपनी मंजूरी दे दी।

इस अधिनियम के पारित हो जाने से संविधान में अब पंचायतों और शहरों की स्थानीय संस्थाओं को भी स्थान मिल जाएगा। इस प्रकार संसद और राज्य विधानसभा के साथ स्थानीय निकाय एवं पंचायतें भी संवैधानिक मान्यता प्राप्त कर लेंगी और निचले स्तर पर भी लोकतंत्र को मान्यता मिल जाएगी।

पंचायती राज संबंधी संविधान 72वें संशोधन और नगर निकायों संबंधी 73वें संशोधन को संसद ने बिना किसी बहस के सर्वसम्मति से पारित कर दिया था। यह सर्वसम्मति संसद की संयुक्त समिति के अनुमोदन के बाद बन सकी। समिति में की गई सिफारिशों के अनुरूप विधेयक में संशोधन सरकार ने भी स्वीकार कर लिए।

श्री राजीव गाँधी और बाद में श्री वी.पी. सिंह की सरकारों ने इन विधेयकों को अलग-अलग रूपों में पेश किया था। लेकिन कुछ मतभेदों के कारण उन्हें पारित नहीं कराया जा सका था। पिछले वर्ष ये दोनों विधेयक संसद की संयुक्त समिति को सौंपे गए थे।

इन अधिनियमों में यह व्यवस्था की गई है कि शहरी निकायों व पंचायतों के चुनाव निश्चित समय पर कराए जाएँगे। उनमें महिलाओं, पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जाति व जनजातियों को आरक्षण प्रदान किया जाएगा तथा उन्हें स्थानीय स्तर पर संसाधन जुटाने व नियोजन के अधिकार भी दिए गए हैं।

अधिनियमों में पंचायतों को अवक्रमित किए जाने के छः महीने के भीतर उनका चुनाव अनिवार्य रूप से कराने की व्यवस्था की गई है इसमें जिला स्तर की समितियों का चुनाव किस ढंग से होगा यह राज्य विधानमंडलों पर छोड़ दिया गया है।

सरकार ने प्रखंड तथा जिला स्तर की समितियों में संसद सदस्यों, विधायकों तथा विधानपरिषद् सदस्यों को शामिल करने और वोट का अधिकार देने के संसदीय समिति के सुझाव को मान लिया गया है।

इसी प्रकार सरकार ने गाँव स्तर पर पंचायतों के अध्यक्षों का चुनाव सीधे कराने की सिफारिश को भी मान लिया है विधेयक में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण देने की व्यवस्था है। महिलाओं को हर स्तर पर एक-तिहाई स्थान देने की व्यवस्था की गई है।

सरकार ने पंचायत समितियों के सदस्यों की आयु घटाकर 21 वर्ष करने का सुझाव भी मान लिया है।

पंचायती राज अधिनियम में पंचायती संस्थाओं को वित्तीय संसाधनों के हस्तांतरण की एक अनिवार्य व्यवस्था लागू करने तथा इसके लिए उचित कसौटियाँ सुझाने के लिए हर वर्ष एक वित्त आयोग गठित करने का भी प्रावधान है।

इसमें पंचायतों के चुनाव पूरी तरह राज्य निर्वाचन आयोग के नियंत्रण में करने का प्रस्ताव भी शामिल है।

सरकार इस अधिनियम के प्रावधानों को केंद्र शासित क्षेत्रों में भी वहाँ की स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार संशोधन के साथ लागू करेगी, मेघालय, नागालैंड और मिजोरम तथा कुछ पर्वतीय क्षेत्रों के जनजातीय इलाकों तथा अनुसूचित क्षेत्रों को इस विधेयकों विशेष रूप से अनुच्छेद 244 के तहत इस विधेयक की परिधि से बाहर रखा गया है।

विभिन्न राज्यों में ग्राम सभा के नाम

1. असम	ग्राम सभा
2. उत्तर प्रदेश	ग्राम सभा
3. दिल्ली	ग्राम सभा
4. बिहार	पंचायत
5. उड़ीसा	पाली सभा

अन्य राज्यों में यह ग्राम सभा के नाम से जानी जाती है।

विभिन्न राज्यों में ग्राम पंचायत के नाम

1. गुजरात	ग्राम या नगर पंचायत
2. तमिलनाडु	विलेज अथवा टाउन पंचायत
3. केरल	पंचायत
4. कर्नाटक	पंचायत
5. बिहार	पंचायत की कार्यकारी समिति

अन्य राज्यों में यह ग्राम पंचायत के नाम से जानी जाती हैं।

विभिन्न राज्यों की जिला परिषदों के नाम

1. गुजरात	(डिस्ट्रिक्ट पंचायत) (जिला पंचायत)
2. तमिलनाडु	जिला विकास परिषद् (डिस्ट्रिक्ट डवलपमेंट काउंसिल)
3. आंध्र प्रदेश	जिला परिषद्
4. महाराष्ट्र	जिला परिषद्
5. पंजाब	जिला परिषद्
6. राजस्थान	जिला परिषद्
7. उत्तर प्रदेश	जिला परिषद्
8. पश्चिम बंगाल	जिला परिषद्
9. असम	मोहकुमा परिषद् (Mohkuma Council)

नोट

नई पंचायती राज अधिनियम 1993—73वें संशोधन अधिनियम 1993 के प्रभावी होते ही बिहार पंचायती राज अधिनियम (1947) तथा बिहार पंचायत समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम 1961 को निरस्त कर नया अधिनियम बनाना आवश्यक हो गया। परिणामस्वरूप 1993 ई. में बिहार पंचायती राज अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार राज्य में ग्राम, प्रखंड तथा जिला स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से निर्वाचित निकायों में अधिकाधिक लोगों की भागीदारी सबसे अधिक होती है ताकि विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए बनाई गई योजनाओं को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जा सके।

अधिनियम के मूल तत्त्व

1. जनसंख्या पर आधारित त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था की स्थापना तथा तीनों स्तरों पर निर्वाचित निकाय।

2. जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ तथा पिछड़े वर्ग के लिए सीटों का आरक्षण तथा महिलाओं के लिए प्रत्येक तथा सभी श्रेणी में सभी स्तरों पर एक तिहाई स्थानों के लिए सीधे आरक्षण की व्यवस्था।

3. प्रत्येक स्तर पर अध्यक्ष की सीटों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए आरक्षण की व्यवस्था।

4. राज्य निर्वाचन आयोग तथा वित्त आयोग के गठन की व्यवस्था।

5. ग्राम कचहरी की दीवानी एवं फौजदारी शक्तियाँ बढ़ाकर उसे सबल एवं पहले से अधिक शक्तिशाली करने की व्यवस्था।

6. सभी विभागों के जिला, प्रखंड एवं त्रिस्तरीय कार्यालयों पर क्रमशः जिलापरिषद्, पंचायत समिति तथा ग्राम पंचायतों का प्रभावकारी नियंत्रण।

जिला परिषद् (Zila Parishad)

जनतांत्रिक विकेंद्रीकरण के दृष्टिकोण से बिहार राज्य ने भी पंचायत समिति और जिला परिषद् की स्थापना का प्रयास किया। यह विकेंद्रीकरण की भावना 'बलवंत राय मेहता' कमेटी की अनुसंशाओं के आधार पर आई। साथ ही सर्वोदय नेता 'स्व. जय प्रकाश नारायण' ने इस प्रकार के विकेंद्रीकरण पर काफी जोर दिया। इन्हीं आदर्शों की पूर्ति के लिए बिहार राज्य ने भी 1961 में पंचायती राज्य कायम करने के लिए बिहार राज्य समिति एवं जिला परिषद् नामक समिति बनाई। इस अधिनियम के मुताबिक जिला परिषद् का संगठन निम्नलिखित ढंग से होगा।

इस जिला परिषद् में करीब-करीब सभी सदस्य जनता के प्रतिनिधि होंगे। लेकिन उनका चुनाव जनता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में नहीं होगा। यह जिला परिषद् प्रत्येक जिला में होगा और इसका नामकरण भी जिला के नाम पर होगा। अभी बिहार के करीब सभी जिलों में इनका संगठन हो गया है। वर्तमान समय में बिहार में 38 जिला, 9 कमिश्नरियाँ और 101 सब-डिवीजन हो गए हैं। वर्तमान समय में कुछ नए जिलों को छोड़कर सभी जिलों में जिला परिषद् कार्यरत हैं। इसके निम्नलिखित सदस्य रहते हैं—

1. जिला के अंतर्गत सभी पंचायत समितियों के प्रमुख होंगे।

2. इस जिला के विधानसभा और लोकसभा के वे सदस्य जिनका चुनाव क्षेत्र संपूर्ण रूप से या अंशतः जिला में पड़ता हो।

3. विधानपरिषद् और राज्यसभा के वे सदस्य जो इस जिला के निवासी हों।

4. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन-जाति के एक सदस्य लिए जाएँगे। अगर उनकी संख्या उस पूरे जिले की जनसंख्या से 5% या उससे ज्यादा हो या अन्य किसी प्रकार से उनका प्रतिनिधित्व नहीं हो पाया हो।

5. जिले की नगरपालिकाओं और अधिसूचित क्षेत्र समिति (Notified Area Committee) के सदस्यों द्वारा चुने गए तीन सदस्यों।

6. इस जिले के केंद्रीय सहकारिता बैंक के प्रबंधक समितियों के द्वारा उन्हीं में से चुने हुए दो सदस्य।

7. अतः, उपर्युक्त विधियों से महिलाओं का भी Couption चुनाव होगा।

8. एक सदस्य बिहार राज्य की पंचायत द्वारा मनोनीत किया जाएगा।

इन सदस्यों की पदावधि भी निश्चित की गई है। अनुसूचित जाति या जनजाति Couption महिलाओं और सहकारिता बैंक प्रतिनिधियों को छोड़कर अन्य सभी सदस्य जिस पद पर रहने के कारण सदस्य हुए हों उस पद से हटने के बाद जिला परिषद् के सदस्य रहेंगे।

नोट

ये उपर्युक्त तीन तरह के सदस्य अपने चुनाव और Couption के दिन से लेकर 30 वर्ष तक जिला परिषद् के सदस्य होंगे। इस जिला परिषद् के एक अध्यक्ष और एक उपाध्यक्ष होंगे। इनका चुनाव इन्हीं सदस्यों के द्वारा इन्हीं में से होगा। लेकिन इन सदस्यों में से भी सभी सदस्य अध्यक्ष या उपाध्यक्ष नहीं हो सकते। उदाहरण के लिए, विधानसभा, विधानपरिषद्, लोकसभा, राज्यसभा के सदस्य जो इस परिषद् के सदस्य हैं, नगरपालिका के चुने गए सदस्य और बिहार पंचायत राज्य के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के पद के लिए खड़े नहीं हो सकते। यदि कोई प्रमुख या उप-प्रमुख के पद से इस्तीफा देगा तो ये अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अपने चुनाव के दिन से लेकर 3 वर्ष तक अपने पद पर रहेगा। जब तक कि उसे कानूनी ढंग से हटाया नहीं जाए, वह कभी भी इस्तीफा दे सकता है।

कार्य और अधिकार (Power and Functions)

1. इस जिला परिषद् का सर्वप्रथम कार्य अपने जिला के अंतर्गत सभी पंचायत समिति के बजट का निरीक्षण करना, उसकी संपुष्टि करना यह कार्य जिला परिषद् के वित्त और कर-वाली स्थाई समिति के द्वारा होगा।

2. केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार के द्वारा इस जिला के लिए जो कोष मिले हुए हैं उन्हें पंचायत समितियों और जिन विकास प्रखंडों में पंचायत समिति का गठन नहीं हुआ है उन विकास प्रखंडों में वितरण करना।

3. पंचायत समितियों के द्वारा निर्मित योजनाओं के बीच समन्वय स्थापित करना तथा उन्हें संगठित करना।

4. अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और स्थाई समिति के अध्यक्ष द्वारा जिला के अंतर्गत विकास प्रखंडों के विकास संबंधी कार्यों का निरीक्षण करना और उन्हें आवश्यक निर्देश देना।

5. जिला में विकास संबंधी कार्यों के संबंध में सरकार को सम्मति और सुझाव देना।

6. समय-समय पर राज्य द्वारा निर्धारित विकास योजनाओं को कार्यान्वित करना और उसके द्वारा दिए गए अधिकारों को कार्यान्वित करना।

7. पुराने District Board के अधिकारों और कार्यों को व्यवहार में लाना जिसमें टैक्स लगाना और वसूल करना भी है। किसी ट्रस्ट द्वारा दिए गए अनुदान को स्वीकार करना जिन्हें जिला परिषद् ने Supperrite किया हो और जिन प्रखंडों में पंचायत समिति का निर्माण नहीं हुआ हो, उस विकास प्रखंड के लिए पंचायत समितियों को कार्य करना। सरकार के द्वारा जाहिर करने पर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का आँकड़ा एकत्रित करना। जिला के अन्य स्थानीय संस्थाओं के कार्यों की प्रगति प्रकाशित करना। पंचायत समिति और ग्राम पंचायत को भिन्न-भिन्न कार्य देने के लिए सुझाव देना।

8. यह जिला परिषद् जिला के किसी भी स्थानीय संस्था से उनके कार्यों का ब्यौरा माँग सकता है।

9. विद्यालयों की स्थापना, संचालन और निरीक्षण करना सरकार के भिन्न-भिन्न समय में विभिन्न कानूनों के द्वारा दिए गए कार्यों का संपादन करना। प्रत्येक जिला परिषद् की छह स्थाई समितियाँ होंगी और जिला परिषद् स्थाई समितियों के द्वारा भी अपने कार्यों का संपादन करेगी। ये स्थाई समितियाँ निम्नलिखित विषयों पर होंगी–

1. योजना, सामुदायिक विकास और आवागमन से संबंधित विषयों के लिए स्थाई समिति होगी।

2. कृषि, सहकारिता, सिंचाई, बिजली और पशुपालन से संबंधित विषयों के लिए एक अलग स्थाई समिति होगी।

3. गृह एवं अन्य उद्योगों का ग्राम एवं लघु उद्योगों से संबंधित एक स्थाई समिति होगी।

4. शिक्षा, समाज कल्याण तथा अल्पसंख्यकों के बच्चों और औरतों की रक्षा के लिए एक स्थाई समिति होगी।

5. वित्त और कर-संबंधी एक स्थाई समिति होगी।

6. चिकित्सा, सार्वजनिक स्वास्थ्य और सरकारी सहायता के कार्यों से संबंधित एक स्थाई समिति होगी।

पंचायत समिति की आय के स्रोतों को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है–

(क) कर–सभी राज्यों में अधिनियम के द्वारा पंचायत समिति को विभिन्न प्रकार का कर लगाने का अधिकार प्रदान किया गया है। कर के अंतर्गत पेशा-कर, सवारी-कर, मकान-कर, संपत्ति पर कर, मछलीगाह पर कर, पुलों पर कर आदि मुख्य कर हैं जिन्हें पंचायत समिति लगा सकती है।

पेशा-कर अधिकांश राज्यों में ग्राम पंचायतों द्वारा लगाया जाता है, परंतु पंजाब, गुजरात, हरियाणा, राजस्थान में पंचायत समिति ही पेशा-कर लगाती है। पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश में पेशा-कर का उन्मूलन कर दिया गया है।

सवारी-कर आमतौर से ग्राम पंचायत के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आता है, परंतु पंजाब, हरियाणा, असम तथा उत्तर प्रदेश की पंचायत समिति भी सवारी-कर लगा सकती है।

पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु तथा उत्तर प्रदेश में पंचायत समिति को मेला, हाट, बाजार आदि पर टैक्स लगाने का अधिकार दिया गया है।

असम में पंचायत समिति को मकानों पर भी कर लगाने का अधिकार प्राप्त है। उसी प्रकार मध्य प्रदेश में नव-निर्मित पुलों पर कर लगाने का अधिकार पंचायत समिति को दिया गया है।

(ख) शुल्क–विभिन्न प्रकार के करों के अतिरिक्त पंचायत समिति अपनी भौगोलिक सीमा के अंतर्गत विभिन्न मदों पर कई प्रकार के शुल्क लगा सकती है। उदाहरण के लिए; असम, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में थियेटर, प्रदर्शनी, सिनेमा आदि के प्रदर्शनों पर पंचायत समिति लाइसेंस शुल्क लगा सकती है। कई राज्यों में पंचायत समिति विभिन्न प्रकार की सवारियों पर भी लाइसेंस शुल्क लगा सकती है।

(ग) ऋण–ऋण भी पंचायत समिति की आय का एक साधन है, यद्यपि भारत में स्थानीय संस्थाएँ न तो ऋण लेने में सक्षम है और न ही उन्हें ऋण लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। आमतौर से पंचायत समिति की वित्तीय स्थिति के नाजुक रहने के कारण स्थानीय संस्थाओं द्वारा लिया गया ऋण भार स्वरूप हो जाता है।

(घ) सरकारी अनुदान–भारत में राज्य सरकार द्वारा दिया गया अनुदान स्थानीय संस्थाओं की आय का एक प्रबल साधन है। पंचायत समिति के संबंध में यही स्थिति सही है। राज्य सरकार द्वारा दिया गया अनुदान पंचायत समिति की आय का एक बहुत बड़ा अंश है। पंजाब में 1962 से लेकर 1996 तक 227 पंचायत समितियों का 1 करोड़ 32 लाख रुपए अनुदान के रूप में दिए गए। पंचायत-समिति को दिए जाने वाले अनुदान की यह राशि उसकी आय का 17 प्रतिशत है। राजस्थान में 1962-63 में 232 पंचायत समितियों के बीच 1 करोड़ 18 लाख रुपए अनुदान के रूप में वितरित किए गए। 1972-73 में तमिलनाडु की सरकार ने पंचायत यूनियन परिषदों के बीच 13, 73, 170 रुपए की राशि को अनुदान के रूप में आवंटित किया। अन्य राज्यों में भी पंचायत समिति को दी जानेवाली अनुदान की राशि पर्याप्त है तथा पंचायत समिति की कुल आय का वह बहुत बड़ा अंश है।

(ङ) अन्य स्रोत–उपर्युक्त स्रोतों के अतिरिक्त पंचायत समिति की आय के और भी कई साधन हैं। जनता तथा सार्वजनिक संस्थाओं से प्राप्त दान तथा ग्राम पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के दान से भी पंचायत समिति को आय प्राप्त होती है। पंजाब तथा हरियाणा में पंचायत समिति खेल-कूद प्रतियोगिता आयोजित कर आय प्राप्त करती है। राजस्थान में पंचायत समिति को हड्डियों के संग्रह के लिए दिए गए पट्टों से भी आय प्राप्त होती है।

पंचायत समिति को टैक्स तथा शुल्क से प्राप्त आय की राशि इतनी अपर्याप्त है। कि उससे पंचायत समिति की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती है। फलस्वरूप प्रायः सभी राज्यों में भू-राजस्व का कुछ अंश पंचायत समिति को दिया जाता है। यह अंश अलग-अलग राज्य में अलग है। बिहार, गुजरात, मैसूर तथा राजस्थान में भू-राजस्व का एक निर्धारित प्रतिशत पंचायत समिति को दिया जाता है। कर्नाटक में राजस्व का बीस प्रतिशत तथा राजस्थान में प्रखंड की जनसंख्या के आधार पर 5 पैसे प्रति व्यक्ति की दर से भू-राजस्व का हिस्सा पंचायत समिति को दिया जाता है। पंजाब तथा हरियाणा में राज्य सरकार भू-राजस्व पर 25 पैसे प्रति रुपए की दर से टैक्स लगाकर उस राशि को पंचायत समिति तथा जिला परिषद् के बीच बाँट देते हैं। तमिलनाडु में भू-राजस्व पर 45 पैसे प्रति रुपए की दर से टैक्स लगाया जाता है तथा उस राशि को पंचायत टैक्स यूनियन परिषद् तथा ग्राम-पंचायतों के बीच बाँट दिया जाता है।

कुछ राज्यों में स्टांप ड्यूटी का कुछ अंश पंचायत समिति को प्राप्त होता है। आंध्र प्रदेश में स्टांप ड्यूटी पर लगाए गए टैक्स का पाँचवाँ भाग पंचायत समिति को मिलता है।

नोट

कर्नाटक में पंचायत समिति को जल आपूर्ति पर 12 प्रतिशत की दर से टैक्स लगाने का अधिकार प्रदान किया गया है।

पंचायत समिति की आय की राशि विभिन्न मदों पर खर्च की जाती है। सर्वप्रथम पंचायत समिति की आय से उसके कर्मचारियों को वेतन एवं भत्ते दिए जाते हैं। प्रखंड में दो प्रकार के अधिकारी एवं कर्मचारी होते हैं, प्रथम, राज्य सरकार द्वारा नियुक्त पदाधिकारी एवं कर्मचारी, जैसे–प्रखंड विकास पदाधिकारी, विस्तार पदाधिकारी, कृषि पदाधिकारी, कृषि निरीक्षक आदि। इन पदाधिकारियों को राज्य सरकार से वेतन एवं भत्ते मिलते हैं। प्रखंड विकास पदाधिकारी के कार्यालय में काम करने वाले सहायक, लिपिक एवं चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी भी राज्य सरकार के कर्मचारी हैं। इन्हें राज्य सरकार द्वारा वेतन एवं भत्ते दिए जाते हैं। इन पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे कर्मचारी हैं जिनकी नियुक्ति पंचायत समिति के द्वारा की जाती है। ऐसे कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते का भुगतान पंचायत समिति की निधि से की जाती है।

पंचायत समिति द्वारा व्यय किया जानेवाला दूसरा मद है, सामुदायिक विकास की परियोजनाएँ। ऐसी परियोजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए पंचायत समिति को राज्य सरकार के साथ-साथ केंद्र सरकार से भी अनुदान एवं वित्तीय सहायता मिलती है।

विकास परियोजनाओं के अतिरिक्त राज्य सरकार द्वारा अनेक योजनाओं एवं परियोजनाओं को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी पंचायत समिति को सौंपी जाती है तथा इसके लिए पंचायत समिति को अनुदान एवं वित्तीय सहायता भी दी जाती है। इस मद से दी जानेवाली राशि इसी मद पर खर्च की जाती है। इस प्रकार की योजनाएँ एवं परियोजनाएँ मुख्यतया कृषि, पशुपालन, लघु सिंचाई, प्राथमिक एवं सामाजिक शिक्षा से संबंधित रहती हैं।

उपर्युक्त मदों के अतिरिक्त अन्य कई मदें हैं जिन पर पंचायत समिति की निधि की राशि व्यय की जाती हैं। उदाहरण के लिए, ग्राम पंचायतों को वित्तीय सहायता, स्वैच्छिक संस्थाओं को वित्तीय सहायता आदि।

बिहार राज्य में अधिनियम के अंतर्गत पंचायत समिति के व्यय के संबंध में मदों का उल्लेख कर दिया गया। अधिनियम के अनुसार पंचायत समिति निम्नलिखित मदों पर व्यय करेगी–

(*i*) पंचायत समिति के पदाधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन एवं भत्ते का भुगतान;

(*ii*) पंचायत समिति के सदस्यों, सह-सदस्यों, प्रमुख, उप-प्रमुख तथा उसकी स्थाई समिति के सदस्यों के भत्ते;

(*iii*) ऋण की वापसी;

(*iv*) अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए सरकार द्वारा निर्देशित अन्य खर्च की मदें।

अतः पंचायत समिति के आर्थिक साधनों पर प्रकाश डाला जाए तो यह कहा जा सकता है कि वे पर्याप्त नहीं है। जिस तरह से भारत में शहरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है और गाँव के लोग गाँवों को छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। अगर यही स्थिति रही तो भारत में शहरीकरण की एक नवीन समस्या जन्म लेगी, जिसका समाधान बहुत मुश्किल होगा। अतः हमारी सरकार को भी चाहिए कि पंचायत समिति को पर्याप्त आर्थिक साधन प्रदान करे जिससे पंचायत समिति के माध्यम से स्थानीय लोग अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकें। राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार ने दस हजार तक के ऋण की माफी कर ग्रामीण स्तर के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया है। इतना ही नहीं, जनता दल की सरकार ने तो यहाँ तक की घोषणा की थी कि गाँवों के विकास के लिए भारतीय योजना की धनराशि का आधा भाग गाँवों के विकास पर खर्च किया जाएगा।

अभी वर्तमान परिवेश में पंचायत समिति के पास जो आर्थिक साधन हैं वे विकास के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

पंचायत समिति के प्रमुख के कार्य
(Function of the Pramukh of the Panchayat Samiti)

प्रत्येक प्रखंड में एक पंचायत समिति होगी जिसका अध्यक्ष प्रमुख कहलाएगा। इसकी सहायता के लिए एक उप-प्रमुख भी होगा, प्रमुख की अनुपस्थिति में उनके सभी शक्तियों का व्यवहार उप-प्रमुख करेगा, लेकिन वे पंचायत समिति के ही सदस्य होंगे। इसका चुनाव 5 वर्षों के लिए होगा। लेकिन इसके बीच में भी वे इस्तीफा दे सकते हैं। पंचायत समिति के प्रमुख, उप-प्रमुख और प्रत्येक सदस्य बैठक शुल्क तथा भत्ते पाने के हकदार होंगे, जो सरकार द्वारा तय किए जाएँगे। विकास प्रखंड के Head quarter में इनका एक कार्यालय होगा। इसमें ये सभापति का कार्य

नोट

करेंगे और सभा का कार्य-संचालन करेंगे। पंचायत समिति के सभी कागजों पर इनका पूरा अधिकार होगा। ये कभी-कभी उन कागजातों को देख सकते हैं। ग्राम पंचायत के कार्य के लिए ग्रामीणों को उत्साहित करेंगे। समय-समय पर उन्हें आवश्यक सुझाव देंगे। गाँव में स्वयंसेवक संस्था का विकास करेंगे। प्रखंड विकास पदाधिकारी पर प्रशासनिक अधिकार रखेंगे और पंचायत समिति के निर्णय तथा प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए विकास पदाधिकारी को बाध्य करेंगे।

समय-समय पर राज्य सरकार के द्वारा कानून के द्वारा किए गए कार्यों को करेंगे। गाँव प्रखंड के अंतर्गत गाँवों का निरीक्षण करेंगे। ग्राम पंचायत के द्वारा किए गए कार्यों, उनके द्वारा अन्य कार्यों संबंधी अपनाए गए कार्य-विधियों और उनके कागजातों का भी निरीक्षण करेंगे। इन सभी निरीक्षणों की Report तैयार करेंगे और इसे पंचायत समिति की बैठक में पेश करेंगे। अगर किसी ग्राम पंचायत के कार्यों में दोष होगा तो अपना प्रतिवेदन उसे भी देंगे और उसकी खबर उससे संबंधित ग्राम पंचायत के मुखिया को देंगे।

प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अंत में इस कार्य के विकास प्रखंड पदाधिकारी द्वारा दिए गए कार्यों का प्रतिवेदन समाहर्ता के पास भेजेंगे। आकस्मिक समयों में पंचायत समिति की राय के बिना प्रखंड विकास पदाधिकारी की राय से वैसे कार्यों को करने के लिए जो जन-सुरक्षा के लिए अत्यंत ही आवश्यक हो, किसी भी ग्राम पंचायत को निर्देशन भेज सकता है और उसकी सूचना बाद में पंचायत समिति को दे देगा। लेकिन ऐसा कोई भी निर्देशन नहीं होगा जो राज्य सरकार के किसी भी आदेश के विरुद्ध हो।

पंचायत समिति के आदेश को कार्यान्वित करने के लिए समय-समय पर विकास प्रखंड पदाधिकारी को भी Ordinance देंगे। पंचायत समिति के कोष से पैसा निकालने और बाँटने में विकास पदाधिकारी को कभी भी रोक सकता है। लेकिन उस रुकावट का कारण निश्चित रूप में रखना होगा।

ऐसे तो पंचायत समिति के सभी कर्मचारियों पर प्रखंड विकास पदाधिकारी का भी अधिकार रहेगा, लेकिन वे इस नियंत्रण संबंधी निर्देशन भी प्रखंड विकास पदाधिकारी को दे सकता है। ये बी.डी.ओ. से कभी-कभी सभी कागजातों की माँग कर सकते हैं और बी.डी.ओ. भी उन्हें देने से इनकार नहीं कर सकते। प्रमुख के इन कार्यों को देखकर कहा जा सकता है कि पंचायत समितियों का संगठन वास्तविक रूप में कायम करने के उद्देश्य से हुआ।

पहला प्रशासन बिल्कुल केंद्रित था लेकिन उसके संगठन के बाद प्रशासनिक शक्तियों का विकेंद्रीकरण होगा। प्रखंड स्तर पर ये प्रमुख जनता के प्रतिनिधि होंगे। प्रखंड स्तर पर जो सरकारी पदाधिकारी हैं, एक प्रकार से उनके अधीन होकर कार्य करेंगे, क्योंकि प्रमुख पंचायत समिति का अध्यक्ष होगा। बी.डी.ओ. पंचायत समिति के सचिव हैं। यह पंचायत समिति प्रमुख की अध्यक्षता में विकास की योजना तैयार करेगी और उसे कार्यान्वित करने का अधिकार प्रखंड विकास पदाधिकारी पर होगा। प्रमुख जो जनता का प्रतिनिधि है, बी.डी.ओ. के कार्यों का निरीक्षण करेंगे। इससे साफ जाहिर होता है कि अब बी.डी.ओ. किसी भी हालत में मनमाना कार्य नहीं कर सकता है। उन्हें हर हालत में प्रमुख के अधीन रहकर कार्य करना पड़ेगा और उन्हें उन्हीं कार्यों को संपादित करना होगा जो उन्हें पंचायत समिति के द्वारा कार्यान्वित करने के लिए दिया जाएगा। अतः जिस सिद्धांत से पंचायत समिति का संगठन हो रहा है, प्रमुख को इतनी शक्तियाँ देना इस सिद्धांत के अनुकूल है क्योंकि पंचायत समिति के संगठन में 6 ही उद्देश्य हैं।

प्रथमतः प्रशासन पंचायत के द्वारा हो और दूसरा गणतांत्रिक विकेंद्रीकरण हो, उस हालत में प्रखंड स्तर पर बी.डी.ओ. सरकार का प्रतिनिधि न होकर जनता का सेवक होगा। प्रमुख का यह भी अधिकार बी.डी.ओ. को एक सेवक के रूप में परिणत कर सकते हैं। लेकिन इसमें भी आंतरिक दोष है। क्योंकि इन शक्तियों के व्यवहार के लिए कुछ योग्यता की भी आवश्यकता है। प्रथम तो कुछ शैक्षणिक योग्यता और दूसरा प्रशासनिक और विकास संबंधी अनुभव। अतः वही प्रमुख इन शक्तियों का उपयोग कर सकता है जो शिक्षित के साथ-साथ विकास कार्यों में अनुभवी और जनता की सेवा की भावना रखता हो। लेकिन अभी तक हम यही देख रहे हैं कि प्रमुखों का चुनाव राजनैतिक दलबंदियों के आधार पर ही हो रहा है। अतः कोई भी प्रमुख अपने से ऊपर दलवाले नेता की ही बात मानने की कोशिश करेंगे। क्योंकि उसका पद अपने व्यक्तिगत गुण पर आधारित न होकर राजनैतिक दाँव-पेंच पर आधारित है। वह अपने इन कार्यों को जनता की सेवा की भावना से न कर अपने दल की शक्ति मजबूत करने के लक्ष्य से करेंगे। अगर यह स्थिति न हो तो इसकी भी संभावना है कि ऐसा आदमी भी प्रमुख हो सकता है जो बिल्कुल सीधा-सादा हो। उस हालत में बी.डी.ओ. की चलती रह जाएगी। अतः किसी भी रूप में प्रमुख के इन शक्तियों और कार्यों का व्यवहार जनता के हित की दृष्टि से होना असंभव है। इस प्रमुख के लिए कोई भी शैक्षणिक योग्यता निर्धारित नहीं है। कुछ अर्थ में यह कहा जा सकता है कि अनुभवी लोग इस पद पर आवेंगे जो शक्तियाँ उन्हें दी गई हैं, उनके

व्यवहार के लिए शिक्षा की आवश्यकता है और साथ-ही-साथ प्रशासन के कार्य में भी अनुभव की आवश्यकता है। ऐसे इन दोनों गुणों से संपन्न व्यक्ति कभी-कभी इस पद पर आते हैं। वे ही लोग इस पद पर आते हैं जो इन दोनों गुणों से जुड़े हों। क्योंकि भारत में आजकल तो व्यक्ति निम्नतम दाँव-पेंच में रहता है वही व्यक्ति चुनाव में विजयी होता है। अत: जो प्रमुख को कार्याधिकार दिए गए हैं उसके लिए शिक्षित, अनुभवी और निष्पक्ष आदमी की आवश्यकता है। लेकिन ऐसे व्यक्ति को वह पद प्राप्त नहीं हो सकता। अत: जिस ध्येय से पंचायत समिति का निर्माण हो रहा है, किसी भी हालत में इन लक्ष्यों की प्राप्ति की संभावना नहीं है। न तो ये प्रमुख जनता की सेवा ही कर सकते हैं और न पंचायत समिति एक स्वतंत्रत संस्था हो सकती है। इसका निर्माण शासन में विकेंद्रीकरण के ध्येय से किया गया। लेकिन इसके चुनाव से लेकर कार्य करने तक सरकार का ज़रूरत से ज्यादा नियंत्रण रहेगा और इस हालत में प्रशासन विकेंद्रीकरण न होकर और भी केंद्रीभूत हो जाएगा।

उप-प्रमुख के अधिकार एवं कार्य (Powers and Functions of the Up-Pramukh)– उप-प्रमुख के अधिकार एवं कार्य वे ही होंगे जो प्रमुख उसे लिखित रूप में सौंपेगा। प्रमुख का स्थान रिक्त होने पर थोड़े समय के लिए उप-प्रमुख कार्य करेगा। यदि प्रमुख 15 दिनों से अधिक के लिए प्रखंड से बाहर रहे या किसी कारण से अपना कार्यभार सँभाल नहीं सके तो उप-प्रमुख उनके अधिकारों का उपभोग करेगा। यदि प्रमुख और उप-प्रमुख दोनों ही अनुपस्थित हों, या उनका पद खाली हो, तो पंचायत समिति एक अस्थाई प्रमुख का निर्वाचन करेगी।

(क) स्थाई समितियाँ (Standing Committees)–प्रत्येक पंचायत समिति में निम्नलिखित विषयों के लिए एक-एक स्थाई समिति होगी–

(*i*) कृषि, पशुपालन, सहकारिता एवं लघु सिंचाई;

(*ii*) शिक्षा (इसमें सामाजिक शिक्षा भी सम्मिलित है), स्थानीय कला और कारोबारी, लघु बचत और कुटीर उद्योग;

(*iii*) जन स्वास्थ्य एवं सफाई;

(*iv*) वित्त एवं कर; और

(*v*) समाज-कल्याण एवं बच्चों, स्त्रियों तथा समाज के पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए कार्य।

इन स्थाई समितियों के अतिरिक्त जिला परिषद् की पूर्व अनुमति से एक या एक से अधिक अन्य स्थाई समितियों का संगठन भी पंचायत समिति कर सकती है। प्रत्येक स्थाई समिति में कम-से-कम 4 और अधिक-से-अधिक 7 सदस्य होंगे। इनका निर्वाचन पंचायत समिति के सदस्य एक संक्रमणीय मत (Single transferable Vote) द्वारा अपने में से करेंगे। ये सदस्य अपने में से एक चेयरमैन का निर्वाचन करेंगे, किंतु पंचायत समिति का प्रमुख कर एवं वित्त (Finance and Taxtation) संबंधी स्थाई समिति का पदेन सदस्य एवं चेयरमैन होगा। समाज-कल्याण एवं बच्चों, स्त्रियों तथा समाज के पिछड़े वर्गों के उत्थान (Social welfare and programmes for the weaker sections of the people and for women and children.) से संबंधित स्थाई समिति में कम-से-कम दो महिला सदस्यों का रहना जरूरी है। अगर इस स्थाई समिति में कोई महिला सदस्य नहीं हो तो पंचायत समिति प्रखंड में रहने वाली दो महिलाओं को (जो पंचायत समिति की) मनोनयन करके ले सकती है। लेकिन इस स्थाई समिति में पहले से एक महिला सदस्य है तो एक ही महिला को संवाचित किया जाएगा। प्रमुख को छोड़कर अन्य कोई भी सदस्य दो से अधिक स्थाई समितियों का सदस्य नहीं हो सकता।

पंचायत समिति के इन सदस्यों के अतिरिक्त दो ऐसे व्यक्तियों को (जो पंचायत समिति के सदस्य हों) पंचायत समिति संवाचित कर सकती है जो किसी विशेष स्थाई समिति के विषय के लिए अनुभवी और विशेषज्ञ हों। ये सदस्य केवल स्थाई समिति से संबद्ध सदस्य रहेंगे लेकिन इन्हें मत देने का अधिकार नहीं रहेगा। प्रखंड विकास पदाधिकारी पंचायत समिति और स्थाई समितियों का सचिव रहेगा लेकिन इन्हें मत देने का अधिकार नहीं होगा।

यदि किसी स्थाई समिति की बैठक में चेयरमैन अनुपस्थित रहे, तो उस बैठक के लिए स्थाई समिति के सदस्य अपने में से एक को चेयरमैन चुनेगा, लेकिन प्रखंड विकास पदाधिकारी चेयरमैन नहीं चुने जा सकते। जिलाधीश (Collector), जिला विकास पदाधिकारी (District Development Officer), सब-डिवीजनल पदाधिकारी (Subdivisional Officer) तथा सरकारी पदाधिकारियों को पंचायत समिति तथा उसकी स्थाई समितियों की बैठकों में सम्मिलित होने का अधिकार है, परंतु उन्हें मतदान का अधिकार नहीं होगा। पंचायत समिति तथा स्थाई समितियाँ उपर्युक्त सरकारी पदाधिकारियों को अपनी बैठकों में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित भी कर सकती हैं।

प्रत्येक स्थाई समिति के सदस्य तब तक स्थाई समिति के सदस्य बने रहेंगे जब तक कि वे पंचायत के सदस्य होंगे। लेकिन स्थाई समिति के मनोनयन से लेकर 5 वर्ष तक सदस्य रहेंगे।

नोट

स्थाई समिति के अधिकार और कार्य (Powers and Functions of the Standing Committee)–जैसा कि नाम से ज्ञात होता है कि स्थाई समितियाँ प्रतिदिन के कार्य को देखने के लिए संगठित की गई हैं। पंचायत समिति द्वारा दिए गए कार्य एवं जिला परिषद् की पूर्व की अनुमति पंचायत समिति द्वारा सौंपे गए कार्य करना स्थाई समिति का अधिकार है, पंचायत समिति या उसकी कोई स्थाई समिति प्रखंड विकास पदाधिकारी से किसी समय कोई कागज माँग कर सकती है। पंचायत समिति को अधिकार प्राप्त है कि वह अपने किसी स्थाई समिति से किसी प्रकार के कागज की माँग कर सकती है जो कि स्थाई समिति के अंदर की हो।

(ख) प्रखंड विकास पदाधिकारी (Block Development Officer)–प्रखंड विकास पदाधिकारी पंचायत समिति का मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी (Chief Executive Officer) होगा और वह पंचायत समिति और स्थाई दोनों समितियों का सचिव (Secretary) भी होगा।

अधिकार एवं कार्य (Powers and Functions)–पंचायत समिति के अंतर्गत प्रखंड विकास पदाधिकारी के अधिकार एवं कार्य बहुत अधिक होते हैं–

(*i*) वह पंचायत समिति तथा दोनों समितियों के फैसलों को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व रखता है।

(*ii*) वह ऐसे अधिकारों का प्रयोग एवं कार्यों का कार्यान्वयन करेगा जो उन्हें समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा दी जाएगी।

(*iii*) वह प्रखंड के सभी पंचायतों पर प्रमुख के निर्देशन में निरीक्षण करेगा।

(*iv*) वह पंचायत समिति के प्रमुख तथा स्थाई समिति के चेयरमैन के निर्देशन में पंचायत समिति तथा स्थाई समिति की बैठकों के लिए सूचना देगा और इन बैठकों की कार्यवाही का रिकार्ड रखेगा।

(*v*) वह पंचायत समिति तथा स्थाई समितियों की बैठकों में भाग लेगा, अपनी राय देगा, परंतु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होगा। यदि किसी कारण से वह उसके बैठकों में उपस्थित नहीं हो सका तो उसके द्वारा अधिकृत (Authorised) के प्रखंड के वरिष्ठ (Seniormost Officer) पदाधिकारी इसकी बैठकों में भाग ले सकता है।

(*vi*) पंचायत समिति की निधि में से धन निकालने तथा खर्च करने का उसका अधिकार निर्धारित विधि के अनुसार होगा।

(*vii*) पंचायत समिति के सभी कागजातों एवं अधिकारों (Documents) पर हस्ताक्षर एवं प्रमाणीकरण (Authenticate) करेगा।

(*viii*) पंचायत समिति की पूर्व अनुमति से तथा उसके लिए ठेके का कार्यान्वयन करेगा।

(*ix*) अंकेक्षण के सिलसिले में पाए गए दोषों एवं अनियमितता को दूर करने के लिए वह कदम उठाएगा।

(*x*) वह प्रमुख तथा जिलाधीश को पंचायत समिति या प्रखंड के ग्राम-पंचायत के सभी प्रकार के छल (Fraud), गबन (Embezzlement), चोरी (Theft) या धन की क्षति का कोई अन्य संपत्ति की क्षति संबंधी प्रतिवेदन (Report) देगा।

(*xi*) वह सभी प्रकार की योजनाओं एवं कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदाई होगा।

(*xii*) पंचायत समिति की ओर से वह पंचायतों के कार्यों का निरीक्षण में उनकी आर्थिक स्थिति की भी परीक्षा करेगा।

(*xiii*) वह प्रमुख के निर्देशानुसार पंचायत समिति के सभी पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों पर निरीक्षण एवं नियंत्रण रखेगा।

(*xiv*) प्रखंड के अंतर्गत काम करने वाले सभी राज्य सरकार के कर्मचारियों पर राज्य सरकार के निर्देशानुसार उस पर निरीक्षण एवं नियंत्रण रखेगा।

(*xv*) प्रमुख तथा उप-प्रमुख की अनुपस्थिति में वह आपातकालीन अवस्था में, जैसे–बाढ़, महामारी आदि में कोई भी कदम उठा सकेगा, लेकिन ऐसे कार्यों की सूचना पंचायत समिति को भेज देगा।

(*xvi*) इनके अतिरिक्त वह ऐसे कार्य को भी कर सकता है, जो इन्हें पंचायत समिति तथा जिला परिषद् अधिनियम के अनुसार इन पर सौंपा जाए या अधिकृत (Delegated) किया जाए।

7.11 पंचायत समिति के अधिकार एवं कार्य (Powers and Functions of the Panchayat Samiti)

नोट

पंचायत समिति को जनतांत्रिक विकेंद्रीकरण योजना में एक अत्यंत क्रियाशील इकाई बनाया गया है। जिला परिषद् की अनुमति से यह अधिनियम का भी निर्वाचन कर सकती है। अधिनियम के अंतर्गत दिए गए सभी कार्यों के कार्यान्वियन के लिए वह उत्तरदाई होता है। वह लिखित रूप में किसी दूसरे व्यक्ति को भी अधिकार सौंप सकती है। इसके कार्यों की एक लंबी सूची अलग से एक तालिका में दी गई है, जिन्हें निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है–

1. **सामुदायिक विकास संबंधी कार्य**–यह ग्राम पंचायत सहयोग समिति, अन्य संस्थानों तथा जनता के सहयोग से विकास योजना के कार्यक्रमों को पूरा करने तथा इन कार्यों के निरीक्षण करने के लिए उत्तरदाई है जिससे रोजगारी, उत्पादन तथा ग्रामीण जीवन की सुविधाओं में वृद्धि हो सके।

2. **कृषि संबंधी कार्य**–खेती की पैदावार को बढ़ाने के लिए सभी उपायों, जैसे–अच्छे बीजों का बाँटना, खादों का वितरण, नए वैज्ञानिक खेती के तरीकों तथा औजारों का वितरण एवं प्रचार, वृक्षारोपण, मछली पालन, खेती के लिए ऋण देना, लघु सिंचाई एवं भूमि संरक्षण आदि कार्य इसके अंतर्गत आते हैं।

3. **पशुपालन संबंधी कार्य**–घरेलू जानवरों का नस्ल सुधार, उसके लिए अस्पतालों का प्रबंध करना, संक्रामक रोगों से बचने का उपाय, चरागाह का प्रबंध, पशुपालन संबंधी विकसित ज्ञान का प्रचार आदि कार्य आते हैं।

4. **स्वास्थ्य एवं ग्राम सफाई संबंधी कार्य**–प्रारंभिक स्वास्थ्य केंद्र तथा मातृ-शिशु केंद्र खोलना, टीका देने का प्रबंध करना, परिवार नियोजन को प्रोत्साहन देना, स्वच्छ पेय जल की व्यवस्था, ग्राम नालियों का निर्माण, सफाई तथा मरम्मत करवाना, पाखाने बनवाना, जन्म-मरण के आँकड़े तैयार करवाना आदि कार्य हैं।

5. **शिक्षा संबंधी कार्य**–प्रारंभिक शिक्षा का प्रसार एवं उसका नियंत्रण, प्रारंभिक स्कूलों की व्यवस्था तथा शिक्षकों का पंचायत समिति क्षेत्र में बदली तथा उनके वेतन आदि का प्रबंध करना, प्रखंड के अंदर स्वतंत्र रूप से संचालित स्कूलों को अनुदान देना, स्कूल-पुस्तकालयों को प्रोत्साहन देना, माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था आदि।

6. **सामाजिक शिक्षा संबंधी कार्य**–सूचना केंद्र तथा मनोरंजन केंद्रों को खोलना, वाचनालय तथा पुस्तकालयों को खोलना, शारीरिक तथा सांस्कृतिक आयोजनों को प्रोत्साहन करना, युवक-संगठन, महिला मंडल, विज्ञान-कला आदि की स्थापना और प्रोत्साहन देना, प्रौढ़ों के साक्षरता एवं शिक्षा का प्रबंध जनता में नई जागृति, चेतना आत्मनिर्भरता के लिए कोशिश करना।

7. **यातायात संबंधी कार्य**–प्रखंड के अंतर्गत ग्राम-पंचायतों के बीच सड़कों तथा पुलों का नियंत्रण एवं मरम्मत की व्यवस्था करना।

8. **कला, कारीगरी तथा कुटीर उद्योग-संबंधी कार्य**–गाँवों में रोजगार बढ़ाने के लिए कुटीर एवं लघु उद्योगों का निर्माण एवं विकास, उत्पादन तथा प्रशिक्षण संबंधी विद्यालयों की स्थापना एवं संचालन, कला, कारीगरी आदि के विकास-संबंधी कार्य करना।

9. **सहयोग संबंधी कार्य**–ऋण सहयोग समिति, बहुद्देशीय उद्योग, सहयोग ईख उत्पादक, बुनकर सहयोग, कृषि सहयोग तथा अन्य सहयोग समितियों द्वारा सहयोग कार्य की वृद्धि करना।

10. **आकस्मिक आपत्ति में सहायता संबंधी कार्य**–प्रखंड के अंतर्गत बाढ़, आग, महामारी आदि आपत्तियों में सहयोग समिति कार्य करना।

11. **आँकड़ों को एकत्रित करने का कार्य**–पंचायत समिति अथवा जिला परिषद् निर्देशित आँकड़ों को एकत्रित करने का कार्य करना।

12. **न्याय (Trust) संबंधी कार्य**–ऐसे उद्देश्य के लिए जिस पर पंचायत समिति की संपत्ति को लगाया जा सकता है, उसके लिए न्यासों को संगठित करने की व्यवस्था करना।

13. **सामाजिक कल्याण संबंधी कार्य**–ऐच्छिक सामाजिक कल्याण संगठनों को मजबूत बनाना तथा उनके कार्यों को समन्वित करना। महिलाओं, बच्चों एवं पिछड़ी जातियों के लिए योजनाएँ कार्यान्वित करना।

14. पंचायत समिति के विविध कार्य–ग्राम-पंचायतों का निरीक्षण एवं निर्देशन करना, हाट, मेला, बाजार आदि का प्रबंध करना। लघु बचत योजना तथा बीमा को प्रोत्साहन देना, पंचायतों के बजटों पर नियंत्रण रखना तथा अन्य कार्य जो राज्य सरकार के द्वारा समय-समय पर पंचायत समिति को सौंपे जाएँ।

नोट

7.12 पंचायत समिति का वित्तीय आधार (Financial Basis of the Panchayat Samiti)

1. **सरकारी अनुदान तथा सहायता**–पंचायत समिति चार प्रकार के सरकारी अनुदान प्राप्त करने का अधिकार रखती है–

(क) सरकार से प्राप्त अनुदान एवं सहायता;

(ख) अखिल भारतीय संस्थाओं से प्राप्त सहायता (Aids received from all India bodies and institutions);

(ग) जिला परिषद् से या उसके द्वारा प्राप्त तदर्थ (Adhoc)

(घ) राज्य सरकार द्वारा पंचायत समिति को हस्तांतरित दायित्व योजनाओं तथा संस्थाओं के लिए अनुदान एवं धन।

2. **कर्ज (Loans)**–पंचायत समिति राज्य सरकार से कर्ज ले सकती है अथवा जिला परिषद् और राज्य सरकार से पूर्व स्वीकृति मिलने पर स्वयं भी कर्ज ले सकती है।

स्थानीय टैक्स, तथा जमीन की मालगुजारी का हिस्सा या दूसरी कोई रकम जो जिला परिषद् से प्राप्त करे।

3. **दान तथा चंदा (Donation and Contributions)**–(क) ग्राम पंचायत, नगरपालिकाओं, अधिसूचित क्षेत्र समिति, जनता या किसी संस्था से मिला हुआ दान तथा चंदा। (ख) टैक्स अंशदान, जो पंचायत समिति, ग्राम पंचायतों, अधिसूचित क्षेत्र समितियों और नगरपालिका से वसूल करें।

पंचायत समिति द्वारा ठेके पर दिए गए सार्वजनिक घाटों, मेलों, हाटों तथा इसी प्रकार के अन्य साधनों से प्राप्त आमदनी।

4. **कर (Taxes)**–अधिनियम के अंतर्गत या अन्य किसी विधि के अनुसार पंचायत समिति द्वारा लगाए जाने वाले कर (Taxes), अधिभार (Surcharge) या शुल्क (Fees) से प्राप्त आय।

पंचायत समिति का व्यय (Expenses of Panchayat Samiti)–पंचायत समिति अपने धन का व्यय अनेक मदों में करेगी जो निम्नलिखित हैं–

1. पंचायत समिति के पदाधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन एवं भत्ता में खर्च।

2. पंचायत समिति के सदस्यों, प्रमुख, उप-प्रमुख तथा स्थाई समितियों के सदस्यों के भत्ते इसी निधि से दिए जाएँगे।

3. कर्ज की अदायगी। अधिनियम के अनुसार राज्य सरकार के द्वारा दिए गए कर्ज की अदायगी को प्रधानता दी जाएगी।

4. राज्य सरकार के द्वारा निर्दिष्ट किसी अन्य प्रकार के कार्यों के संपादन पर व्यय भी निधि से दिया जाएगा।

पंचायत समिति का बजट (Budget of Panchayat Samiti)–प्रखंड विकास पदाधिकारी, पंचायत समिति के प्रमुख की सलाह से प्रति वित्तीय वर्ष (Financial year) पंचायत समिति का बजट तैयार करेगा। पंचायत समिति प्रखंड विकास पदाधिकारी द्वारा पेश किए गए बजट में कुछ हेरफेर करके पास करेगी। पंचायत समिति द्वारा पास बजट प्रखंड विकास पदाधिकारी के द्वारा जिला परिषद् के पास भेजा जाएगा लेकिन जहाँ परिषद् नहीं, वहाँ बजट जिलाधीश के पास भेजा जाएगा। यदि जिला परिषद् या जिलाधीश यह समझे कि बजट का उचित निरूपण नहीं हुआ है, तो पंचायत समिति के द्वारा दिए गए विचारों के बाद उन्हें बजट में हेरफेर का अधिकार प्राप्त है।

7.13 ग्राम पंचायत का संगठन (The Organisation of Village Panchayat)

नोट

भारत में स्थानीय स्वशासन का इतिहास बड़ा ही गौरवपूर्ण रहा है। सदियों के विकास के क्रम में स्थानीय स्वशासन का विकास भी समय और परिस्थिति के अनुसार बदलता गया। मौर्य शासनकाल में ग्राम पंचायतों का संगठन एवं कार्यक्षेत्र काफी महत्त्वपूर्ण था। भारत जब गुलाम हुआ तो यहाँ की स्थानीय स्वशासन का गगनचुंबी महल विकसित होने के बजाय धराशायी होने लगा और यह क्रम अंग्रेजी शासन काल तक चलता रहा। 15 अगस्त, 1947 को भारत जब आजाद हुआ; तो भारतीय सरकार ने संविधान में शासन को विकेंद्रित करने का प्रावधान किया। अतः ग्राम पंचायत स्थानीय स्वशासन की सबसे निचली कड़ी है। अतएव विकास की मंजिल पर पहुँचने के लिए हमें स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत ग्राम पंचायत के संगठन का वर्णन करना होगा।

ग्राम पंचायत का गठन (Constitution of the Village Panchayat)

ग्राम पंचायत अधिनियम की धाराओं के अंतर्गत राज्य सरकार अधिसूचना (Notification) द्वारा प्रत्येक गाँव या कई गाँवों को मिलाकर ग्राम पंचायत की स्थापना कर सकती है। राज्य सरकार ही पंचायत का नाम तथा उसके क्षेत्र की सीमा निर्धारित करती है। अधिनियम में 'गाँव' की परिभाषा नहीं दी गई है और यह कार्य राज्य के कार्यपालिका विभाग पर छोड़ दिया गया है। कार्यपालिका शासन में यह निर्णय किया गया है कि उत्तर बिहार के जिले में 5,000 की जनसंख्या और छोटानागपुर के जिलों में कम-से-कम 2500 हजार की जनसंख्या पर एक ग्राम-पंचायत की स्थापना की जाएगी। यदि एक गाँव बड़ा हो तो उसे कई हिस्सों में बाँट कर एक से अधिक ग्राम पंचायतों की स्थापना की जा सकती है। यदि जनसंख्या न्यूनतम 4,000 हजार से कम है तो कई गाँवों को मिलाकर एक सी ही ग्राम पंचायतों की स्थापना की जाएगी, लेकिन यहाँ पर यह ख्याल रखना है कि ग्राम पंचायतों की स्थापना इस प्रकार से की जाए कि गाँवों की अपनी खास विशेषता में किसी प्रकार की क्षति नहीं हो सके। नए संशोधित अधिनियम के अनुसार ग्राम पंचायत का वर्गीकरण तीन श्रेणियों, प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय में किया गया है। यह वर्गीकरण किन सिद्धांतों और रीतियों के आधार पर होगा, इस संबंधी नियमों का निर्णय राज्य सरकार द्वारा लिया जाएगा और इसके द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम माना जाएगा तथा किसी न्यायालय के द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है। अतः ग्राम-पंचायतों के कार्यों, लेखा-जोखा के मूल्यांकन के आधार पर कौन ग्राम पंचायत किस वर्ग में रखा जाएगा तथा धार्मिक मूल्यांकन के आधार पर किसी ग्राम पंचायत की वर्गोन्नति या निम्न वर्ग में पदावन्नति संबंधी निर्णय राज्य सरकार द्वारा ली जाएगी। सभी ग्राम पंचायतें चाहे वे किसी भी वर्ग की क्यों न हों, उनका अपना स्वतंत्र कानूनी अस्तित्व होता है, उन्हें स्थावर एवं जंगम दोनों प्रकार की संपत्ति का अधिकार रहता है और वे न्यायालयों में एक पार्टी के रूप में उपस्थित हो सकती है।

73वाँ सांविधानिक संशोधन अधिनियम (1993) और पंचायती राज व्यवस्था

प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के समय में पंचायती राज को महत्त्वपूर्ण स्थान देने का ऐतिहासिक एवं क्रांतिकारी फैसला लिया गया था। पंचायती राज और नगरपालिका विधेयक पर 13 अक्टूबर, 1989 को राज्यसभा में बहस का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था "हमारा आधारभूत लक्ष्य पंचायतों और नगरपालिकाओं में लोकतंत्र के लिए संवैधानिक समर्थन प्राप्त करना तथा विकास-प्रकिया में लोगों की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए उन्हें पर्याप्त शक्ति और वित्तीय संसाधनों का हस्तांतरण करना है।" इस विधेयक पर राष्ट्रपति ने 20 अप्रैल, 1993 को अपनी स्वीकृति प्रदान की और यह विधेयक भारतीय संविधान का हिस्सा बन गया। लोगों को अधिकार प्रदान करने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए 24 अप्रैल, 1993 को 73वाँ सांविधानिक संशोधन अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम ने पंचायती राज संस्थाओं को सांविधानिक मान्यता प्रदान कर लोकतंत्र की जड़ें मजबूत की हैं और महात्मा गाँधी के सपनों के भारत को एक नई दिशा प्रदान की है।

नई पंचायती राज व्यवस्था की विशेषताएँ–73वें संशोधन अधिनियम के अंतर्गत नई पंचायती राज व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ होंगी–

1. ग्राम सभा उन सभी वयस्क सदस्यों की एक निकाय होगी जिनके नाम संबंधित पंचायत क्षेत्र की मतदाता सूची में दर्ज होंगे।

नोट

2. यह तीन स्तरों पर स्थापित होगी जो ग्राम, प्रखंड या तहसील या ताल्लुक तथा जिला-स्तर पर रहेगी। 20 लाख से कम आबादी वाले मध्यवर्ती स्तर यानी प्रखंड, ताल्लुक या तहसील के स्तर पर पंचायत रहे या नहीं, यह राज्य सरकार की इच्छा पर होगा।

3. तीनों स्तरों की पंचायतों में सीटें सीधे निर्वाचन द्वारा भरी जाएँगी। इनके अलावा, ग्राम पंचायत का मुखिया मध्यवर्ती यानी प्रखंड या ताल्लुक स्तर की पंचायत का सदस्य बनाया जा सकता है और इसी प्रकार प्रखंड-स्तर का अध्यक्ष। पंचायत समिति के प्रमुख को जिला-स्तर की पंचायत समिति का सदस्य बनाया जा सकता है। सांसद और विधायक भी मध्यवर्ती स्तर और जिला-स्तर की पंचायत समितियों के सदस्य हो सकते हैं।

4. समाज के कमजोर वर्गों की वास्तविक व सार्थक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए इन संस्थाओं में सभी तीनों स्तरों पर अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए, उनकी जनसंख्या के अनुपात में, आरक्षण का प्रावधान है।

5. कुल स्थान का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित रहेगा। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के आरक्षित स्थानों का एक-तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित रहेगा।

6. राज्य की कुल आबादी में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों का जितना अनुपात होगा, उसी अनुपात में पंचायतों के अध्यक्षों के पद उनके लिए आरक्षित रहेंगे।

7. राज्य विधानमंडलों को यह स्वतंत्रता रहेगी कि वह पंचायत में स्थान का आरक्षण तथा उनके अध्यक्ष-पदों को भी पिछड़ा वर्ग के नागरिकों के लिए आरक्षित करे।

8. पंचायतों की कालावधि एक समान औसतन पाँच वर्षों की होगी और वह कालावधि समाप्त होने के पूर्व ही निकाय का निर्वाचन पूरा कर लिया जाएगा। यदि पंचायत बीच में भंग कर दी जाए तो इसका निर्वाचन छ: महीने के अंदर अनिवार्यत: करा लिया जाएगा। यह पुनर्गठित पंचायत पाँच वर्ष की कालावधि में शेष बची अवधि तक कार्यरत रहेगी।

9. किसी भी पंचायत की कालावधि समाप्त होने के पूर्व किसी अधिनियम का संशोधन कर पंचायत को भंग करना संभव नहीं होगा।

10. कोई व्यक्ति यदि निर्वाचन की किसी विधि के अंतर्गत या किसी अन्य विधि के अधीन विधानमंडल में निर्वाचित होने के लिए योग्य न ठहरे, वह पंचायत का सदस्य होने के लिए हकदार नहीं होगा।

11. प्रत्येक राज्य में एक स्वतंत्र निर्वाचन आयोग गठित किया जाएगा जिसके जिम्मे निर्वाचन प्रक्रिया और निर्वाचक नामावली की तैयारी की देखरेख, निर्देशन और नियंत्रण का कार्य रहेगा।

12. पंचायतों को यह विशेष जिम्मेवारी सौंपी जाएगी कि वह ग्यारहवीं अनुसूची में निर्दिष्ट विषयों पर आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय-संबंधी योजनाएँ तैयार करें। विकास-संबंधी योजनाओं के कार्यान्वयन की मुख्य जिम्मेवारी पंचायतों की होगी।

13. पंचायतों को अपनी योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए पर्याप्त निधि दी जाएगी। निधि का प्रमुख स्रोत सरकारी अनुदान होगा और यह भी संभव है कि राज्य सरकार कतिपय करों की वसूली का भार पंचायतों को ही दे। कुछ मामलों में पंचायतों को यह अनुमति दी जाएगी कि वह स्वयं राजस्व की वसूली कर अपने पास रखे।

14. प्रत्येक राज्य में एक वित्त आयोग की स्थापना एक वर्ष के अंदर की जाएगी और प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद ऐसे सिद्धांत निर्धारित किए जाएँगे जिनके आधार पर पंचायतों के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन प्राप्त हो सकेंगे।

15. 24 अप्रैल, 1993 को जो पंचायतें विद्यमान होंगी, उन्हें पूरी अवधि तक कार्यरत रहने दिया जाएगा; किंतु जब सदन द्वारा संकल्प पारित करके पंचायत को भंग किया जाएगा तब ऐसा नहीं किया जा सकेगा।

बिहार पंचायती राज अधिनियम, 1993—73वाँ सांविधानिक संशोधन अधिनियम (1993) के प्रभावी होते ही बिहार पंचायती राज अधिनियम (1947) तथा बिहार पंचायत समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम (1961) को निरस्त कर नया अधिनियम बनाना आवश्यक हो गया। परिणामस्वरूप, 1993 ई. में बिहार पंचायती राज अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य में ग्राम, प्रखंड एवं जिला स्तर पर त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से निर्वाचित निकायों में अधिकाधिक लोगों की भागीदारी हो जिससे आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए बनाई गई योजनाओं को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जा सके।

नोट

ग्राम पंचायत शासन के अंग–बिहार पंचायत राज्य अधिनियम के अनुसार ग्राम पंचायत शासन के पाँच प्रमुख अंग हैं–

(क) ग्राम सभा (Village Assembly),

(ख) मुखिया तथा उसकी कार्यकारिणी समिति (Mukhiya and Executive Committee),

(ग) ग्राम कचहरी (Gram Kacheri),

(घ) ग्राम सेवक (Gram Sevak),

(ङ) स्वयं सेवक दल (Village Volunteer Force)।

(क) ग्राम सभा (The Village Assembly)–ग्राम सभा ग्राम पंचायत की विधायिका (Legislature) है। यह सभा प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की झलक उपस्थित करती है। इस सभा में प्राचीन ग्रीस (Greece), वर्तमान स्विट्ज़रलैंड की लैंडसजेमिंडे (Landesgeminde) तथा अमेरिका की न्यू इंग्लैंड (New England) शहर के प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का आभास पाते हैं। ग्राम पंचायत की यह सर्वोपरि एवं महत्त्वपूर्ण सभा है। ग्राम पंचायत के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत मौजूद मकान या मकान के भाग में, ग्राम-पंचायत स्थापित होने की तिथि से या उस समय से जब से कोई सदस्य बनने के दावे को कुल मिलाकर 180 दिनों तक निवास करने वाले, सभी 21 वर्षीय वयस्क स्त्री और पुरुष ग्राम सभा के सदस्य होंगे जो कि वर्तमान में 18 वर्ष कर दी गई है। ऐसे व्यक्ति ग्राम सभा के आजीवन सदस्य बने रहेंगे। लेकिन यदि कोई उस ग्राम पंचायत के क्षेत्राधिकार में निवास करना छोड़ दे या पागल, दिवालिया या अभियुक्त करार कर दिया जाए या नैतिक दुराचार के लिए दंडित हो, तो उसे ग्राम सभा की सदस्यता से वंचित रखा जाएगा। ग्राम पंचायत के बही-खाते में सभी सदस्यों का नाम लिखा रहता है। इसमें समय-समय पर परिवर्तन भी होता रहता है। यह कार्य ग्राम सेवक द्वारा किया जाता है।

ग्राम सभा की बैठकें साल में दो बार अनिवार्य रूप से होती हैं। एक वार्षिक अधिवेशन जो खरीफ फसलों के बाद होता है और दूसरा अर्द्ध-वार्षिक अधिवेशन जो रबी फसलों के बाद होता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि ग्राम में रहने वाले का मुख्य पेशा कृषि होता है और इन्हीं दो अवसरों में ग्रामीण कृषकों की छुट्टी रहती है। वार्षिक अधिवेशन में ग्राम पंचायत के बजट पर विचार किया जाता है और अर्द्ध-वार्षिक अधिवेशन में पंचायत के पिछले वर्ष के लेखा-जोखा पर विचार किया जाता है और उसे पास किया जाता है। इन बैठकों के अतिरिक्त भी विशेष (Special) बैठक के बुलाने की व्यवस्था की गई है। विशेष प्रकार की बैठक मुखिया के चाहने पर अथवा ग्राम सभा के कुल सदस्यों के कम-से-कम 1/5 की माँग पर, मुखिया द्वारा बुलाई जा सकती है। बैठक की गणपूर्ति (Quorum) कुल सदस्य संख्या की एक-चौथाई रखी गई है।

ग्राम सभा अपनी बैठक में ही ग्राम पंचायत के कार्यों का निर्माण, उसकी प्रगति तथा सामुदायिक जीवन के विकास के संबंध में नीति निर्धारित करती है; यह सभा ग्राम पंचायत का सर्वोच्च अधिकारी होने के नाते वह ग्राम पंचायत द्वारा कर लगाने, बजट तैयार करने तथा कार्यों के कार्यक्रम प्रस्तुत करने संबंधी निर्णय के विरुद्ध कोई भी कार्य ग्राम पंचायत के द्वारा संपादित नहीं किया जा सकता है। यह मुखिया तथा कार्यकारिणी के सदस्यों तथा कुछ पंचों का निर्वाचन करती है।

(ख) मुखिया तथा उसकी कार्यकारिणी समिति (Mukhiya and Executive Committee)–ग्राम पंचायत की कार्यपालिका मुखिया तथा उसकी कार्यकारिणी समिति है। मुखिया को लेकर कार्यकारिणी समिति में 9 सदस्य होते हैं जिनमें मुखिया प्रधान होता है। बिहार पंचायत राज्य अधिनियम 1948 ई. में संसदात्मक पद्धति अपनाई थी। मुखिया के निर्वाचन के बाद मुखिया स्वयं अपनी कार्यकारिणी समिति में 7 से लेकर 15 सदस्य ले सकते थे, परंतु संशोधित अधिनियम 1959 के अंतर्गत इसकी संख्या घट या बढ़ भी सकती है।

नवंबर 1989 ई. के पहले जब श्री राजीव गाँधी भारत के प्रधानमंत्री थे तो उन्होंने गाँवों के विकास हेतु, जवाहर रोजगार योजना के तहत गाँवों में सड़कों के पक्कीकरण, आदिवासी एवं हरिजन व्यक्तियों के आवास गृह का निर्माण, ग्रामीण नालियों की व्यवस्था, बेरोजगार लोगों को सामयिक रोजगार आदि की व्यवस्था करने का आदेश दिया गया था। उस आदेश के तहत कार्य भी किया जा रहा है। अभी हाल ही में पटना उच्च न्यायालय ने 20 मार्च, 1991 ई. को एक ऐतिहासिक आदेश के द्वारा बिहार के समस्त ग्राम पंचायत के मुखिया के कार्याधिकार को समाप्त कर दिया। उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में यह भी कहा है कि मुखिया का अधिकतम कार्यकाल साढ़े पाँच वर्ष ही है क्योंकि बिहार ग्राम पंचायत अधिनियम 1970 ई. के द्वारा ग्राम पंचायत राज की व्यवस्था, संरचना आदि नियमों में परिवर्तन लाए गए हैं। लेकिन 1978 ई. के बाद बिहार में आज तक कोई चुनाव ही नहीं हो पाया है। नए संशोधित

अधिनियम की धारा 12 की उपधारा 16 के अनुसार मुखिया का कार्यकाल साढ़े पाँच वर्ष ही है। पटना उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में यह भी कहा है कि चूँकि मुखिया का अस्तित्व ही नहीं रह गया है अत: वे राज्य सरकार और केंद्र सरकार के किसी योजना को कार्यान्वित करने का हकदार नहीं है। न्यायाधीश श्री शैयद अली, न्यायाधीश गोपी चंद एवं एक अन्य न्यायाधीश की खंडपीठ ने उक्त फैसला देते हुए यह निर्देश दिया कि तमाम पंचायतों में चुनाव कराने के लिए वैधानिक प्रक्रिया तुरंत शुरू की जाए। फैसला श्री मणिकांत पांडेय द्वारा दायर एक लोकहित याचिका की सुनवाई के बाद किया गया है। बिहार राज्य पंचायत कानून 1990 ई. की धारा 12 की उपधारा 6 के अनुसार बिहार के कोई भी मुखिया या उसके कार्यकारिणी के सदस्यगण ग्राम पंचायत के कार्यों को करने के हकदार नहीं हैं क्योंकि उनका साढ़े पाँच वर्ष का कार्यकाल पहले ही समाप्त हो चुका है। सचमुच में इस फैसले ने ग्राम पंचायत के अस्तित्व को खत्म कर दिया। पटना उच्च न्यायालय के इस फैसले के फलस्वरूप बिहार के ग्राम पंचायतों का अस्तित्व तो समाप्त हो गया; किंतु इस फैसले के विरुद्ध बिहार के मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद ने विधानसभा में 21 मार्च 1991 ई. को यह घोषणा की कि राज्य सरकार मुखियों एवं पंचायत समितियों के कार्याधिकारों को पुन: स्थापित करने के लिए शीघ्र ही अध्यादेश जारी करेगी एवं 10वीं लोकसभा के चुनाव के बाद बिहार में पंचायतों के चुनाव कराए जाएँगे। 13वीं लोकसभा 1999 के बाद 2000 ई. में मुख्यमंत्री श्रीमती राबड़ी देवी ने यह घोषणा की है कि फरवरी 2001 तक बिहार में ग्राम पंचायत का चुनाव हो जाएगा।

केंद्र में जब राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी थी तो उसने अपने घोषणा पत्र में यह वादा किया था कि भारतीय गाँवों की दशा को सुधारने के लिए केंद्र के आधा बजट को गाँवों के विकास पर खर्च किया जाएगा। श्री देवीलाल जो राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार में उप-प्रधानमंत्री थे वे बराबर अपने को किसानों के नेता मानते हैं उन्होंने भी गाँवों के विकास के लिए अपनी वचनबद्धता को दुहराया। सचमुच में शहरों की अपेक्षा गाँवों की दशा शोचनीय है। प्रतिवर्ष लाखों की तादाद में गरीब ग्रामीण गाँवों को छोड़कर शहरों की ओर भाग रहे हैं जिसके चलते शहरों में आवास की समस्या बहुत बढ़ गई है। अतएव हमारी सरकार को चाहिए कि गाँवों की खुशहाली एवं विकास के लिए हर संभव प्रयास करे। क्योंकि भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है।

7.14 ग्राम पंचायत का कार्य (Functions of Village Panchayat)

स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का गौरव उनके कार्यों पर निर्भर करता है। नागरिकों के जीवन की सुख-सुविधा स्थानीय शासन की कार्यकुशलता पर बहुत कुछ निर्भर करती है। एक अविकसित देश में जहाँ विकास संबंधी योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हों, वहाँ स्थानीय शासन के कार्यों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। भारत गाँवों का देश है। देश की अधिकांश जनता गाँवों में निवास करती है। उनकी अवस्था सुधारने के लिए ग्राम पंचायतों के सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित कार्यक्रम की आवश्यकता है। अत:, भारत के सभी राज्यों की ग्राम पंचायत संबंधी अधिनियम में ग्राम पंचायतों के कार्यों की सूची को अनिवार्य तथा ऐच्छिक कार्यों में विभाजित किया गया है। हमारे प्रांत में स्पष्ट: ये दो प्रकार के विभाजन पाए जाते हैं। संशोधित अधिनियम 1959 ई. के अनुसार अनिवार्य कार्यों की सूची में 19 कार्यों का वर्णन किया गया है तथा ऐच्छिक कार्यों की सूची में 28 कार्य रखे गए हैं।

(क) अनिवार्य कार्य (Obligatory Function)–यदि राज्य सरकार सामान्य या विशिष्ट आदेशों के द्वारा कोई व्यवस्था नहीं करे तो ग्राम पंचायत का कर्तव्य होता है कि अनिवार्य सूची में वर्णित निम्नलिखित कार्य करे–

(1) स्वास्थ्य-सुधार और मल-मूत्र की सफाई, (2) चिकित्सा संबंधी सहायता तथा प्राथमिक सहायता, (3) जल आपूर्ति, पानी के साधन (जैसे–कुएँ, तालाब तथा हौज) की सफाई और शुद्धि, (4) फसल, जानवर आदि की सांख्यिकी तथा आवश्यक आँकड़ों और सूचनाओं का संग्रह सरकार के लिए करना, (5) महामारी और संक्रामक रोगों का निरोध एवं नियंत्रण, (6) सार्वजनिक गलियों, स्थानों तथा संपत्ति संबंधी रुकावटों और बाधाओं के संबंध में सूचना देना, उन्हें हटाना, (7) ग्राम पंचायत के अपने तथा उसके अधिकार में पड़ने वाले मकानों अथवा अन्य संपत्ति की सुरक्षा एवं मरम्मत करना, (8) अगलगी, अकाल, चोरी-डकैती रोकने की व्यवस्था करना, (9) गैर-मजरूआ आम जमीन; आम चरागाह, कब्र और श्मशान घाट तथा सार्वजनिक कार्य में उपयोग होनेवाले जमीन की व्यवस्था करना, (10) सरकार के निर्देशानुसार ग्राम-विकास संबंधी योजनाओं पर अमल करना, (11) सिंचाई के साधनों की रक्षा तथा उसकी व्यवस्था करना, (12) सार्वजनिक गलियों का निर्माण और उनका संधारण तथा गाँव की सड़कों और पगडंडियों की रक्षा करना, (13) गाँवों के उत्पादन का कार्यक्रम और गाँवों की

आवश्यकताओं के लिए धन और वस्तुओं की आपूर्ति जिससे कार्यक्रम पूरा किया जाएगा, उसका बजट तैयार करना, (14) उत्पादन वृद्धि के लिए प्रबंध करना, (15) बंजर भूमि को जोत में लाने का प्रबंध करना, (16) भू-स्वामियों की ओर से अगर भूमि आबाद न की जाए तो वैसी भूमि को आबाद करने की व्यवस्था करना, (17) सामुदायिक विकास कार्य के लिए श्रमदानियों की व्यवस्था करना, (18) समय-समय पर लागू होने वाले कानून के आधार पर भूमि और गाँव के अन्य साधनों की सहकारी व्यवस्था करना, (19) कोई भी कार्य जिसकी व्यवस्था की जाए।

(ख) ऐच्छिक कार्य (Optional Functions) कार्यकारिणी समिति के सदस्यों के बहुमत से, स्वेच्छा से अथवा राज्य सरकार के आदेश पर अनिवार्य रूप से 'ऐच्छिक' सूची में वर्णित कार्यों को ग्राम पंचायत अपने हाथों में ले सकती है। इस सूची के किसी विषय को राज्य सरकार चाहे तो अपवाद घोषित कर सकती है। अग्रांकित कार्य ऐच्छिक सूची के अंतर्गत रखे गए हैं–

(1) सार्वजनिक गलियों में रोशनी की व्यवस्था करना, (2) सार्वजनिक सड़कों के दोनों ओर तथा अन्य जगहों पर वृक्ष लगाना तथा उनकी हिफाजत करना, (3) प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध करना, (4) पुस्तकालय और वाचनालयों की स्थापना तथा उसका संचालन, (5) जन्म, मत्यु और विवाह की रजिस्ट्री करना, (6) 1929 ई. के बाल-विवाह निरोध अधिनियम के अंतर्गत बाल-विवाह करने वालों पर मुकदमा करना, (7) जानवरों की नस्ल सुधार और उनकी दवा-दारू की व्यवस्था के विकास में सहायता करना, (8) कैटल ट्रेसपास एक्ट (Cattle Tresspass Act) की 31वीं धारा के अंतर्गत हस्तांतरित किए गए दायित्वों का निर्वाह करना, (9) कुआँ, तालाब खुदवाना, (10) घाटों की व्यवस्था करना, (11) कृषि-उद्योग और व्यवसाय के विकास में सहायता करना, (12) कृषि सहयोग समितियों की स्थापना करना, (13) खाद के भंडार के लिए स्थान निर्धारित करना, (14) कृषि-संबंधी कर्ज की व्यवस्था करना, (15) गाँव के कर्ज के बोझ तथा दरिद्रता के भार को हल्का करना, (16) गृह-उद्योग का विकास तथा उन्हें प्रोत्साहन देना, (17) खतरनाक व्यवसायों को रोकना, (18) मातृ तथा शिशु कल्याण केंद्र खुलवाना, (19) अखाड़े तथा मनोरंजन के अन्य खेलों का संगठन करना, (20) रेडियो तथा ग्रामोफोन की व्यवस्था करना, (21) दरिद्र तथा बीमारों की सहायता करना, (22) अस्वास्थ्यकर गड्ढों को भरना तथा गंदे मुहल्लों को साफ करना, (23) सार्वजनिक पाखाने का निर्माण करना, (24) लावारिस कुत्तों को खत्म करना, लावारिश लाशों की व्यवस्था करना, मृत तथा लावारिश जानवरों का इंतजाम करना, (25) सराय, धर्मशाला और आराम-गृहों का निर्माण करना, (26) बाजार, हाट, मेला आदि का प्रबंध करना, (27) आदमी और जानवरों के लिए टीके की व्यवस्था करना, (28) गाँव के क्षेत्र की वृद्धि और निर्धारित सिद्धांत के अनुसार गृह-निर्माण पर नियंत्रण रखना।

इन कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्य भी ऐच्छिक कार्य के अंतर्गत आते हैं, जैसे–सार्वजनिक कल्याण, स्वास्थ्य तथा सुख-सुविधा के लिए ऐसे कार्य करना जिनका उल्लेख अधिनियम में नहीं है। चिकित्सा-स्वास्थ्य के लिए दो या दो से अधिक ग्राम पंचायतों को मिलाकर एक आयुर्वेदिक, यूनानी, होमियोपैथिक या एलोपैथिक औषधालय की स्थापना की जा सकती है। बहुत-सी जगहों में ग्राम पंचायतों को जमीन का लगान वसूल करने का कार्यभार सौंपा गया है। लगान वसूल करने के एवज में वसूल की गई रकम पर 10 प्रतिशत की दर से पंचायत को पारिश्रमिक मिलता है। संशोधित अधिनियम, 1959 के अनुसार ग्राम पंचायतों पर जंगलों की सुरक्षा का भार सौंपा गया है। अत: ग्राम पंचायत के अनिवार्य तथा ऐच्छिक कार्य की सूची के अनुसार बहुत अधिक कार्य दिए गए हैं। ग्राम पंचायत के ऊपर इतना अधिक कार्यभार सौंपने में यह रहस्य छिपा हुआ है कि ग्राम पंचायत को आत्मनिर्भर बनाया जाए, क्योंकि संविधान निर्माताओं का सदा यही उद्देश्य रहा है कि भारतीय प्रजातंत्र की आधारशिला ग्राम पंचायत ही हो।

7.15 ग्राम पंचायत के आर्थिक साधन (Financial Basis of the Gram Panchayats)

ग्राम पंचायत को बहुत अधिक कार्य दिए गए हैं। उन कार्यों के संपादन के लिए पर्याप्त आर्थिक साधन की महत्ता को स्वीकार करते हुए **श्री के.जे. रमण** ने अपनी पुस्तक "मद्रास में पंचायतें" में लिखा है, *"यदि ग्राम पंचायतों को बिना आवश्यक धन के विविध सेवाओं की व्यवस्था का अधिकार दे दिया जाए तो अधिकार और उत्तरदायित्व में कोई संबंध नहीं रहेगा और इसका परिणाम निश्चय ही घातक होगा। इससे या तो अंततोगत्वा स्थानीय स्वतंत्रता नष्ट*

होगी या संपूर्ण प्रशासन ढीला-ढाला तथा कार्यकुशलविहीन होगा और इससे अत्यंत हानिकारक विश्लेषण उत्पन्न होगा।" ग्राम पंचायतों की आय के साधन निम्नलिखित हैं–

(क) अनिवार्य कर (Compulsory Taxes)

(ख) अनुपूरक कर तथा शुल्क (Supplementary Taxes and Fees)

(ग) सरकारी अनुदान (Grant-in-Aid)

नोट

(क) अनिवार्य कर (Compulsory Taxes)–बिहार पंचायत राज अधिनियम में दो प्रकार के अनिवार्य करों की चर्चा की गई है जिन्हें प्रत्येक पंचायत निर्धारित नियमों या राज्य के किसी सामान्य या विशिष्ट आदेश के अंतर्गत वसूल करेगी।

***(i)* श्रम-कर (Labour Tax)**–अनिवार्य करों में एक श्रम कर है। 18 से 50 वर्ष के बीच के प्रत्येक स्वस्थ पुरुष को शारीरिक श्रम-कर के रूप में देना होगा। किसी एक स्वस्थ पुरुष को श्रम-कर के रूप में कितना श्रम करना पड़ेगा, यह पंचायत क्षेत्राधिकार के अंतर्गत कर लगाये जानेवाले स्वस्थ वयस्क पुरुषों की संख्या से, श्रम की कुल आवश्यक इकाई में भाग देने से प्राप्त, श्रम-कर की मात्रा होगी। परंतु, कम-से-कम 12 इकाई श्रम-कर, अर्थात् वर्ष में लगभग 48 घंटे श्रम अवश्य होना चाहिए, लेकिन जो स्वस्थ पुरुष श्रम-कर नहीं दे सकते हैं उनके लिए प्रचलित और ग्राम मुखिया द्वारा निर्धारित मजदूरी द्रव्य रूप में दी जा सकती है।

***(ii)* संपत्ति कर (Property Tax)**–दूसरा अनिवार्य कर, संपत्ति-कर है, जो पंचायत के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत अचल संपति के मालिकों पर लगाया जाता है, लेकिन गाँवों में गरीबी के कारण तथा कर-निर्धारण एवं कर-वसूली में पूरी मुस्तैदी नहीं रहने के कारण संपत्ति-कर से ग्राम पंचायत को अधिक आय प्राप्त नहीं हो पा रही है।

(ख) अनुपूरक कर तथा शुल्क (Supplementry Taxes and Fees)–बिहार पंचायत राज अधिनियम के अनुसार ग्राम पंचायत को तीन प्रकार के अनुपूरक कर लगाने का अधिकार मिला है। अनुपूरक कर ये हैं–*(i)* सामान्य कर, *(ii)* विशेष सेवाओं के लिए कर, *(iii)* लाइसेंस शुल्क। इन करों को भी ग्राम पंचायत निर्धारित नियमों के आधार पर ही लगा सकती है।

***(i)* सामान्य कर**–सामान्य करों में सबसे प्रधान कर है पेशा-कर। ग्राम पंचायत के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत कृषि को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के पेशागत व्यक्तियों पर पेशा कर लगाया जाता है। परंतु यह कर सरकार की पूर्व अनुमति के नहीं लगाया जा सकता। मद्रास के ग्राम पंचायतों में पेशा-कर अनिवार्य-कर के रूप में है। गाड़ियाँ ढोनेवाले पशुओं तथा कुलियों पर भी कर लगाया जा सकता है। पंचायत के अधिकार क्षेत्र में मंदिर अथवा तीर्थ-यात्रा के स्थानों पर सरकार की पूर्व स्वीकृति लेकर कर लगाया जा सकता है।

***(ii)* विशेष सेवाओं के लिए कर**–यदि ग्राम पंचायत अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत विशेष प्रकार की सेवाओं का प्रबंध करती है, तो ग्राम पंचायतों को उन सेवाओं के लिए कर लगाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसे करों के अंतर्गत जल-कर, पाखाना-कर, रोशनी-कर तथा नाली-कर आते हैं।

***(iii)* लाइसेंस शुल्क (Licence Fees)** ग्राम पंचायत को अपने क्षेत्र के अंतर्गत पेशेवर खरीदार, दलाल, कमीशन-एजेंट, नाप-तौल करनेवालों से लाइसेंस शुल्क लेने का अधिकार प्राप्त है। पंचायत को अपने सराय, धर्मशाला, आराम-गृह तथा अन्य भूमि जो खेमे के उपभोग में आती हो, उन पर उपभोग-कर लगाने का अधिकार है। पंचायत अपने तथा इसके नियंत्रण में पड़ने वालों हाटों या बाज़ारों में बिकने वाली चीजों पर कर लगा सकती है। ग्राम पंचायत के द्वारा गाँव में बिकने वाले जानवरों की रजिस्ट्री फीस भी वसूल की जा सकती है।

अन्य प्रकार के कर–इन अनुपूरक कर तथा लाइसेंस शुल्क के अतिरिक्त बिहार पंचायत राज अधिनियम के अनुसार ग्राम पंचायत राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से कोई अन्य कर, मार्ग-शुल्क, फीस या रेट (Rate) लगा सकती है तथा आपातकालीन कर लगाने का अधिकार भी मिला है। लेकिन, इसकी सूचना राज्य सरकार के निर्देशन पर ऐसे कर का लगाया जाना बंद किया जा सकता है। ग्राम पंचायतों को सरकार अथवा अन्य स्थानीय संस्थाओं द्वारा लगाए जाने वाले करों को वसूल करने के सिलसिले में भी कुछ आय प्राप्त हो सकती है; जैसे-मालगुजारी वसूलने का कार्य। नियमानुसार, वसूल की गई रकम पर कम-से-कम 10 फीसदी कार्यकारिणी ले सकती है, जिसमें आधा वसूल करने वाले कर्मचारी को दिया जाएगा।

प्रतिबंध (Restriction)–ग्राम पंचायतों के द्वारा लगाए जाने वाले करों पर कुछ प्रतिबंध भी रखा गया है। ये प्रतिबंध निम्नलिखित हैं–

नोट

(*i*) ऐसा कोई भी कर, चुंगी, शुल्क, रेट आदि लगाया जा सकता है जो पहले ही जिला बोर्ड के द्वारा पंचायत के क्षेत्र में लगाया जा चुका हो।

(*ii*) अगर किसी पंचायत द्वारा किसी आदमी या वस्तु पर पहले ही कर लगाया जा चुका हो तो उस आदमी या वस्तु पर फिर से कर नहीं लगाया जा सकता है।

(ग) सरकारी अनुदान (Grant-in-Aid)–सरकारी अनुदान ग्राम-पंचायत के आय का प्रधान स्रोत है। समय-समय पर राज्य सरकार पंचायतों को अनुदान के रूप में कुछ आर्थिक सहायता देती है। साधारणतया सरकार पंचायत की स्थापना के समय और उसके बाद आवश्यकतानुसार सहायता देती है। वास्तव में, जब कर आदि से पंचायत की आर्थिक अवस्था नहीं सुधारी जा सकती है तो सरकारी अनुदान का ही एक सहारा रह जाता है। ग्राम-पंचायत तथा अविकसित क्षेत्रों के विकास के लिए सरकारी अनुदान की बहुत आवश्यकता है। जिला बोर्ड भी पंचायतों के द्वारा गाँव के विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए एक निश्चित रकम के द्वारा सहायता देती है।

7.16 ग्राम पंचायतों पर राज्य सरकार का नियंत्रण (Governmental Control over the Gram Panchayats)

ग्राम पंचायत स्थानीय स्वशासन में सबसे निम्न स्तर की संस्था है। जनता से उसका प्रत्यक्ष संबंध रहता है। जनता इसके संगठन एवं शासन में भाग लेती है, जिससे ग्राम-पंचायत में प्रशासकीय अनुभव तथा शोधन की कमी रहती है। यही कारण है कि स्थानीय स्वशासन संस्थाओं पर नियंत्रण की कड़ी जकड़ी जाती है। नियंत्रण की महत्ता को स्वीकार करते हुए मध्य प्रदेश की स्थानीय **स्वशासन समिति** ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है, *"सरकार एक तथा अविभाज्य है। स्थानीय क्षेत्र तथा स्थानीय मामलों में स्थानीय संस्थाएँ कुछ प्रदत्त कार्यों के ऊपर स्वतंत्र ढंग से कार्य करती हैं। इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि एक स्थानीय इकाई अधिक-से-अधिक बड़ी इकाई का अंशमात्र है। इसलिए, कुछ ऊँची तथा निष्पक्ष इकाई की आवश्यकता है जो स्थानीय संस्थाओं द्वारा सुदृढ़ प्रशासन के मूल तत्त्वों की अवहेलना करने पर अथवा अपने क्षेत्र की जनता के हित का बलिदान करने पर हस्तक्षेप करे।"* अतः, ग्राम पंचायत भी एक स्थानीय स्वशासन संस्था है जिससे इसके ऊपर भी नियंत्रण की आवश्यकता है। पंचायतों पर अभी जो नियंत्रण की कड़ी है, वह दोहरी है–एक जिला बोर्ड, किंतु निकट भविष्य में जिला बोर्ड के स्थान पर पंचायत समिति और जिला परिषद् की और दूसरी राज्य सरकार की।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions)

1. बलवंत राय मेहता समिति ने पंचायती राज की स्थापना के लिए सुझाव किस वर्ष दिया?
   (क) 1955 ई. (ख) 1957 ई. (ग) 1958 ई. (घ) 1960 ई.
2. अशोक मेहता समिति की स्थापना किस वर्ष हुई थी?
   (क) 1977 ई. (ख) 1978 ई. (ग) 1979 ई. (घ) 1980 ई.
3. पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना का सुझाव किसने दिया था?
   (क) सरकारिया आयोग (ख) बलवंत राय मेहता समिति
   (ग) अशोक मेहता समिति (घ) मैथ्यू समिति
4. पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना किस स्तर पर नहीं की गई?
   (क) ग्राम पंचायत स्तर (ख) प्रखंड स्तर (ग) जिला स्तर (घ) राज्य स्तर
5. बिहार पंचायत अधिनियम किस वर्ष पारित हुआ था?
   (क) 1946 ई. (ख) 1947 ई. (ग) 1949 ई. (घ) 1950 ई.

6. पहली बार बिहार के किस जिले में पंचायती राज लागू नहीं किया गया था?
   (क) भागलपुर (ख) राँची (ग) मुजफ्फरपुर (घ) छपरा
7. नई पंचायती राज्य योजना का निर्माण किस संशोधन विधेयक के तहत किया गया है?
   (क) इकहत्तरवाँ (ख) बहत्तरवाँ (ग) तिहत्तरवाँ (घ) चौहत्तरवाँ

नोट

8. पंचायती राज योजना को संवैधानिक मान्यता प्रदान करने के लिए किस प्रधानमंत्री के शासनकाल में संशोधन विधेयक पहली बार लाने का प्रयास किया गया था?
   (क) जवाहरलाल नेहरू (ख) इंदिरा गाँधी
   (ग) राजीव गाँधी (घ) वी.पी. सिंह
9. नई पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत सर्वप्रथम किस राज्य में 1994 ई. में चुनाव कराए गए?
   (क) बिहार (ख) मध्य प्रदेश (ग) महाराष्ट्र (घ) गुजरात
10. बिहार में पंचायती राज व्यवस्था का उद्‌घाटन संपूर्ण बिहार में, 14 नवंबर को किस वर्ष हुआ?
   (क) 1961 ई. (ख) 1971 ई. (ग) 1980 ई. (घ) 1990 ई.
11. नई पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत किसके लिए आरक्षण की व्यवस्था नहीं की गई है?
   (क) अनुसूचित जातियाँ (ख) अनुसूचित जनजातियाँ (ग) पिछड़े वर्ग (घ) गरीब वर्ग
12. पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल कितना निर्धारित किया गया है?
   (क) तीन वर्ष (ख) चार वर्ष (ग) पाँच वर्ष (घ) छः वर्ष
13. ग्राम पंचायत की स्थापना की घोषणा कौन करता है?
   (क) जिला दंडाधिकारी (ख) मंडलायुक्त
   (ग) प्रखंड विकास पदाधिकारी (घ) अनुमंडल पदाधिकारी
14. नई पंचायती राज योजना के अंतर्गत साधारण ग्राम पंचायतों की स्थापना के लिए कितनी आबादी तय की गई है?
   (क) तीन हजार (ख) चार हजार
   (ग) सात हजार (घ) कुछ भी नहीं
15. नई पंचायती राज योजना के तहत मुखिया का निर्वाचन होता है।
   (क) मतदाताओं द्वारा सीधे चुनाव से (ख) कार्यकारिणी समिति के सदस्यों द्वारा
   (ग) सरपंचों के द्वारा (घ) उपर्युक्त सभी गलत
16. ग्राम पंचायत की बैठक के लिए गणपूर्ति सदस्यों की कुल संख्या कितनी होगी?
   (क) दसवाँ भाग (ख) आधे सदस्य
   (ग) एक-तिहाई सदस्य (घ) चौथाई सदस्य

7.17 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

(क) अति लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. पंचायती राज के विषय में महात्मा गाँधी की राय अथवा मान्यता क्या थी?
2. स्थानीय स्वशासन के दो कार्य लिखें।
3. ग्राम सभा के बारे में आप क्या जानते हैं?
4. ग्राम समिति के कोई दो विचाराकारी कार्य बताइए।
5. पंचायती राज में तीन स्तरीय व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
6. पंचायती राज ने भारतीय लोकतंत्र को कहाँ तक मजबूत बनाने में सहायता की है?

(ख) लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. पंचायती राज प्रणाली की उपलब्धियाँ और कमियाँ (कमजोरियाँ अथवा सीमाएँ) बताएँ।
2. पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना का क्या अर्थ है? 'ग्राम-सभा' शब्द का अर्थ बताएँ और इसके किन्हीं दो कार्यों का उल्लेख करें।

नोट

3. शहरी स्थानीय निकायों (नगर निगम या नगरपालिका) के कार्य और उत्तरदायित्व बताएँ।
4. स्थानीय स्वशासन का अर्थ एवं परिभाषा लिखें।
5. स्थानीय स्तर पर लोकतंत्र से आपका क्या अभिप्राय है?
6. शहरी स्थानीय संस्थाओं की नई व्यवस्था क्या है?
7. कारपोरेशन के मेयर की भूमिका का निरीक्षण कीजिए।
8. भारत में नगरपालिका की रचना की व्याख्या कीजिए।
9. म्युनिसिपल कौंसिल की कार्यावधि कितनी होती है?
10. नगरपालिका के चार मुख्य कार्य लिखें।
11. नगरपालिका की आय के चार साधन लिखें।
12. पंचायती राज का क्या अर्थ है?
13. पंचायती राज के उद्देश्यों का वर्णन करें।

(ग) दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न

1. 73वें संशोधन अधिनियम (संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची) में पंचायती राज संस्थाओं को दी गई कोई शक्तियाँ बताएँ। पंचायती राज संस्थाओं को ये शक्तियाँ देना कहाँ तक उचित है?
2. 73वें संशोधन अधिनियम के पहले और बाद में स्थानीय शासनों के बीच कुछ निश्चित अंतर रहे हैं। निम्नलिखित के संदर्भ में इन अंतरों का उल्लेख करें–
   (क) राज्य वित्त आयोग
   (ख) पंचायतों का चुनाव
   (ग) पंचायतों की अवधि
   (घ) पंचायती राज संस्थानों को कुछ महत्त्वपूर्ण विषय (शक्तियाँ) सौंपना।
3. 73वें संशोधन अधिनियम के संदर्भ में निम्नलिखित प्रावधानों का महत्त्व समझाएँ–
   (क) राज्य निर्वाचन आयुक्त
   (ख) अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए स्थान आरक्षण।
4. स्थानीय सरकार को किस प्रकार उचित ठहराया जा सकता है? निम्नलिखित के संदर्भ में उत्तर दें–
   (क) स्थानीय कार्यों का दल और प्रभावी प्रबंधन
   (ख) स्वतंत्रता (स्वशासन) की शुरुआत नीचे से होनी चाहिए।
   (ग) यह लोगों के लिए मित्रवत प्रशासन है।
   (घ) यह प्रणाली अत्यंत मितव्ययी है।

   अथवा

   स्थानीय शासन का क्या अर्थ है? हमें स्थानीय शासन की आवश्यकता क्यों है?

   अथवा

   एक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में स्थानीय शासनों का क्या महत्त्व है?
5. भारत में ग्राम पंचायतों के संगठन और कार्यों की व्याख्या करें।
6. पंचायत समिति की रचना, शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन करो।
7. जिला परिषद् की रचना और कार्यों का वर्णन करो।
8. पंचायत राज व्यवस्था के दोषों को दूर करने के लिए उपाय बताएँ।
9. भारत में नगर निगमों के गठन और कार्यों का वर्णन कीजिए।
10. नगरपालिका के संगठन, कार्यों और आय के साधनों की व्याख्या करें।
11. बिहार ग्राम पंचायत (संशोधन) अधिनियम, 1959 के पृष्ठाधार में बिहार ग्राम पंचायतों संगठन और कार्यों का वर्णन कीजिए।
12. बिहार की ग्राम पंचायतों के कार्यकरण में क्या दोष हैं? उन्हें दूर करने के सुझाव दीजिए।
13. बिहार की ग्राम कचहरी के संगठन तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।

14. क्या आपकी सम्मति में बिहार की ग्राम पंचायतों की वित्तीय आमदनी पर्याप्त है? यदि नहीं तो सुझाव दीजिए।
15. बिहार की ग्राम पंचायत के मुखिया के अधिकार और कार्यों का वर्णन करें।
16. प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण से आप क्या समझते हैं? बिहार राज्य में इसके निमित्त कौन-से कदम उठाए गए है?
17. बिहार में पंचायत समिति की बनावट और कार्यों की विवेचना कीजिए।
18. बिहार में जिला परिषद् के संगठन और कार्यों का वर्णन कीजिए।
19. बिहार राज्य पंचायत समिति और जिला परिषद् अधिनियम की त्रुटियों पर विचार कीजिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self-Assessment)

1. (ख)	2. (क)	3. (ख)	4. (घ)	5. (ख)	6. (घ)
7. (ग)	8. (ग)	9. (ख)	10. (ग)	11. (घ)	12. (ग)
13. (क)	14. (ग)	15. (क)	16. (ग)		

7.18 संदर्भ पुस्तकें (Reference Books)

1. *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था* – एन. छाबरा।
2. *भारतीय राजनीतिक प्रणाली* – यू.आर.आई।